भगवान श्री 1008 महावीर स्वामी जी की 2600 वीं
जन्म जयन्ती के पुनीत अवसर पर प्रकाशित

ब्र. नेमिदत्त जी रचित

आराधना कथाकोश

भाग-3

पदमाकार कान्त जैन (हैप्पी)
C/O श्री दिगम्बर जैन चन्द्रप्रभ मन्दिर के पास
फिरोजाबाद (उ.प्र.) (05612)-260761

सम्पादक

मुनि निर्णय सागर

ग्रंथ	-	आराधना कथाकोश भाग 3
ग्रंथकार	-	ब्र. नेमिदत्त जी
अनुवादक	-	उदयलाल जी कासलीवाल
सम्पादक	-	मुनि निर्णय सागर
सहयोगी	-	ऐलक विमुक्त सागर
	-	क्षु० विशंक सागर
मुद्रक एवं प्रकाशक	-	अनिल कुमार जैन चन्द्रा कॉपी हाउस हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.) © 360195, 260938
कवर सज्जा	-	यतीश जैन D-116, कृष्णा नगर, स्ट्रीट न0-8 सफदरजंग एन्कलेव, नयी दिल्ली-29 © 011-6160659, 6177190
संस्करण	-	प्रथम – सन् 2002, (1200 प्रति)
@ सर्वाधिकार सुरक्षित	-	प्रकाशकाधीन
I.S.B.N. No.	-	81-878280-51
मूल्य	-	स्वाध्याय

शास्त्र प्राप्ति स्थान

- 1. **श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर,** एन-10 ग्रीन पार्क एक्स.(दिल्ली)
- 2. **चन्द्रा कॉपी हाउस** , हॉस्पीटल रोड, आगरा (उ.प्र.)
- 3. **श्री दि० जैन लाल मंदिर,** चाँदनी चौक, नई दिल्ली
- 4. **अ० भा० सम्यग्ज्ञान शिक्षण समिति शाखा हटा,** दमोह (म० प्र०)
- 5. **धर्म जागृति संगठन व महावीर संगठन,** फिरोजाबाद (उ० प्र०)
- 6. **वास्ट जैन फाउन्डेशन,** 59/2 बिरहाना रोड, कानपुर (उ. प्र.)

सम्पादकीय

श्री जिनेन्द्र भगवान द्वारा प्रणीत जिनागम चार अनुयोगों में विभक्त है, जिस प्रकार गाय के चारों स्तनों में दूध समान वर्ण, शक्ति, स्वाद, स्पर्श व उपयोगिता से युक्त होता है उसी प्रकार पुष्प की चार पंखुडी की तरह ही प्रथमानुयोग, चरणानुयोग, करणानुयोग एवं द्रव्यानुयोग ये जिनवाणी के चार अनुयोग हैं। जिनवाणी का प्रत्येक शब्द प्राणी मात्र का कल्याण करने में समर्थ है, यदि हम उस शब्द का सही अर्थ समझने का प्रयास करे तो। जैन दर्शन में सभी कथन सापेक्ष हैं निरपेक्ष कथन तो अकल्याणकारी ही होता है। जिन वचन ही समस्त भव रोगों के लिए परमौषधि के समान है। इन्हीं का (जिन वचनों का) समीचीन आश्रय/अवलम्बन भव्य जीवों को भव वारिधि से तारने के लिए समुचित व समर्थ नौका के समान है। जिन वचनों की महिमा के बारे में आचार्य भगवन् श्री कुन्दकुन्द स्वामी जी कहते हैं-

जिण वयण मोसह मिणं, विसय सुह विरेयणं अमिद भूयं।
जर मरण वाहि हरणं, खय करणं सव्व दुक्खाणं ॥द. पा.

जिनेन्द्र भगवान के वचन रूपी यह औषधि विषय सुखों का विरेचन करने वाली तथा अमृतभूत है। जन्म, जरा, मृत्यु रूपी रोगों की परिहारक एवं सर्व दुखों का क्षय करने वाली है। उस परमौषधि का सेवन हमें अपनी मात्रता के अनुसार करना है। जिस प्रकार कुशल वैद्य रोगी की वय, रोग, शक्ति, रोगी की प्रकृति, मौसम का प्रभाव देखकर, औषधि की मात्रा, सेवन की विधि व पथ्यापथ्य की बातों का समीचीन विचार करके ही रोगी को औषधि का सेवन कराता है, उसी प्रकार परम पूज्य श्री दिगम्बर जैनाचार्य रूपी कुशल वैद्यों के निर्देशानुसार हम सभी को भी क्रमशः जिनागम का स्वाध्याय करना है तभी हम जन्म, जरा, मृत्यु जैसे रोगों से मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। यदि हमने कुशल वैद्य के निर्देशों व सुझावों की उपेक्षा करके स्वेच्छाचारिता पूर्वक (मनमाने ढग से) औषधि का सेवन किया तो हो सकता है रोग नष्ट होने की बजाय बढ भी सकता है। तथा साथ में अन्य भी कई रोग पैदा हो सकते है अतः जिनागम (जिनेन्द्र भगवान या आप्त प्रणीत, गणधर भगवन्तों द्वारा संग्रहीत एवं दिगम्बर मुनियों द्वारा लिपिबद्ध शास्त्रों को ही जिनागम कहते हैं) का प्रत्येक अक्षर, शब्द, पद, वाक्य श्रद्धान के योग्य हैं। जिनवाणी का कोई भी अंश/अंग उपेक्षणीय नहीं है। आचार्य भगवन् श्री शिव कोटि महाराज कहते हैं -

पद मक्खरं च एक्कंपि जो ण रोचेदि सु णिदिट्ठं।
सेसं रोचंतो वि हू मिच्छा दिट्ठी मुणेयव्वा ॥ (मूलाचार)

जो जिनागम में प्रणीत एक भी अक्षर, शब्द, वाक्य या गाथा की श्रद्धा न करे और समस्त आगम को माने या उस पर श्रद्धा करे तो भी वह मिथ्या दृष्टि है अत: कोई भी अनुयोग कभी अकल्याणकारी नहीं होता अपनी पात्रता के अनुसार सभी का स्वाध्याय करना चाहिए।

प्रथमानुयोग के ग्रंथों में त्रेसठ शलाका महापुरुषों का जीवन चरित्र दर्शाया गया है "उन्होंने जीवन में जो शुभाशुभ क्रियायें की, पुण्य पाप का बंध किया उसका क्या फल प्राप्त हुआ" का वर्णन है। एव कर्म सिद्धान्त को प्रत्यक्ष दूरदर्शन (चलचित्र) पर चल रहे चित्रों की तरह दिखाया गया हैं। प्रथमानुयोग के शास्त्रों का प्रारम्भिक दशा में (स्वाध्याय के क्रम में) स्वाध्याय अत्यन्त आवश्यक हैं। इस अनुयोग का स्वाध्याय करने से पापों से भीति, जिनेन्द्र भगवान में प्रीति, सच्चे देव, शास्त्र, गुरु व जिनधर्म में अनुराग व रुचि, संयम प्राप्ति की प्रबल भावना, संसार शरीर भोगों से उदासीनता/विरक्ति, रत्नत्रय में अनुरक्ति की भावना जागृत होती हैं। आचार्य भगवन् समन्तभद्र स्वामी जी कहते हैं -

प्रथमानुयोग मर्थाख्यानं चरितं पुराण मपि पुण्यम्।
बोधि समाधि निधानं बोधति बोधः समीचीनः ॥43॥ र श्रा.

प्रथमानुयोग पदार्थों के यथार्थ स्वरुप का प्रतिपादक है। पुराण/पौराणिक पुरुषों के पुण्य चरित्र का कथन करता है यह बोधि (रत्नत्रय - सम्यक दर्शन, ज्ञान, चारित्र) एव समाधि - निर्विकल्प ध्यान की अवस्था (जो अभेद रत्नत्रय के प्राप्त होने पर शुद्धोपयोगी मुनि के आत्मा में लीन होने पर प्राप्त होती है जिसे आत्मानुभति भी कहते हैं इसका प्रारभ सातवें अप्रमत्त गुणस्थान से होता है इसके पूर्व शुद्ध आत्मा की प्रत्याक्षानुभूति कदापि सभव नही है। अर्थात् असम्भव है) का खजाना हैं ऐसे समीचीन बोध को देने वाला प्रथमानुयोग/कथानक हैं अपितु उनमें श्रावक धर्म व मुनि धर्म का कथन करने वाला चरणानुयोग भी उपलब्ध होता है। गुण स्थानों, मार्गणा स्थानों, दस प्रकार के करणों एवं त्रिलोक संबधी कथन होने से करणानुयोग, जीव की स्थिति तथा जीवादि द्रव्यों के स्वभाव, शुद्ध गुण, पर्याय का कथन भी प्रथमानुयोग में मिलने से द्रव्यानुयोग भी दृष्टिगोचर होता है। प्रथमानुयोग में भी संक्षेप रूप से चारों अनुयोगों का कथन मिल जाता है ऐसा कहना भी कोई अतिशयोक्ति नहीं है।

स्वाध्याय से विमुख या ए ान्तवाद की पक ो लिप्त जो अज्ञ महानुभाव प्रथमानुयोग को कथा कहानी कहकर उसकी उपेक्षा तो करते ही

हैं वे अपने जीवन के साथ भी तो खिलवाड़ करते ही हैं साथ ही जिनागम की अवहेलना कर अन्य भव्य जीवों के पतन में भी कारणरूप से सहभागी हो जाते हैं।

अतः मन्द कषायी, भद्र परिणामी, प्रशम, संवेग भावयुक्त उन समस्त स्वाध्याय प्रेमी, सत् श्रद्धालु धर्मस्नेही, आत्महितेच्छुक, पाप भीरु महानुभावों के लिए विनम्र सुझाव/निर्देश है कि वे जिनेन्द्र भगवान की वाणी का अपलाप करके पाप के भागीदार न बनें, अपितु समीचीन शास्त्रों का समीचीन विधि से स्वाध्याय करके स्वपर के कल्याण में सहयोगी बनें। सम्यक्ज्ञान रूपी नेत्र के बिना जीव कभी भी अपना कल्याण नहीं कर सकता है अतः यथाशक्ति नित्य विनय पूर्वक विशुद्ध भावों से स्वाध्याय करने का समीचीन प्रयास करें।

इस ग्रंथ के पुनः प्रकाशन का उद्देश्य यही है कि अधिक से अधिक भव्य जीव स्वाध्याय के लिए प्रेरित हों। वर्तमान में स्वाध्याय की परम्परा मंद होती चली जा रही है क्योंकि जो स्वाध्याय करना चाहते हैं वे (प्रारम्भिक स्वाध्यायार्थी) बडे-ग्रंथों को देखकर ही अपना साहस खो बैठते हैं। तथा प्रथमानुयोग के ग्रंथ सर्वत्र सहज सुलभ भी नहीं हो पा रहे हैं अधिकांशतः एकान्तवाद से दूषित साहित्य दृष्टिगोचर हो रहा है जिससे प्राणी मिथ्यात्व रूपी अंधकार में भटकते हुए भव भ्रमण की वृद्धि ही कर रहे हैं अत. प्रथमानुयोग के लघु शास्त्रों का प्रकाशन इस युग की आवश्यकता की पूर्ति में सहयोगी सिद्ध होगा।

इस ग्रंथ के सम्पादन में मुझ अल्पज्ञ साधक के द्वारा जो त्रुटि रह गई हों, तो सकल संयमी विज्ञजन मुझे क्षमा करते हुए भूल सुधारने हेतु संकेत देने का कष्ट करें, इसमें जो त्रुटि हैं वे सब मेरी अल्पज्ञता की द्योतक हैं, तथा जो भी अच्छाई हैं वे सब परम पूज्य आचार्य भगवन्तों का सुप्रसाद ही है। अतः गुणग्राही बन कर गुण ग्रहण करें।

"अलमति विस्तरेण"

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः
जिन चरण चञ्चरीक
टूंडला (3.12.2000)

प्रस्तावना

आत्मा का हित स्वाभाविक/शाश्वत आत्म सुख की प्राप्ति में ही है, वह यथार्थ सुख परमात्म पद प्राप्त कर लेने पर ही संभव है। परमात्म पद की प्राप्ति के लिए रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यग्चारित्र) की साधना/(मोक्ष मार्ग में गमन) करना अनिवार्य है। रत्नत्रय की साधना के बिना अन्तरात्मा हुए बिना कदापि संभव नहीं हैं। तथा सम्यग्दृष्टि आत्मा ही अन्तरात्मा कहलाती है। जघन्य अन्तरात्मा, अविरत सम्यग्दृष्टि, मध्यम अन्तरात्मा शुद्धोपयोगी मुनि कहलाता है। सकल संयमी सम्यग्दृष्टि श्रमण ही रत्नत्रय की साधना (व्यवहार साधना व निश्चय साधना) करके, सकल कर्मों की निर्जरा करने में/क्षय करने में समर्थ हो सकता है। वह सम्यग्दर्शन बिना तत्वार्थ श्रद्धान के, या आत्म-आनात्म के भेद विज्ञान व श्रद्धान किये बिना असंभव हैं। तत्वार्थ का सम्यग्श्रद्धान बिना ज्ञान/देशना के असंभव है। सच्चे देव, शास्त्र व गुरु व तत्वार्थ श्रद्धान व ज्ञान में निमित्त भूत कारण हैं।

सच्चे देव (वीतरागी, सर्वज्ञ, हितोपदेशी, अरिहंत, सिद्ध परमेष्ठी) आज इस कलिकाल में यहाँ (भरत क्षेत्र में) नहीं हैं परन्त उनके बिम्ब ही (नाम, स्थापना निक्षेप से जिन बिम्ब ही जिनदेव हैं) हमारे लिए जिन देव के समान पूज्य हैं, तथा उसी प्रकार पुण्यास्रव, पाप सवर, कर्म निर्जरा के निमित्त भूत कारण हैं। तथापि आज साक्षात् तीर्थंकर केवली आदि केवली भगवन्तों व प्रत्यक्ष ज्ञानीयों की दिव्य ध्वनि व धर्मोपदेश का अभाव है। तथा वीतरागी निर्ग्रंथ गुरुओं का सर्वत्र सद्भाव असंभव है। सातिशय पुण्योदय से निर्ग्रंथ गुरुओं के दर्शन व सानिध्य का लाभ कथचित् ही हो पा रहा हैं। इस आत्मा में विषय कषाय एवं पाप रूप प्रवृत्ति के संस्कार अनादि काल से पड़े हुए हैं। यह मानव जब तक जिनमंदिर में या परम पूज्य गुरुदेव के चरण सानिध्य में रहता है, तब तक तो पापास्रव से बच कर पुण्यास्रव व शुभ क्रियाओं में प्रवृत रहता है। पुनः उनसे विलग होते ही सांसारिक कार्यों में इतना व्यस्त हो जाता है कि उसे धर्म व आत्म कल्याण की स्मृति भी नहीं हो पाती।

संसार परिभ्रमण में कारण भूत विषय-कषाय व सावद्य क्रिया रूप संस्कारों को नष्ट कर धर्म ध्यान, शुभोभ्यास व शुभ योग क्रिया रूप संस्कारों को स्थापित करने लिए ज्ञानाभ्यास करते रहना चाहिए। निरन्तर ज्ञानाभ्यास व स्वाध्याय करते रहने से यह संसारी जीव अनादि कालीन भव वासना से विराम प्राप्त कर सकता है। तथा इन्द्रिय और मन का निग्रह करता हुआ कषायों को उपशमित (दबाना) व क्षपित (नष्ट कर देना) भी कर सकता है।

वर्तमान काल में स्वाध्याय पंगु के हाथ में थमी हुई बैसाखी के समान, अखण्ड अंधकार से आवरणित (तमोवृत) भव वन में जाजन्वल्य मान दीपक के समान है, अथवा भव सागर में पतित प्राणियों के लिए दिव्य नौका के समान है।

बिना स्वाध्याय के श्रावक व श्रमण को अपने कर्तव्यों का बोध भी नहीं हो सकता और न ही वे अपने कर्तव्यों का यथार्थ पालन कर सकते हैं। स्वाध्याय/ज्ञानभ्यास के बल से ही सम्यक्त्व को दृढ़ व चारित्र को निर्मल बनाया जा सकता है। ज्ञान को इसीलिए मोक्ष मार्ग के मध्य में रखा गया है। सम्यग्ज्ञान मध्य दीपक है। स्वाध्याय प्रत्येक आत्म कल्याणार्थी के लिए श्वासोच्छ्वास की तरह जीवन का अनिवार्य अंग है।

जिनागम में धर्मोपदेश व तत्वार्थ को प्रतिपादित करने की मुख्य चार शैली/विधि/पद्धति हैं, जिन्हें अनुयोग कहते हैं। वे चार अनुयोग है 1. प्रथमानुयोग, 2. करणानुयोग, 3. चरणानुयोग, 4. द्रव्यानुयोग।

1. **प्रथमानुयोग**-मोक्षार्थी/आत्म हितार्थी के लिए प्रारम्भ में प्रथमानुयोग का स्वाध्याय नितांत आवश्यक है, बिना प्रथम सोपान के अग्रिम सोपानों को प्राप्त/पार कर पाना असंभव है, प्रथमानुयोग में तत्व प्रतिपादन की भाषा अत्यंत सरल, सुगम, रोचक एवं बोध प्रद होती है। जो कि सामान्य श्रावक/श्रमणों की जिनागम के रहस्यों, आत्म कल्याण के सूत्रों का कथन किसी एक या अनेक महापुरुषों के जीवन चरित्र के माध्यम से या कथाओं के माध्यम से किया जाता है।

कथा व कहानियों में ऐसी सामग्री होती है, जिसे पाने के लिए आवाल-वृद्ध उत्सुक एवं तीव्र पिपासु रहते हैं। प्रथमानुयोग के स्वाध्याय करने में विशेष मानसिक परिश्रम की भी आवश्यकता नहीं है। जिस प्रकार हलुवा, रबडी, खाने में दूध, छाछ रस पीने में दांतों को विशेष परिश्रम की आवश्यकता नहीं होती, तथैव प्रथमानुयोग के स्वाध्याय में भी अल्प परिश्रम से अधिक लाभ हो जाता है। आ. भगवन् समंतभद्र स्वामी जी ने प्रथमानुयोग को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्वैराग्य, सम्यक चारित्र, सम्यक तप, ध्यान व समाधि का कारण कहा है। जिनागम में वर्णित कथाऐं मात्र मनोरंजक व समय पास करने का साधन नहीं अपितु आत्म रंजन, आत्म विकास व काम विनाश का साधन है एवं आत्मा में दिव्य प्रकाश का प्रबल हेतु भी है।

2. **करणानुयोग**-करणानुयोग में आत्मा के परिणाम, दश प्रकार के करण, कर्मों की अवस्थाऐं, मार्गणा व गुणास्थानों की अपेक्षा जीव का अन्वेषण, व विभेदीकरण, तीन लोकों की आकृति, द्रव्य गुण व पर्यायों का स्वरूप आदि का कथन है। इस अनुयोग की भाषा शैली व प्रतिपाद्य विषय प्रथमानुयोग की अपेक्षा बहुत जटिल है। इस विषय का वाचन व पाचन श्रावकों लिए आसान नहीं है। जिस प्रकार चन्ना, मूंगफली, बादाम, काजू, खरक (छुआरा) सुपाड़ी, मिश्री, पान, सौंफ आदि चबाना युवाओं या दंत युक्त को ही संभव है। दन्त हीन बाल-वृद्धों को बहुत कठिन है। यही करणानुयोग युवाओं के लिए टॉनिक है। जिससे उनका मन-विषय-वासनाओं की ओर न दौड़े।

3. **चरणानुयोग**-चरणानुयोग में श्रावक व मुनि के मूल गुण, उत्तर गुण, कर्तव्य व धर्म का कथन है। यह चारित्र का प्रतिपादन करता है। पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत व ग्यारह प्रतिमाओं का पालन श्रावक किस प्रकार करें? इन व्रतादि के अतिचार व अनाचारादि क्या-क्या हैं? इत्यादि, श्रमण धर्म में पांच महाव्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, पंच इन्द्रिय निरोध, षडावश्यक कर्तव्य, बारह
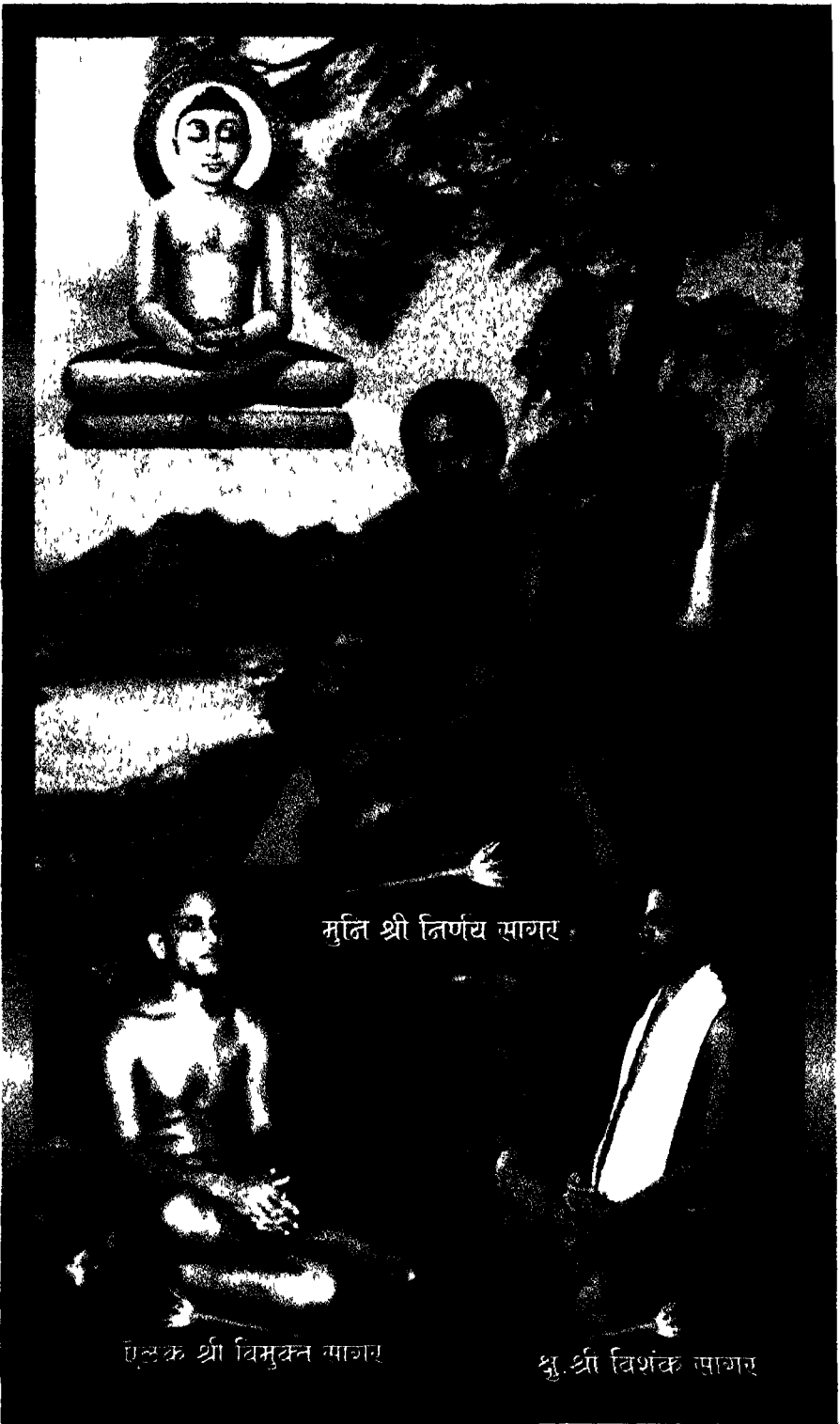
मुनि श्री निर्णय सागर

ऐलक श्री विमुक्त सागर

क्षु. श्री विशंक सागर

तप, दश धर्म इत्यादि का सुगम भाषा में विवेचन हैं जिस प्रकार शरीर के लिए, दाल, रोटी, सब्जी व फलों की आवश्यकता होती है उसी प्रकार से आत्म कल्याण के लिए इस अनुयोग की आवश्यकता है।

4. **द्रव्यानुयोग**-यह अनुयोग एक द्रव्य की प्रधानता से कथन करता है, इस अनुयोग में शुद्ध जीवादि द्रव्य का, शुद्ध स्वभावों का, गुणों का व शुद्ध पयार्यों का कथन है जीवादि सात तत्व, नव पदार्थ, षड् द्रव्य, व पंचास्तिकाय का विवेचन यही अनुयोग मुख्य तथा करता है। जैसे शरीर को रोगों से बचाने के लिए एवं पुष्ट करने के लिए मेवा, मिष्ठान, काजू-किसमिस, बादमादि गरिष्ठ भोजन व औषधि की आवश्यकता होती है तथा अंत में मुख लौंग व सौंफ या इलायची आवश्यक है तथैव आत्म हित में द्रव्यानुयोग की आवश्यकता है, यह घृत के समान या स्वर्ण भस्म के समान पौस्टिक है।

प्रस्तुत ग्रंथ परम आध्यात्म योगी, निग्रंथ तपोनिधि आचार्य भगवन् शिवकोटि/शिवार्य जी के द्वारा विरचित मूलाराधना/भगवती आराधना में समागम/सन्दर्भित कथाओं का ग्रंथ है। इस ग्रंथ में सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र व तप को उत्पन्न करने वाली, पोषण करने वाली, संरक्षण व संवर्द्धन करने वाली कथाओं है। अथवा संवेगनी, निर्वेदनी, आक्षेपजी व विक्षपणी इत्यादि चार प्रकार की कथाओं से समन्वित है।

इस ग्रंथ का ब्रह्मचारी नेमिदत्त जी ने संस्कृत भाषा में अत्यंत सरल तरीके से, चित्ताकर्षक व मनोहर शैली में 115 (एक सौ पन्द्रह) कथाओं को निवृद्ध किया है। यह तीन भागों में विभक्त है।, प्रथम भाग में '**पात्र केसरी**' की कथाओं को आदि से लेकर **यमपाल/यमदण्ड चाण्डाल** की पर्यंत 24 कथाऐं हैं। तथा द्वितीय भाग में **मृगसेन धीवर की कथा** को आदि लेकर **बत्तीस सेठ पुत्रों की बासठवीं कथा** पर्यंत अड़तीस कथाओं का समावेश किया है। तथा तृतीय भाग में **घोष मुनि की कथा** को आदि लेकर **कुमकुम व्रत की (एक सौ पन्द्रहवीं कथा) कथा** पर्यंत 53 कथाऐं हैं। इस प्रकार कुल एक सौ पन्द्रह कथाऐं हैं। इन कथाओं का हिन्दी भाषानुवाद

उदय लाल कासली वाल ने किया है एतदर्थ उपर्युक्त उभय श्रावक आशीर्वाद व प्रशंसा के पात्र हैं।

यह ग्रंथ श्रावक व मुनियों को अपने कर्तव्य की प्रेरणा देने वाला अनुपम ग्रंथ है। यह आध्यात्मिकता का पोषक, निश्चय का आधार, व्यावहारिक चारित्र की प्रेरणा देने में प्राणभूत हेतु है। इस ग्रंथ का सभी सुधी मुनिवृन्दों व श्रावक गणों को विनय, श्रद्धा, भक्ति व बहुमान के साथ स्वाध्याय करना चाहिए। प्रत्येक प्राणी इस ग्रंथ स्वाध्याय से (श्रवण, पठन, पाठन, चिन्तन, मनन व धर्मोपदेश है।) स्वपर के आत्म कल्याण में संलग्न रहें, यही मंगल भावना है।

इस ग्रंथ के प्रकाशन में सहयोगी ऐ. श्री विमुक्त सागर जी, क्षु. श्री विशंकसागर जी को समाधिरस्तु आशीर्वाद, प्रकाशक व मुद्रक अनिल कुमार जी चन्द्रा कापी हाउस को तथा ग्रीन पार्क की सकल सुधी समाज को अन्य प्रत्यक्ष व परोक्ष सहयोगी को सुसमाधिरस्तु व धर्म वृद्धि आशीर्वाद, ग्रंथ में यत् किंचित विद्यमान त्रुटियों को विज्ञ सुधी पाठक जन संशोधन कर समीचीन अर्थ को ग्रहण करें तथा हमें संकेत व सुझाव प्रेषित करने का पुरुषार्थ करें।

'इत्यलमति विस्तरेण!'

ॐ ह्रीं नमः

कश्चिदल्पज्ञ श्रमणः

संयमासक्त जिनचरणानुचर,

10.11.2001, चाँदनी चौक, दिल्ली

जीवन के सार्थक क्षण - पठनीय कहानी

संसार का प्रत्येक द्रव्य अपना प्रभाव सामने वाले द्रव्य पर अवश्य छोड़ता है, अपने से हीन शक्ति वाले को प्रभावित करता है एवं उत्कृष्ट शक्ति वाले से प्रभावित भी होता है। यथा शक्कर की चासनी (सीरा) की एक बूंद यदि नमक की झील में पड़ जाये तो वह अपना अस्तित्व बताने में भी असमर्थ होती है। तथा वह भी खारी हो जाती है। यदि नमक का एक कण, एक हौज (टंकी) में (जो कि शक्कर की चासनी से भरी हुई है) पड़ जाये तो वह कण भी प्रभाव हीन हो जाता है। इसी प्रकार कर्मों व आत्मा के गुणों का प्रभाव है। अथवा पानी की एक बूंद जैसी संगति में चली जाती है, वह उसी प्रकार के गुणों को प्राप्त कर लेती हैं। जैसे-गन्ने, अंगूर, सेव, चीकू, नारियल में वह पानी की बूंद मीठी हो जाती है तथा वही पानी की बूंद नीबू, आम, टमाटर में खटटी, मिर्ची में चरपरी एवं नीम, चिरायता, गिलोय, करेला आदि में कड़वी, आँवला में कषायली व गुलाब, कमल, गेंदा, केतकी, जुही, केवड़ा, चम्पा, चमेली आदि पुष्पों में सुगन्धित प्याज, लहसुन, सड़े-गले पदार्थों में दुर्गन्धित। अथवा टमाटर में लाल, आम में पीली, जामुन में नीली, अंगूर करेला में हरी, केला, नारियल, दूध में सफेद, गुलाब में गुलाबी आदि।

इसी प्रकार संसारी प्राणी भी अपना प्रभाव अन्य प्राणियों पर छोड़ता है। या तो वह अन्य से प्रभावित हो जाता है या वह स्वयं दूसरों को प्रभावित करता हैं जैसे-बड़ी चुम्बक छोटी सी आलपिनों/कीलों को अपनी ओर खींच लेती है तथा वही चुम्बक अपने से बड़े लोहे के गोले के पास स्वयं खिंच कर चली जाती है। उसी प्रकार साधु व गृहस्थों का संबंध है। यथार्थ संत, साधु, पुरुष, महात्मा अपनी तपोमय साधना व ज्ञान के दिव्य प्रकाश से प्राणी मात्र को आलोकित एवं आनंदित कर देते हैं जैसे कि तीर्थंकरों के जन्म के समय क्षण भर के लिये तीनों लोकों में शांति छा जाती है तथा संसार के संतभेष धारी क्षुद्र पुरुष या संतपुरुष भी गृहस्थों से प्रभावित हो उन जैसी क्रिया करने लग जाते है। किसी क्रूर, दुष्ट, डाकू के प्रभाव से छोटे-छोटे बालकों में भी क्रूरता के संस्कार पड़ जाते है। सज्जन अपनी सज्जनता को एवं दुर्जन अपनी

दुर्जनता को प्रसारित-प्रचारित करते हैं। तथा वे वही प्रभाव छोड़ते हैं जो उनके पास है। जिसके पास जो होता है वह वही वस्तु दे सकता है, अन्य नहीं जैसे-गाय के पास दूध है तो वह दूध देती है, नदी के पास जल है तो वह जल देती हैं, वृक्षों के पास फल, पुष्प व छाया है तो वही देते हैं, गधे या खरगोश के पास सींग नहीं हैं तो वे कहाँ से दे सकेंगे?

शरद ऋतु की पूर्णिमा के चन्द्रमा की चांदनी, चंदन लेप, गंगा नदी का नीर व अन्य शीतल पदार्थों को वे ही श्रेष्ठ व शीतल कहते हैं, जिन्होंने संतों की अमृतमयी, अनुपम माधुर्य युक्त हितोपदेशी, वात्सल्य भावना में सना हुआ, करुणापूर्ण धर्मोपदेश नहीं सुना। उन्हें भी माता-पिता का लाड़-प्यार श्रेष्ठ दिखता है जिनको गुरु का वरदहस्त आशीर्वाद एवं वात्सल्य नहीं मिला।

क्षर भर का संत सानिध्य भी अपना प्रभाव दिखाये बिना नहीं रहता, यथा गुलाब पुष्प व प्याज, कपूर की गंध व हींग की गंध या मिर्च की गंध। यदि कोई कहे कि अल्प समय का संत सानिध्य/साधु समागम हमें क्या दे सकता है? उनके लिये हमारा कहना है कि जिस प्रकार अन्तर्मुहूर्त के लिए भी मुट्ठी में रखा चन्दन का चूर्ण अपनी सुवास छोड़े बिना नहीं जाता है। तथा क्षणार्द्ध के लिये स्पर्श मात्र किया हुआ कोयला अपनी कालिमा छोड़े बिना नहीं जाता। अथवा अग्नि व वर्फ का क्षणभर भी स्पर्श करें, वे अपना प्रभाव बता ही देते हैं। इसी प्रकार संत/सज्जन/साधु/पुरुषों के सानिध्य व दुर्जनों के सानिध्य का प्रभाव होता है। अन्तर्मुहूर्त तक का संत सानिध्य भी अनेकों कर्मों को नष्ट करने में समर्थ कारण हैं। इसी बात को तुलसी दास ने कहा भी है-

एक घड़ी आधी घड़ी, आधी की पुनि आध।
तुलसी संगत साधु की, कटैं कोटि अपराध॥

जिनागम में ऐसे अनेक (गणनातीत/अगणित) उदाहरण उपलब्ध हैं, जिनमें क्षणभर की साधु संगति का फल दुख क्षय, सुख समृद्धि की प्राप्ति, देव विभूति की प्राप्ति, आरोग्य लाभ, तन, धन, मन, वचन की अनुकूलता एवं परम्परा से मोक्ष की प्राप्ति कहा गया है सत्संगति को कामधेनु, कल्पवृक्ष, चिंतामणी रत्न, पारसमणि से भी श्रेष्ठ माना है। यथा-

पारसमणि व संत में, भारी अन्तर जान।
वह लोह्म सोना करे, वे करते आप समान॥

साधु पुरुषों के दर्शन भी महान पुण्योदय से होते हैं, ये चलते फिरते, सदैव फल देने वाले कल्पवृक्ष सम उपकारी होते हैं, जिनागम में कहा है कि-

साधुनां दर्शन पुण्यं, तीर्थभूता हि साधवः।
कालेन फलति तीर्थः, सद्यः साधु समागमः॥

विषय-कषाय, आरंभ परिग्रह व सर्व सावद्यों से रहित, ज्ञान, ध्यान व तप में लीन ऐसे वीतरागी संतों का यदि क्षण का भी सानिध्य मिल जाये तो अपने जीवन को धन्य मानना चाहिए तथा अपना तन-मन-धन सब कुछ न्यौछावर करके भी इनकी संगति मिले तब भी वह श्रेष्ठभूत साधु संगति करनी चाहिए।

क्योंकि महामनीषी, नीतिकारों ने भी कहा है-

यह तन विष बेलड़ी, गुरु अमृत की खान।
शीश दिये से गुरु मिले, तो भी सस्ता जान॥

सद्‌गुरुओं/दिगम्बर सतो के सानिध्य में रहकर जो आनंद मिलता है, वह आनंद स्वर्गों (बैकुण्ठ) में भी दुर्लभ है। इसीलिये कबीर दास को रोककर यह कहना पड़ा कि-

राम बुलावा भेजियो, दिया कबीरा रोय।
जो सुख है सत्संग में, बैकुण्ठ में न होय॥

हम सभी युसुफ सराय/ग्रीन पार्क दिल्ली की दिगम्बर जैन समान का असीम पुण्य उदय हुआ है कि हमें दिगम्बर संत श्री मुनिराज निर्णय सागर जी महाराज का ससंघ चातुर्मास प्राप्त हुआ। चातुर्मास में हमें जीवन जीने की सही पद्धति का ज्ञान, आबाल-वृद्धों में धर्म के संस्कार, सम्यग्ज्ञान व स्वाध्याय की शुभ प्रेरणा, एकान्तवाद की दुर्गन्धि रूप/मिथ्यात्व से मुक्ति, देव-शास्त्र गुरु की भक्ति करने की अपूर्व लगन, पंचेन्द्रिय संबंधी विषयों से विरक्ति का भाव, कषायों को उपशमन करने का उपाय एवं आत्म कल्याण का पाठ

मुनिसंघ से सीखने को मिला।

मुनि श्री के ग्रीन पार्क दिल्ली के मात्र 126 दिन के सानिध्य में जीवन को सफल व सार्थक बनाने के रहस्यमयी, जिन सूत्र मिल गये। मुनि श्री के सानिध्य में-सिद्ध चक्र महामंडल विधान, जिन सहस्रनाम विधान एवं विश्वशांति महायज्ञ, पंच परमेष्ठी विधान, त्रिकाल चौबीसी विधान, नवग्रह विधान एवं 126 कलशों से मानस्तंभ में स्थित जिनबिम्बों का महामस्काभिषेक, चातुर्मास प्रतिष्ठान निष्ठापन व पिच्छी परिवर्तन आदि की महासभाऐं व आयोजन भी अत्यन्त धर्म प्रभावना के साथ सांनद संपन्न हुये।

पर्यूषण में आयोजित "**श्रावक साधना एवं धर्म संस्कार शिविर**" तो यहां के लिये अद्भुत, अभूतपूर्व एवं अनुपम उपलब्धि रही ऐसा शिविर जीवन में प्रथम बार ही देखने को मिला। "**जो आनंद ध्यान शिविर में आया वह आनंद जीवन में कभी नहीं आया**" यदि ऐसा कहें तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। तथा मध्यान्ह काल की तत्त्वार्थ सूत्र की क्लास में किया गया शंका सामाधान भी हृदय में दीर्घकालीन से बनी गुत्थिओं को सुलझाने में कार्य कर रहा तथा धर्म संस्कार व प्रतिक्रमण की कक्षायें भी कम प्रभावशाली नहीं रहीं। बाहर दिनों तक निरन्तर गृहत्यागी व साधक ब्रह्मचारी बनकर जो साधना की, यदि वह चिरकाल के लिये मोक्ष प्राप्त करना कोई कठिन कार्य नहीं है। अर्थात् "**ऐसी निर्दोष साधना सुदीर्घ काल तक यदि हम कर लें तो नियम से मोक्ष को प्राप्त कर लेंगे**" ऐसा हमारा विश्वास है।

परम पूज्य मुनि श्री निरंतर स्वाध्याय, अध्ययन, अध्यापन, सामायिक देव वंदना, ध्यान, तप आदि में ही संलग्न रहे, उनके संघ रथ ऐलक श्री 105 विमुक्त सागर जी, छु. 105 श्री विशंक सागर जी भी समय-समय पर प्रवचन व स्वाध्याय के माध्यम से आत्म कल्याण की प्रेरणा देते रहे इस चातुर्मास में मुनि श्री व उनके संघ के सानिध्य में हमने आचार्य श्री अमोघ वर्ष द्वारा रचित प्रश्नोत्तरी रत्नमालिका, पूज्य आ श्री पद्मनंदी रचित परमार्थ विशंति, पूज्य आचार्य श्री पूज्यपाद देवनंदी रचित इष्टोपदेश, आ. श्री उमास्वामी द्वारा विरचित-तत्त्वार्थ सूत्र, आ. श्री कुन्द-कुन्द स्वामी जी द्वारा विरचित रयणसार

एवं समयसार के कुछ अधिकारों का अध्ययन किया। इसके साथ ही लघु स्त्रोतों, भावनाओं, हिन्दी के पाठों व संस्कृत की भक्तियों का भी अर्थ सहित, सुगम व सरल भाषा में अध्ययन किया।

उपरोक्त कक्षाओं के अतिरिक्त मुनि श्री व संघस्थ साधुओं के मुखारविंद गौतम स्वामी चरित्र, पुण्याश्रव कथाकोष, प्रद्युम्न चरित्र, चारूदत्त चरित्र, धन्य कुमार चरित्र, चित्रसेन-पद्मावती चरित्र। नंगानंग कुमार चरित्र, वरांग चरित्र, शालिभद्र चारित्र, सुकुमाल चरित्र, योगामृत एवं प्रवचनसार के कुछ अंश का स्वाध्याय भी सुना अंजना व पवनञ्जय के जीवन चरित्र पर मनमोहक प्रवचन, श्रावक धर्म, व उत्तम क्षमादि 10 श्रमण धर्म बारह भावना एवं समय-समय पर प्रासंगिक जीवन्त प्रवचन भी सुनें।

प0 पू0 मुनि श्री गुणों के सागर हैं, उनके गुणों का बखान करना, सूरज को दीपक दिखाने के समान ही होगा। हमने अपनी स्थूल बुद्धि से देखा है कि मुनि श्री ख्याति, पूजा, लाभ, बड़ाई (नामवरी) से दूर रहते हैं। पद, उपाधि व यश की कामना आदि की ईहा से रहित है। सहज, सरल, अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगी, समभावी, उपशान्त मूर्ति व क्षमाशील हैं जिनदर्शन की प्रभावना व आत्म साधना की साधना में रत, संयमासक्त, निस्पृही संत हैं। ये जिन दर्शन प्रभावना, कलैन्डर, पत्रिका व चित्रों से नहीं अपितु निर्मल चारित्र को निर्माण कर करना चाहते हैं। उनकी दृष्टि में निर्मल आचरण व निष्कांक्ष श्रद्धा युक्त साधना तथा वैराग्य परक ज्ञानाभ्यास ही धर्म है। ये आदर्श तपस्वी ही हमारे संत, अरिहंत, भगवंत व गुरु है। ये अपनी भोली सी सूरत व मोहनी मूरत से हर किसी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेते हैं इनके चेहरे पर सदैव निश्छल, वात्सल्य युक्त मुस्कान ही सदैव झलकती दिखायी देती है।

इनके पुनीत सानिध्य में 126 दिन तक यहाँ मेला सा लगा रहा, हमारा ग्रीन पार्क चार माह तक किसी अतिशय क्षेत्र की महिमा से कम नहीं रहा। मुनिसंघ के सानिध्य का लाभ कैलाश नगर, कृष्णानगर, व धर्मपुरा (चांदनी चौक) वाले महानुभावों ने भी प्राप्त किया। वहाँ भी विभिन्न विधान व शिविरों का आयोजन हुआ। पूज्य ऐलक जी की पावन प्रेरणा प्राप्त कर हमने

भगवान महावीर स्वामी जी की 2600 वीं जन्म जयन्ती पर तेरह ग्रंथ प्रकाशित करने का संकल्प लिया था। यह कार्य हमने (पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मंदिर समिति/जैन सभा युसुफ सराय दिल्ली) आज आपके हाथों में ग्रन्थ सौंप कर पूर्ण किया है। हम (सम्पूर्ण जैन समाज ग्रीन पार्क) आज अत्यन्त आनंदित हैं जो कि यह शुभ कार्य करने में प्रभु कृपा व गुरु आशीर्वाद से अल्पकाल में ही समर्थ हो सकें। हमारी जैन समाज सदैव सच्चे देव-शास्त्र गुरु धर्म व साधर्मी जनों की सेवा में समर्पित रही है, और आगे भी ऐसे शुभ कार्य निरन्तर करते रहे, ऐसा श्री गुरू से मंगल आशीर्वाद चाहते हैं। इसी पवित्र भावना के साथ ही श्री गुरुदेव के चरणों में व समस्त मुनि संघ के चरणों में मन-वचन-काय से क्षमा मांगते हुये उनके चरणों में बारम्बार नमोऽस्तु करते हैं।

प्रधान उपप्रधान कोषाध्यक्ष व्यवस्थापक महामंत्री

सकल दिगम्बर जैन समाज ग्रीन पार्क व जैन सभा युसुफ सराय,
नई दिल्ली।

पुण्यार्जक श्रावक

सुदर्शन लाल जैन

एस-45, ग्रेटर कैलाश नगर-I,

नई दिल्ली-110016

सकल दिगम्बर जैन समाज

श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर

जैन सभा युसुफ सराय-ग्रीन पार्क (रजि.)

एन-10, ग्रीन पार्क एक्स.,

नई दिल्ली-110016

(1000 प्रति)

चन्द्रा कॉपी हाउस, आगरा

(200 प्रति)

卐 卐 卐

मुनि निर्णय सागर द्वारा रचित एवं सम्पादित ग्रंथों की सूची

- सुकुमाल चरित्र
- चारुदत्त चरित्र
- गौतम स्वामी चरित्र
- महीपाल चरित्र
- जैन व्रत कथा संग्रह
- धन्य कुमार चरित्र
- सुलोचना चरित्र
- सुभौम चक्रवर्ती चरित्र
- जिन दत्त चरित्र
- कुरल-काव्य
- पुराण सार संग्रह - 1
- पुराण सार संग्रह - 2
- चेलना चरित्र
- रयणसार
- आहार दान
- जिन श्रमण भारती
- धर्म संस्कार भाग-1
- सदार्चन सुमन
- तनाव से मुक्ति
- धम्म रसायणं
- आराधना कथाकोश-1,2,3
- तत्वार्थ सार
- योगामृत
- सार समुच्चय
- महापुराण-1
- महापुराण-2
- चित्रसेन पद्मावती चरित्र
- श्री राम चरित्र
- अमरसेण चरिउ
- सर्वोदयी नैतिक धर्म

यदि यह शास्त्र आपको अच्छा लगे तो आप सभी को पढायें। उत्सव, व्रत, त्यौहार, जन्म दिवस, पुण्य स्मृति के उपलक्ष्य में बाँटने एवं छापने योग्य समझें तो लागत मूल्य छपवाइये। ट्रस्ट -न्यास- फाउंडेशन आदि द्वारा छपवाना चाहते हो तो उनके नाम, चित्र, परिचय सहित छपवा सकते हैं।

प्रकाशक

आराधना कथा कोश (तीसरा भाग)

* * * * * *

आराधना कथाकोश

{ तीसरा भाग }

सत्य धर्मका उपदेश करनेवाले अतएव सारे संसारके स्वामी जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर श्रीधर्मघोष मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

एक महीनाके उपवासे धर्ममूर्ति श्रीधर्मघोष मुनि एक दिन चम्पापुरीके किसी मुहल्ले में पारण कर तपोवनकी ओर लौट रहे थे । रास्ता भूल जानेसे उन्हे बड़ी दूर तक हरी-हरी घास पर चलना पड़ा । चलनेमें अधिक परिश्रम होनेसे थकावटके मारे उन्हें प्यास लग आई । वे आकर गंगाके किनारे एक छायादार वृक्षके नीचे बैठ गये । उन्हे प्याससे कुछ व्याकुलसे देखकर गगा देवी पवित्र जलका भरा एक लोटा लेकर उनके पास आई । वह उनसे बोली—योगिराज, मैं आपके लिए ठंडा पानी लाई हूँ, आप इसे पीकर प्यास शान्त कीजिए । मुनिने कहा—देवी, तूने अपना कर्त्तव्य बजाया, यह तेरे लिए उचित ही था, पर हमारे लिए देवो द्वारा दिया गया आहार-पानी काम नहीं आता । देवी सुनकर बड़ी चकित हुई । वह उसी समय इसका कारण जाननेके लिए विदेहक्षेत्रमे गई और वहाँ सर्वज्ञ भगवान्को नमस्कार कर उसने पूछा—भगवन्, एक प्यासे मुनिको मैं जल पिलाने गई, पर उन्होंने मेरे हाथका पानी नहीं पिया, इसका क्या कारण है ? तब भगवान्ने इसके उत्तरमें कहा—देवोंका दिया आहार मुनि लोग नहीं कर सकते । भगवान्का उत्तर सुन देवी निरुपाय हुई । तब उसने मुनिको शान्ति प्राप्त हो, इसके लिए उनके चारो ओर सुगन्धित और ठण्डे जलकी वर्षा शुरू की । उससे मुनिको शान्ति प्राप्त हुई । इसके बाद शुक्लध्यान द्वारा घातिया कर्मोंका नाश कर उन्होंने केवलज्ञान प्राप्त किया । स्वर्गके देव उनकी पूजा करनेको आये । अनेक भव्य-जनो आत्म-हितके रास्ते पर लगा कर अन्तमे उन्होंने निर्वाण लाभ किया ।

वे धर्मघोष मुनिराज आपको तथा मुझे भी सुखी करें, जो पदार्थोंकी सूक्ष्म स्थिति देखनेके लिए केवलज्ञानरूपी नेत्रके धारक हैं, भव्य जनोंको

हितमार्गमें लगानेवाले हैं, लोक तथा अलोकके जाननेवाले हैं, देवों द्वारा पूजा किये जाते हैं और भव्य-जनोंके मिथ्यात्व, मोहरूपी गाढ़े अन्धकारको नाश करनेके लिए सूर्य हैं।

---

६४. श्रीदत्त मुनिकी कथा

केवलज्ञानरूपी सर्वोच्च लक्ष्मीके जो स्वामी हैं, ऐसे जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर श्रीदत्त मुनिकी कथा लिखी जाती है, जिन्होंने देवों द्वारा दिये हुए कष्टको बड़ी शान्तिसे सहा ।

श्रीदत्त इलावर्द्धनपुरीके राजा जितशत्रुकी रानी इला के पुत्र थे । अयोध्याके राजा अंशुमानकी राजकुमारी अंशुमतीसे इनका ब्याह हुआ था । अंशुमतीने एक तोतेको पाल रक्खा था । जब ये पति-पत्नी विनोदके लिए चौपड़ वगैरह खेलते तब तोता कौन कितनी बार जीता, इसके लिए अपने पैरके नखसे रेखा खींच दिया करता था । पर इसमें यह दुष्टता थी कि जब श्रीदत्त जीतता तब तो यह एक ही रेखा खींचता और जब अपनी मालकिनकी जीत होती तब दो रेखाएँ खींच दिया करता था । आश्चर्य है कि पक्षी भी ठगाई कर सकते हैं । श्रीदत्त तोतेकी इस चालाकीको कई बार तो सहन कर गया । पर आखिर उसे तोते पर बहुत गुस्सा आया । सो उसने तोतेकी गरदन पकड़ कर मरोड़ दी । तोता उसी दम मर गया । बड़े कष्टके साथ मरकर वह व्यन्तरदेव हुआ ।

इधर साँझको एक दिन श्रीदत्त अपने महल पर बैठा हुआ प्रकृति देवीकी सुन्दरताको देख रहा था । इतनेमें एक बादलका बड़ा भारी टुकड़ा उसकी आँखोंके सामनेसे गुजरा । वह थोड़ी दूर न गया होगा कि देखतेदेखते छिन्न-भिन्न हो गया । उसकी इस क्षण नश्वरताका श्रीदत्तके चित्त पर बहुत असर पड़ा । ससारकी सब वस्तुएँ उसे बिजलीकी तरह नाशवान् देख पड़ने लगीं । सर्पके समान भयकर विषय-भोगोसे उसे डर लगने लगा । शरीर जिसे कि वह बहुत प्यार करता था सर्व अपवित्रताका स्थान जान पड़ने लगा । उसे ज्ञान हुआ कि ऐसे दुःखमय और देखते-देखते नष्ट होनेवाले ससारके साथ जो प्रेम करते हैं, माया-ममता बढ़ाते हैं, वे बडे बेसमझ हैं । वह अपने लिए भी बहुत पछताया कि हाय ! मैं कितना मूर्ख हूँ जो अब तक अपने हितको न शोध सका । मतलब यह कि संसारकी दशासे उसे बड़ा वैराग्य हुआ और अन्तमे वह सुखके कारण जिनदीक्षा ले ही गया ।

इसके बाद श्रीदत्त मुनिने बहुतसे देशों और नगरोंमें भ्रमण कर अनेक

भव्य-जनोंको सम्बोधा, उन्हें आत्महितकी ओर लगाया। घूमते-फिरते वे एक बार अपने शहरकी ओर आ गये। समय जाड़े का था। एक दिन श्रीदत्त मुनि शहर बाहर कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे, उन्हें ध्यानमें खडा देख उस तोतेके जीवको, जिसे श्रीदत्तने गरदन मरोड़ मार डाला था और जो मरकर व्यन्तर हुआ था, अपने बैरी पर बड़ा क्रोध आया। उस बैरका बदला लेनेके अभिप्रायसे उसने मुनि पर बड़ा क्रोध आया। उस बैरका बदला लेनेके अभिप्रायसे उसने मुनि पर बडा उपद्रव किया। एक तो वैसे ही जाड़ेका समय, उस पर इसने बड़ी जोरकी ठंडी-ठार हवा चलाई, पानी बरसाया, ओले गिराये। मतलब यह कि उसने अपना बदला चुकानेमें कोई बात उठा न रखकर मुनिको बहुत ही कष्ट दिया। श्रीदत्त मुनिराजने इन सब कष्टोंको बडी शान्ति और धीरजके साथ सहा। व्यन्तर इनका पूरा दुश्मन था, पर तब भी इन्होंने उस पर रंच मात्र भी क्रोध न किया। वे बैरी और हितूको सदा समान भाव से देखते थे। अन्तमें शुक्लध्यान द्वारा केवलज्ञान प्राप्त कर वे कभी नाश न होनेवाले मोक्ष स्थानको चले गये।

जितशत्रु राजाके पुत्र श्रीदत्त मुनि देवकृत कष्टोंको बड़ी शान्तिके साथ सहकर अन्तमें शुक्लध्यान द्वारा सब कर्मोंका नाश कर मोक्ष गये। वे केवलज्ञानी भगवान् मुझे अपनी भक्ति प्रदान करें, जिससे मुझे भी शान्ति प्राप्त हो।

६५. वृषभसेनकी कथा

जिन्हे सारा ससार बड़े आनन्दके साथ सिर झुकाता है, उन जिन भगवान्को नमस्कार कर वृषभसेनका चरित लिखा जाता है।

उज्जैनके राजा प्रद्योत एक दिन उन्मत्त हाथी पर बैठकर हाथी पकडनेके लिए स्वय किसी एक घने जंगलमें गये। हाथी इन्हें बडी दूर ले भागा और आगे-आगे भागता ही चला जाता था। इन्होंने उसके ठहरानेकी बड़ी कोशिश की, पर उसमे ये सफल नहीं हुए। भाग्यसे हाथी एक झाड़के नीचे होकर जा रहा था कि इन्हें सुबुद्धि सूझ गई। वे उसकी टहनी पकड कर लटक गये और फिर धीरे-धीरे नीचे उतर आये। यहाँसे चलकर ये खेट नामके एक छोटेसे पर बहुत सुन्दर गाँवके पास पहुँचे। एक पनघट पर जाकर ये बैठ गये। इन्हें बडी प्यास लग रही थी। इन्होंने उसी समय पनघट पर पानी भरनेको आई हुई जिनपालकी लड़की जिनदत्तासे जल पिला देनेके लिए कहा। उसने इनके चेहरेके रग-ढगसे इन्हे कोई बड़ा आदमी समझ जल पिला दिया। बाद अपने घर पर आकर उसने प्रद्योतका हाल अपने पितासे कहा। सुनकर जिनपाल दौड़ा हुआ आकर इन्हें अपने घर लिवा लाया और बडे आदर सत्कारके साथ इसने उन्हें स्नान-भोजन कराया। प्रद्योत उसकी इन मेहमानीसे बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने जिनपालको अपना सब परिचय दिया। जिनपालने ऐसे महान् अतिथि द्वारा अपना घर पवित्र होनेसे अपनेको बड़ा भग्यशाली माना। वे कुछ दिन वहाँ और ठहरे। इतनेमें उनके सब नौकर-चाकर भी उन्हें लिवानेको आ गये। प्रद्योत अपने शहर जानेको तैयार हुए। इसके पहले एक बात कह देनेकी है कि जिनदत्ताको जबसे प्रद्योतने देखा तब हीसे उनका उस पर अत्यन्त प्रेम हो गया था और इसीसे जिनपालकी सम्मति पा उन्होंने उसके साथ ब्याह भी कर लिया था। दोनो नव दम्पति सुखके साथ अपने राज्यमें आ गये। जिनदत्ताको तब प्रद्योतने अपनी पट्टरानीका सम्मान दिया। सच है, समय पर दिया हुआ थोड़ा भी दान बहुत ही सुखोका देनेवाला होता है। जैसे वर्षाकालमे बोया हुआ बीज बहुत फलता है। जिनदत्तासे, जो उसने प्रद्योतको किया था, जिनदत्ताको एक राजरानी होनेका सौभाग्य प्राप्त हुआ। ये नये दम्पति सुखसे

समय बिताने लगे, प्रतिदिन नये-नये सुखोंका स्वाद लेनेमें इनके दिन कटने लगे ।

कुछ दिनों बाद इनके एक पुत्र हुआ । जिस दिन पुत्र होनेवाला था, उसी रातको राजा प्रद्योतने सपनेमें एक सफेद बैलको देखा था । इसलिए पुत्रका नाम भी उन्होंने वृषभसेन रख दिया । पुत्र-लाभ हुए बाद राजाको प्रवृत्ति धर्म-कार्योंकी ओर और अधिक झुक गई । वे प्रतिदिन पूजा, प्रभावना, अभिषेक, दान आदि पवित्र कार्योंको बड़ी भक्ति श्रद्धाके साथ करने लगे । इसी तरह सुखके साथ कोई आठ बरस बीत गये । जब वृषभसेन कुछ होशियार हुआ तब एक दिन राजाने उससे कहा—बेटा, अब तुम अपने इस राज्यके कारभारको सम्भालो । मैं अब जिन भगवानके उपदेश किये पवित्र तपको ग्रहण करता हूँ । वही शान्ति प्राप्तिका कारण है । वृषभसेनने तब कहा—पिताजी, आप तप क्यों ग्रहण करते हैं, क्या परलोक-सिद्धि, मोक्षप्राप्ति राज्य करते हुए नहीं हो सकती है ? राजाने कहा—बेटा हाँ, जिसे सच्ची सिद्धि या मोक्ष कहते हैं, वह बिना तप किये नहीं होती । जिन भगवान्ने मोक्षका कारण एक मात्र तप बताया है । इसलिए आत्महित करनेवालोंको उसका ग्रहण करना अत्यन्त ही आवश्यक है । राजपुत्र वृषभसेनने तब कहा—पिताजी, यदि यह बात है तो फिर मैं ही इस दु खके कारण राज्यको लेकर क्या करूँगा ? कृपाकर यह भार मुझ पर न रखिए । राजाने वृषभसेनको बहुत समझाया, पर उसके ध्यानमें तप छोड़कर राज्यग्रहण करनेकी बात बिलकुल न आई । लाचार हो राजा राज्यभार अपने भतीजेको सौंपकर आप पुत्रके साथ जिनदीक्षा ले गये ।

यहाँसे वृषभसेन मुनि तपस्या करते हुए अकेले ही देश, विदेशोंमें धर्मोपदेशार्थ घूमते-फिरते एक दिन कौशाम्बीके पास आ एक छोटी-सी पहाडी पर ठहरे । समय गर्मीका था । बड़ी तेज धूप पडती थी । मुनिराज एक पवित्र शिला पर कभी बैठे और कभी खड़े इस धूपमें योग साधा करते थे । उनकी इस कडी तपस्या और आत्मतेजसे दिपते हुए उनके शारीरिक सौन्दर्यको देख लोगोंकी उन पर बड़ी श्रद्धा हो गई । जैनधर्म पर उनका विश्वास खूब दृढ जम गया ।

एक दिन चारित्रचूड़ामणि श्रीवृषभसेन मुनि भिक्षार्थ शहरमें गये हुये थे कि पीछेसे किसी जैनधर्मके प्रभावको न सहनेवाले बुद्धदास नामके बुद्धधर्मीने मुनिराजके ध्यान करनेकी शिलाको आगसे तपाकर लाल सुर्ख कर दिया। सच है, साधु-महात्माओंका प्रभाव दुर्जनोंसे नहीं सहा जाता। जैसे सूरजके तेजको उल्लू नहीं सह सकता। जब मुनिराज आहार कर पीछे लौटे और उन्होंने शिलाको अग्निकी तपी हुई देखा, यदि वे चाहते और भौतिक शरीरसे उन्हें मोह होता तो बिलाशक वे अपनी रक्षा कर सकते थे। पर उनमें यह बात न थी; वे कर्त्तव्यशील थे, अपनी प्रतिज्ञाओंका पालना वे सर्वोच्च समझते थे। यही कारण था कि वे संन्यासकी शरण ले उस आगसे धधकती शिला पर बैठ गये। उस समय उनके परिणाम इतने ऊँचे चढे कि उन्हें शिला पर बैठते ही केवलज्ञान हो गया और उसी समय अघातिया कर्मोंका नाश कर उन्होंने निर्वाण-लाभ किया। सच है, महापुरुषोंका चारित्र मेरुसे भी कहीं अधिक स्थिर होता है।

जिसके चित्तरूपी अत्यन्त ऊँचे पर्वतकी तुलना में बड़े-बडे पर्वत एक ना कुछ चीज परमाणुकी तरह दीखने लगते हैं, समुद्र दूबाकी अणी पर ठहरे जलकणसा प्रतीत होता है, वे गुणोंके समुद्र और कर्मोंको नाश करनेवाले वृषभसेन जिन मुझे अपने गुण प्रदान करें, जो सब मनचाही सिद्धियोंके देनेवाले हैं।

---

६६. कार्त्तिकेय मुनिकी कथा

संसारके सूक्ष्मसे सूक्ष्म पदार्थोंको देखने जाननेके लिए केवलज्ञान जिनका सर्वोत्तम नेत्र है और जो पवित्रताकी प्रतिमा और सब सुखोंके दाता हैं, उन जिन भगवानको नमस्कार कर कार्तिकेय मुनिकी कथा लिखी जाती है।

कार्तिकपुरके राजा अग्निदत्तकी रानी वीरवतीके कृत्तिका नामकी एक लड़की थी। एक बार अठाईके दिनोंमें उसने आठ दिनके उपवास किये। अन्तके दिन वह भगवान्की पूजा कर शेषाको-भगवान्के लिए चढ़ाई फूलमालाको लाई। उसे उसने अपने पिताको दिया। उस समय उसकी दिव्य रूपराशिको देखकर उसके पिता अग्निदत्तकी नियत ठिकाने न रही। कामके वश हो उस पापीने बहुतसे अन्य धर्मी और कुछ जैन साधुओंको इकट्ठा कर उनसे पूछा—योगी-महात्माओ, आप कृपा कर मुझे बतलावे कि मेरे घरमे पैदा हुए रत्नका मालिक मैं ही हो सकता हूँ या कोई और ? राजाका प्रश्न पूरा होता है कि सब ओरसे एक ही आवाज आई कि महाराज, उस रत्नके तो आप ही मालिक हो सकते हैं, न कि दूसरा। पर जैनसाधुओंने राजाके प्रश्न पर कुछ गहरा विचार कर इस रूपमें राजाके प्रश्नका उत्तर दिया—राजन्, यह बात ठीक है कि अपने यहाँ उत्पन्न हुए रत्नके मालिक आप हैं, पर एक कन्या-रत्नको छोड़ कर। उसकी मालिकी पिताके नातेसे ही आप कर सकते हैं और रूपमे नहीं। जैन साधुओंका यह हितभरा उत्तर राजाको बड़ा बुरा लगा और लगना ही चाहिए, क्योंकि पापियोंको हितकी बात कब सुहाती है ? राजाने गुस्सा होकर उन मुनियोंको देश बाहर कर दिया और अपनी लड़कीके साथ स्वय ब्याह कर लिया। सच है, जो पापी है, कामी हैं जिन्हें आगामी दुर्गतियोंमें दु ख उठाना है, उनमें कहाँ धर्म, कहाँ लाज, कहाँनीति-सदाचार और कहाँ सुबुद्धि ?

कुछ दिनों बाद कृत्तिकाके दो सन्तान हुई। एक पुत्र और एक पुत्री। पुत्रका नाम रखा कार्तिकेय और पुत्रीका नाम वीरमती। वीरमती बड़ी खूबसूरत थी। उसका ब्याह रोहेड़ नगरके राजा क्रोञ्चके साथ हुआ। वीरमती वहाँ रहकर सुखके साथ दिन बिताने लगी।

इधर कार्तिकेय भी बड़ा हुआ । अब उसकी उम्र कोई १४ वर्ष की हो गई थी । एक दिन वह अपने साथी राजकुमारोंके साथ खेल रहा था । वे सब अपने नानाके यहाँसे आए हुए अच्छे-अच्छे कपड़े और आभूषण पहने हुए थे । पूछने पर कार्तिकेयको ज्ञात हुआ कि वे वस्त्राभरण उन सब राजकुमारोंके नाना-मामाके यहाँसे आए हैं । तब उसने अपनी माँसे जाकर पूछा—क्यों माँ ! मेरे साथी राजपुत्रोंके लिए तो उनके नाना-मामा अच्छे-अच्छे वस्त्राभरण भेजते हैं, भला फिर मेरे नाना-मामा मेरे लिए क्यों नहीं भेजते हैं ? अपने प्यारे पुत्रकी ऐसी भोली बात सुनकर कृत्तिका का हृदय भर आया । आँखोंसे आँसू बह चले । अब वह उसे क्या कहकर समझाये और कहनेको जगह ही कौन-सी बच रही थी । परन्तु अबोध पुत्रके आग्रहसे उसे सच्ची हालत कहनेको बाध्य होना पडा । वह रोती हुई बोली—बेटा, मैं इस महापापकी बात तुझसे क्या कहूँ । कहते हुए छाती फटती है । जो बात कभी नहीं हुई, वही बात मेरे तेरे सम्बन्धमे है । वह केवल यही कि जो मेरे पिता हैं वे ही तेरे भी पिता हैं । मेरे पिताने मुझसे बलात् ब्याह कर मेरी जिन्दगी कलंकित की । उसीका तू फल है । कार्तिकेयको काटो तो खून नहीं । उसे अपनी माँका हाल सुनकर बेहद दुःख हुआ । लज्जा और आत्मग्लानिसे उसका हृदय तिलमिला उठा । इसके लिए वह लाइलाज था । उसने फिर अपनी माँसे पूछा—तो क्यो माँ ! उस समय मेरे पिताको ऐसा अनर्थ करते किसी ने रोका नहीं, सब कानोमे तेल डाले पडे रहे ? उसने कहा—बेटा ! रोका क्यो नहीं ? मुनियोंने उन्हे रोका था, पर उनकी कोई बात नहीं सुनी गई, उलटे वे ही देशसे निकाल दिये गए ।

कार्तिकेयने तब पूछा—माँ वे गुणवान् मुनि कैसे होते हैं ? कृत्तिका बोली—बेटा ! वे शान्त रहते हैं, किसीसे लड़ते-झगड़ते नहीं । कोई दस गालियाँ भी उन्हें दे जाय तो वे उससे भी कुछ नहीं कहते और न क्रोध ही करते हैं । बेटा ! वे बड़े पण्डित होते हैं, उनके पास धन-दौलत तो दूर रहा, एक फूटी कौड़ी भी नहीं रहती । वे कभी कपड़े नहीं पहिनते, उनका वस्त्र केवल यह आकाश है । चाहे कैसी ही ठण्ड या गर्मी पडे, चाहे कैसी ही बरसात हो उनके लिए सब समान है । बेटा ! वे बड़े दयावान होते हैं, कभी

किसी जीवको जरा भी नहीं सताते । इसी दयाको पूरी तौरसे पालनेके लिए वे अपने पास सदा मोरके अत्यन्त कोमल पंखोंकी एक पीछी रखते हैं और जहाँ उठते-बैठते हैं, वहाँकी जमीनको पहले उस पीछीसे झाड-पोंछकर साफ कर लेते हैं । उनके हाथमें लकड़ीका एक कमण्डलु होता है, जिसमें वे शौच वगैरहके लिए प्रासुक (जीवरहित) पानी रखते हैं । बेटा, उनकी चर्या बड़ी ही कठिन है । वे भिक्षाके लिये श्रावकोंके यहाँ जाते हैं जरूर, पर कभी माँग कर नहीं खाते । किसीने उन्हें आहार नहीं दिया तो वे भूखे ही पीछे तपोवनमें लौट जाते हैं । वे आठ-आठ, पन्द्रह-पन्द्रह दिनके उपवास करते हैं । बेटा, मैं तुझे उनके आचार-विचारकी बातें कहाँ तक बताऊँ । तू इतनेमें ही समझ ले कि संसारके सब साधुओंमें वे ही सच्चे साधु हैं । अपनी माता द्वारा जैन साधुओंकी तारीफ सुनकर कार्तिकेयकी उन पर बड़ी श्रद्धा हो गई । उसे अपने पिताके कार्यसे वैराग्य तो पहले ही हो चुका था, उस पर माताके इस प्रकार समझानेसे उसकी जड़ और मजबूत हो गई । वह उसी समय सब मोह ममता तोड़कर घरसे निकल गया और मुनियोंके स्थान तपोवनमें जा पहुँचा । मुनियोंका संघ देख उसे बड़ी प्रसन्नता हुई । उसने बड़ी भक्तिसे उन सब साधुओंको हाथ जोड़कर प्रणाम किया और दीक्षाके लिए उनसे प्रार्थना की । संघके आचार्यने उसे होनहार जान दीक्षा देकर मुनि बना लिया । कुछ दिनोंमें ही कार्तिकेय मुनि, आचार्यके पास शास्त्राभ्यास कर बड़े विद्वान् हो गए ।

कार्तिकेयकी माताने पुत्रके सामने मुनियोंकी बहुत प्रशंसा की थी, पर उसे यह मालूम न था कि उसकी की हुई प्रशंसाका कार्तिकेय पर यह प्रभाव पड़ेगा कि वह दीक्षा लेकर मुनि बन जाय । इसलिए जब उसने जाना कि कार्तिकेय योगी बनना चाहता है, तो उसे बड़ा दुःख हुआ । वह कार्तिकेयके सामने बहुत रोई, गिड़गिड़ाई कि वह दीक्षा न ले, परन्तु कार्तिकेय अपने दृढ़ निश्चयसे विचलित नहीं हुआ और तपोवनमें जाकर साधु बन ही गया । कार्तिकेयकी जुदाईका दुःख सहना उसकी माँके लिये बड़ा कठिन हो गया । दिनोंदिन उसका स्वास्थ्य बिगड़ने लगा और आखिर वह पुत्र शोकसे मृत्युको प्राप्त हुई । मरते समय भी वह पुत्रके आर्तध्यानसे मरी, अतः मरकर व्यन्तर देवी हुई ।

उधर कार्त्तिकेय मुनि घूमते-फिरते एक बार रोहेड़ नगरीकी ओर आ गये, जहाँ इनकी बहिन ब्याही थी । ज्येष्ठका महीना था । खूब गर्मी थी । अमावस्याके दिन कार्त्तिकेय मुनि शहरमें भिक्षाके लिए गये । राजमहलके नीचे होकर वे जा रहे थे कि उन पर महल पर बैठी हुई उनकी बहिन वीरमतीकी नजर पड़ गई । वह उसी समय अपनी गोदमें सिर रखकर लेटे हुए पतिके सिरको नीचे रखकर दौड़ी हुई भाईके पास आई और बड़ी भक्तिसे उसने भाईको हाथ जोड़कर नमस्कार किया । प्रेमके वशीभूत हो वह उसके पाँवोंमें गिर पड़ी । और ठीक है—भाई होकर फिर मुनि हो तब किसका प्रेम उन पर न हो ? क्रौंचराजने जब एक नंगे भिखारीके पाँव पड़ते अपनी रानीको देखा तब उसके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा । उन्होंने आकर मुनिको खूब मार लगाई । यहाँ तककि मुनि मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर पड़े । सच है, पापी, मिथ्यात्वी और जैनधर्मसे द्वेष करनेवाले लोग ऐसा कौन नीच कर्म नहीं कर गुजरते जो जन्म-जन्ममें अनन्त दु खोंका देनेवाला न हो ।

कार्त्तिकेयको अचेत पड़े देखकर उनकी पूर्वजन्मकी माँ, जो इस जन्ममें व्यन्तर देवी हो गई थीं, मोरनीका रूप ले उनके पास आई और उन्हें उठा लाकर बड़े यत्नसे शीतलनाथ भगवान्के मन्दिरमें एक निरापद जगहमें रख दिया । कार्त्तिकेय मुनिकी हालत बहुत खराब हो चुकी थी । उनके अच्छे होनेकी कोई सूरत न थी । इसलिये ज्योंही मुनिको मूर्च्छासे चेत हुआ उन्होंने समाधि ले ली । उसी दशामें शरीर छोड़कर वे स्वर्गधाम सिधारे । तब देवोंने आकर उनकी भक्तिसे बड़ी पूजा की । उसी दिनसे वह स्थान भी कार्त्तिकेय तीर्थके नामसे प्रसिद्ध हुआ और वे वीरमतीके भाई थे इसलिए 'भई दूज' के नामसे दूसरा लौकिक पर्व प्रचलित हुआ ।

आप लोग जिन भगवान् द्वारा उपदिष्ट ज्ञानका अभ्यास करें । वह सब सन्देहोंका नाश करनेवाला और स्वर्ग तथा मोक्षका सुख प्रदान करनेवाला है । जिनका ऐसा उच्च ज्ञान संसारके पदार्थोंका स्वरूप दिखानेके लिये दिये की तरह सहायता करनेवाला है वे देवों द्वारा पूजे जानेवाले, जिनेन्द्र भगवान् मुझे भी कभी नाश न होनेवाला सुख देकर अविनाशी बनावें ।

---

६७. अभयघोष मुनिकी कथा

देवों द्वारा पूजा भक्ति किये गये जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर अभयघोष मुनिका चरित्र लिखा जाता है ।

अभयघोष काकन्दीके राजा थे उनकी रानीका नाम अभयमती था । दोनोंमें परस्पर बहुत प्यार था ।

एक दिन अभयघोष घूमनेको जगलमे गए हुये थे । इसी समय एक मल्लाह एक बड़े और जीवित कछुएके चारो पॉव बॉध कर उसे लकड़ीमें लटकाये हुए लिये जा रहा था । पापी अभयघोषकी उस पर नजर पड़ गई । उन्होंने मूर्खताके वश हो अपनी तलवारसे उसके चारों पॉवोंको काट दिया । बड़े दु·खकी बात है कि पापी लोग बेचारे ऐसे निर्दोष जीवो को निर्दयताके साथ मार डालते हैं और न्याय-अन्यायका कुछ विचार नहीं करते । कछुआ उसी समय तडफड़ा कर गत प्राण हो गया । मरकर वह अकाम-निर्जराके फलसे इन्हीं अभयघोषके यहाँ चंडवेग नामका पुत्र हुआ ।

एक दिन राजाको चन्द्र-ग्रहण देखकर वैराग्य हुआ । उन्होंने विचार किया जो एक महान् तेजस्वी ग्रह है, जिसकी तुलना कोई नहीं कर सकता, और जिसकी गणना देवोंमें है, वह भी जब दूसरोंसे हार खा जाता है तब मनुष्योंकी तो बात ही क्या ? जिनके कि सिर पर काल सदा चक्कर लगाता रहता है । हाय, मैं बड़ा ही मूर्ख हूं जो आज तक विषयोंमें फँसा रहा और कभी अपने हितकी ओर मैंने ध्यान नहीं दिया । मोह रूपी गाढ़े अँधेरेने मेरी दोनों ऑखोको ऐसी अन्धी बना डाला, जिससे मुझे अपने कल्याणका रास्ता देखने या उस पर सावधानीके साथ चलनेको सूझ ही न पड़ा । इसी मोहके पापमय जालमें फॅस कर मैंने जैनधर्मसे विमुख होकर अनेक पाप किये । हाय, मैं अब इस ससाररूपी अथाह समुद्रको पारकर सुखमय किनारेको कैसे प्राप्त कर सकूँगा ? प्रभो, मुझे शक्ति प्रदान कीजिये, जिससे मैं आत्मिक सच्चा सुख पा सकूं । इस विचारके बाद उन्होंने निश्चित किया कि जो हुआ सो हुआ । अब भी मुझे अपने कर्त्तव्यके लिए बहुत समय है । जिस प्रकार मैंने संसारमें रहकर विषय सुख भोगा, शरीर और इन्द्रियोंको खूब सन्तुष्ट किया, उसी तरह अब

मुझे अपने आत्महितके लिए कड़ीसे कड़ी तपस्या कर अनादि कालसे पीछा किये हुए इन आत्मशत्रु कर्मोंका नाश करना उचित है, यही मेरे पहले किये कर्मोंका पूर्ण प्रायश्चित्त है, और ऐसा करनेसे ही मैं शिवरमणीके हाथोंका सुख-स्पर्श कर सकूँगा। इस प्रकार स्थिर विचार कर अभयघोषने सब राजभार अपने कुँवर चण्डवेगको सौंप जिन दीक्षा ग्रहण कर ली, जो कि इन्द्रियोंको विषयोंकी ओरसे हटाकर उन्हें आत्मशक्तिके बढ़ानेको सहायक बनाती है। इसके बाद अभयघोष मुनि संसार-समुद्रसे पार करनेवाले और जन्म-जरा-मृत्युको नष्ट करनेवाले अपने गुरु महाराजको नमस्कार कर और उनकी आज्ञा ले देश विदेशोंमें धर्मोपदेशार्थ अकेले ही विहार कर गये। इसके कितने वर्षों ही बाद वे घूमते-फिरते फिर एक बार अपनी राजधानी काकन्दीकी ओर आ निकले। एक दिन ये वीरासनसे तपस्या कर रहे थे। इसी समय इनका पुत्र चण्डवेग इस ओर आ निकला। पाठकोंको याद होगा कि चण्डवेगकी और इसके पिता अभयघोषकी शत्रुता है। कारण चण्डवेग पूर्व जन्ममें कछुआ था और उसके पाँव अभयघोषने काट डाले थे। सो चण्डवेगकी जैसे ही इन पर नज़र पड़ी उसे अपने पूर्वकी याद आ गई। उसने क्रोधसे अन्धे होकर उनके भी हाथ पाँवोंको काट डाला। सच है धर्महीन अज्ञानी जन कौन पाप नहीं कर डालते।

अभयघोष मुनि पर महान् उपसर्ग हुआ, पर वे तब भी मेरुके समान अपने कर्त्तव्यमें दृढ बने रहे। अपने आत्मध्यानमे वे रत्तीभर भी न डिगे। इसी ध्यान बलसे केवलज्ञान प्राप्त कर अन्तमें उन्होंने अक्षयानन्त मोक्ष लाभ किया। सच है, आत्मशक्ति बडी गहन है, आश्चर्य पैदा करनेवाली है। देखिए कहाँ तो अभयघोष मुनि पर दुःसह कष्टका आना और कहाँ मोक्ष प्राप्तिका कारण दिव्य आत्मध्यान।

सत्पुरुषों द्वारा सेवा किये गये वे अभयघोष मुनि मुझे भी मोक्षका सुख दें, जिन्होंने दुःसह परीषहको जीता, आत्मशत्रु राग, द्वेष, मोह, क्रोध, मान, माया, लोभ आदिको नष्ट किया और जन्म-जन्ममे दारुण दुःखोंके देनेवाले कर्मोंका क्षय कर मोक्षका सर्वोच्च सुख, जिस सुखकी कोई तुलना नहीं कर सकता, प्राप्त किया।

---

६८. विद्युच्चर मुनिकी कथा

सब सुखोंके देनेवाले और संसारमें सर्वोच्च गिने जानेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर शास्त्रोंके अनुसार विद्युच्चर मुनिकी कथा लिखी जाती है।

मिथिलापुरके राजा वामरथके राज्यमें इनके समय कोतवालके ओहदे पर एक यमदण्ड नामका मनुष्य नियुक्त था। यहीं एक विद्युच्चर नामका चोर रहता था। यह अपने चोरीके फनमें बड़ा चलता हुआ था। सो यह क्या करता कि दिनमें तो एक कोढ़ीके वेषमें किसी सुनसान मन्दिरमें रहता और ज्यों ही रात होती कि एक सुन्दर मनुष्यका वेष धारण कर खूब मजा-मोज मारता। यही ढंग इसका बहुत दिनोंसे चला आता था। पर इसे कोई पहिचान न सकता था। एक दिन विद्युच्चर राजाके देखते-देखते खास उन्हींके हो हारको चुरा लाया। पर राजासे तव कुछ भी न बन पड़ा। सुवह उठकर राजाने कोतवालको बुलाकर कहा—देखो, कोई चोर अपनी सुन्दर वेषभूषासे मुझे मुग्ध बनाकर मेरा रत्न-हार उठा ले गया है। इसलिए तुम्हें हिदायत की जाती है कि सात दिनके भीतर उस हारको या उसके चुरा लेजानेवालेको मेरे सामने उपस्थित करो, नहीं तो तुम्हें इसकी पूरी सजा भोगनी पड़ेगी। जान पड़ता है तुम अपने कर्तव्य पालनमें बहुत त्रुटि करते हो। नहीं तो राजमहलमें से चोरी हो जाना कोई कम आश्चर्यकी बात नहीं है। 'हुक्म हुजूरका' कहकर कोतवाल चोरके ढूँढ़नेको निकला। उसने सारे शहरकी गली-कूँची, घर-बार आदि एक-एक करके छान डाला, पर उसे चोरका पता कहीं न चला। ऐसे उसे छह दिन बीत गये। सातवें दिन वह फिर घर बाहर हुआ। चलते-चलते उसकी नजर एक सुनसान मन्दिर पर पड़ी। वह उसके भीतर घुस गया। वहाँ उसने एक कोढ़ीको पड़ा पाया। उस कोढ़ीका रंगढंग देखकर कोतवालको कुछ सन्देह हुआ। उसने उससे कुछ बातें-चीतें इस ढंगसे की कि जिससे कोतवाल उसके हृदयका कुछ पता पा सके। यद्यपि उस बातचीतसे कोतवालको जैसी चाहिए थी वैसी सफलता न हुई, पर तब भी उसके पहले शकको सहारा अवश्य मिला। कोतवाल उस कोढीको राजाके पास ले गया और

बोला—महाराज, यही आपके हारका चोर है । राजाके पूछने पर उस कोढ़ीने साफ इन्कार कर दिया कि मैं चोर नहीं हूँ । मुझे ये जबरदस्ती पकड़ लाये हैं । राजाने कोतवालकी ओर तब नजर की । कोतवालने फिर भी दृढ़ताके साथ कहा कि महाराज, यही चोर है । इसमें कोई सन्देह नहीं । कोतवालको बिना कुछ सुबूतके इस प्रकार जोर देकर कहते देखकर कुछ लोगोंके मनमें यह विश्वास जम गया कि यह अपनी रक्षाके लिए जबरन इस बेचारे गरीब भिखारीको चोर बताकर सजा दिलवाना चाहता है । उसकी रक्षा हो जाय, इस आशयसे उन लोगोंने राजासे प्रार्थना की कि महाराज, कहीं ऐसा न हो कि बिना ही अपराधके इस गरीब भिखारीको कोतवाल साहबकी मार खाकर बेमौत मर जाना पड़े और इसमें कोई सन्देह नहीं कि ये इसे मारेंगे अवश्य । तब कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे अपना हार भी मिल जाय और बेचारे गरीबकी जान भी न जाय । जो हो, राजाने उन लोगोंकी प्रार्थना पर ध्यान दिया या नहीं, पर यह स्पष्ट है कि कोतवाल साहब उस गरीब कोढ़ीको अपने घर लिवा ले गये और जहाँ तक उनसे बन पड़ा उन्होंने उसके मारनेपीटने, सजा देने, बाँधने आदिमें कोई कसर न की । वह कोढ़ी इतने दुःसह कष्ट दिये जाने पर भी हर बार यही कहता रहा कि मैं हर्गिज चोर नहीं हूँ । दूसरे दिन कोतवालने फिर उसे राजाके सामने खड़ा करके कहा—महाराज, यही पक्का चोर है । कोढ़ीने फिर भी यही कहा कि महाराज मैं हर्गिज चोर नहीं हूँ । सच है, चोर बड़े ही कट्टर साहसी होते हैं ।

तब राजाने उससे कहा—अच्छा, मैं तेरा सब अपराध क्षमा कर तुझे अभय देता हूँ, तू सच्चा-सच्चा हाल कर दे कि तू चोर है या नहीं ? राजासे जीवनदान पाकर उस कोढ़ी या विद्युच्चरने कहा—यदि ऐसा है तो लीजिए कृपानाथ, मैं सब सच्ची बात आपके सामने प्रगट करे देता हूँ । यह कहकर वह बोला—राजाधिराज, अपराध क्षमा हो । वास्तवमें मैं ही चोर हूँ । आपके कोतवाल साहबका कहना सत्य है । सुनकर राजा चकित हो गये । उन्होंने तब विद्युच्चरसे पूछा—जब कि तू चोर था तब फिर तूने इतनी मारपीट कैसे सह ली रे ? विद्युच्चर बोला—महाराज, इसका तो कारण यह है कि मैंने एक मुनिराज द्वारा नरकोंके दुःखोंका हाल सुन रक्खा था । तब मैंने विचारा कि नरकोंके

दुःखोंमें और इन दुःखोंमें तो पर्वत और राईका सा अन्तर है। और जब मैंने अनन्त बार नरकोंके भयंकर दुःख, जिनके कि सुनने मात्रसे ही छाती दहल उठती है, सहे है तब इन तुच्छ, ना कुछ चीज दुःखोंका सह लेना कौन बड़ी बात है ! यही विचार कर मैंने सब कुछ सहकर चूँ तक भी नहीं की। विद्युच्चरसे उसकी सच्ची घटना सुनकर राजाने खुश होकर उसे वर दिया कि तुझे 'जो कुछ माँगना हो माँग'। मुझे तेरी बातें सुननेसे बड़ी प्रसन्नता हुई। तब विद्युच्चरने कहा—महाराज, आपकी इस कृपाका मैं अत्यन्त उपकृत हूँ। इस कृपाके लिए आप जो कुछ मुझे देना चाहते है वह मेरे मित्र इन कोतवाल साहबको दीजिए। राजा सुनकर और भी अधिक अचम्भेमे पड़ गये। उन्होंने विद्युच्चरसे कहा—क्यों यह तेरा मित्र कैसे है ? विद्युच्चरने तब कहा—सुनिए महाराज, मैं सब आपको खुलासा सुनाता हूँ। यहाँसे दक्षिणकी ओर आभीर प्रान्तमें बहनेवाली वेन्ना नदीके किनारे पर बेन्नातट नामका एक शहर बसा हुआ है। उसके राजा जितशत्रु और उनकी रानी जयावती, ये मेरे माता-पिता हैं। मेरा नाम विद्युच्चर है। मेरे शहरमें ही एक यमपाश नामके कोतवाल थे। उनकी स्त्री यमुना थी। ये आपके कोतवाल यमदण्ड साहब उन्हींके पुत्र है। हम दोनों एक ही गुरुके पास पढ़े हुए हैं। इसलिए तभीसे मेरी इनके साथ मित्रता है। विशेषता यह है कि इन्होंने तो कोतवाली सम्बन्धी शास्त्राभ्यास किया था और मैंने चौर्यशास्त्रका। यद्यपि मैंने यह विद्या केवल विनोदके लिए पढ़ी थी, तथापि एक दिन हम दोनों अपनी-अपनी चतुरताकी तारीफ कर रहे थे; तब मैंने जरा घमण्डके साथ कहा—भाई, मैं अपने फनमें कितना होशियार हूँ, इसकी परीक्षा मैं इसीसे कराऊँगा कि जहाँ तुम कोतवालीके ओहदे पर नियुक्त होगे, वहीं मैं आकर चोरी करूँगा। तब इन महाशयने कहा—अच्छी बात है, मैं भी उसी जगह रहूँगा जहाँ तुम चोरी करोगे और मैं तुमसे शहरकी अच्छी तरह रक्षा करूँगा। तुम्हारे द्वारा मैं उसे कोई तरहकी हानि न पहुँचने दूँगा।

इसके कुछ दिनों बाद मेरे पिता जितशत्रु मुझे सब राजभार दे जिनदीक्षा ले गये। मैं तब राजा हुआ। और इनके पिता यमपाश भी तभी जिनदीक्षा लेकर साधु बन गये। इनके पिताकी जगह तब इन्हें मिली। पर ये मेरे डरके मारे मेरे

शहरमें न रहकर जहाँ तुम कोतवालीके ओहदे पर नियुक्त हुए। मैं अपनी प्रतिज्ञाके वश चोर बनकर इन्हें ढूँढ़नेको यहाँ आया। यह कहकर फिर विद्युच्चरने उनके हारके चुरानेकी सब बातें कह सुनाई और फिर यमदण्डको साथ लिए वह अपने शहरमें आ गया।

विद्युच्चरको इस घटनासे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने राजमहलमें पहुँचते ही अपने पुत्रको बुलाया और उसके साथ जिनेन्द्र भगवानका पूजाअभिषेक किया। इसके बाद वह सब राजभार पुत्रको सौंपकर आप बहुतसे राजकुमारोंके साथ जिनदीक्षा ले मुनि बन गया।

यहाँसे विहार कर विद्युच्चर मुनि अपने सारे संघको साथ लिए देश विदेशोंमें बहुत घूमे-फिरे। बहुतसे बे-समझ या मोह-मायामें फँसे हुए जनोंको इन्होंने आत्महितके मार्ग पर लगाया और स्वयं भी काम, क्रोध, लोभ, राग, द्वेषादि आत्मशत्रुओंका प्रभुत्व नष्ट कर उन पर विजय लाभ किया। आत्मोन्नतिके मार्गमें दिन बदिन बे-रोक टोक ये बढ़ने लगे। एक दिन घूमते-फिरते ये तामलिप्तपुरीकी ओर आये। अपने संघके साथ ये पुरीमें प्रवेश करनेको ही थे कि इतनेमें यहाँकी चामुण्डा देवीने आकर भीतर घुसनेसे इन्हें रोका और कहा—योगिराज, जरा ठहरिए, अभी मेरी पूजाविधि हो रही है। इसलिए जब तक वह पूरी न हो जाये तब तक आप यहीं ठहरें, भीतर न जायें। देवीके इस प्रकार मना करने पर भी अपने शिष्योंके आग्रहसे वे न रुककर भीतर चले गये और पुरीके पश्चिम तरफके परकोटेके पास कोई पवित्र जगह देखकर वहीं सारे संघने ध्यान करना शुरू कर दिया। अब तो देवीके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उसने अपनी मायासे कोई कबूतरके बराबर डाँस तथा मच्छर आदि खून पीनेवाले जीवोंकी सृष्टि रचकर मुनि पर घोर उपद्रव किया। विद्युच्चर मुनिने इस कष्टको बड़ी शान्तिसे सह कर बारह भावनाओंके चिन्तनसे अपने आत्माको वैराग्यकी ओर खूब दृढ़ किया और अन्तमें शुक्ल-ध्यानके बलसे कर्मोंका नाश कर अक्षय और अनन्त मोक्षके सुखको अपनाया।

उन देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों तथा राजों-महाराजों द्वारा, जो अपने

मुकुटोंमें जड़े हुए बहुमूल्य दिव्य रत्नोंकी कान्तिसे चमक रहे हैं, बड़ी भक्तिसे पूजा किये गये और केवलज्ञानसे विराजमान वे विद्युच्चर मुनि मुझे और आप भव्य-जनोंको मंगल-मोक्ष सुख दें, जिससे संसारका भटकना छूटकर शान्ति मिले।

---

६१. गुरुदत्त मुनिकी कथा

जिनकी कृपासे केवलज्ञानरूपी लक्ष्मी प्राप्त हो सकती है, उन पंच परमेष्ठी-अरहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय और साधुओंको नमस्कार कर गुरुदत्त मुनिका पवित्र चरित लिखा जाता है।

गुरुदत्त हस्तिनापुरके धर्मात्मा राजा विजयदत्तकी रानी विजयाके पुत्र थे। बचपनसे ही इनकी प्रकृतिमें गम्भीरता, धीरता, सरलता तथा सौजन्यता थी। सौन्दर्यमें भी ये अद्वितीय थे। अस्तु, पुण्यकी महिमा अपरम्पार है।

विजयदत्त अपना राज्य गुरुदत्तको सौंपकर स्वयं मुनि हो गये और आत्महित करने लगे। राज्यकी बागडोर गुरुदत्तने अपने हाथमें लेकर बड़ी सावधानी और नीतिके साथ शासन आरम्भ किया। प्रजा उनसे बहुत खुश हुई। वह अपने नये राजाको हजार-हजार साधुवाद देने लगी। दुःख किसे कहते हैं, यह बात गुरुदत्तकी प्रजा जानती ही न थी। कारण-किसीको कुछ, थोड़ा भी कष्ट होता था तो गुरुदत्त फौरन ही उसकी सहायता करता। तनसे, मनसे और धनसे वह सभीके काम आता था।

लाट देशमें द्रोणीमान पर्वतके पास चन्द्रपुरी नामकी एक सुन्दर नगरी बसी हुई थी। उसके राजा थे चन्द्रकीर्ति। इनकी रानीका नाम चन्द्रलेखा था। इनके अभयमती नामकी एक पुत्री थी। गुरुदत्तने चन्द्रकीर्तिसे अभयमतीके लिए प्रार्थना की कि वे अपनी कुमारी का ब्याह उसके साथ कर दें। परन्तु चन्द्रकीर्तिने उनकी इस बातसे साफ इन्कार कर दिया, वे गुरुदत्तके साथ अभयमतीका ब्याह करनेको राजी न हुए। गुरुदत्तने इससे कुछ अपना अपमान हुआ समझा। चन्द्रकीर्ति पर उसे गुस्सा आया। उसने उसी समय चन्द्रपुरी पर चढ़ाई कर दी और उसे चारों ओरसे घेर लिया। कुमारी अभयमती गुरुदत्त पर पहले हीसे मुग्ध थी और जब उसने उसके द्वारा चन्द्रपुरीका घेरा जाना सुना तो वह अपने पिताके पास आकर बोली—पिताजी ! अपने सम्बन्धमें मैं आपसे कुछ कहना उचित नहीं समझती, पर मेरे संसारको सुखमय होनेमें कोई बाधा या विघ्न न आये। इसलिए कहना या प्रार्थना करना उचित जान पड़ता है। क्योंकि मुझे दुःखमें देखना तो आप सपनेमें भी पसन्द नहीं करेंगे।

वह प्रार्थना यह है कि आप गुरुदत्तजीके साथ ही मेरा ब्याह कर दें, इसीमें मुझे सुख होगा। उदार-हृदय चन्द्रकीर्तिने अपनी पुत्रीकी बात मान ली। इसके बाद अच्छा दिन देख खूब आनन्दोत्सवके साथ उन्होंने अभयमतीका ब्याह गुरुदत्तके साथ कर दिया। इस सम्बन्धसे कुमार और कुमारी दोनों ही सुखी हुए। दोनोंकी मनचाही बात पूरी हुई।

ऊपर जिस द्रोणीमान पर्वतका उल्लेख हुआ है, उसमें एक बड़ा ही भयंकर सिंह रहता था। उसने सारे शहरको बहुत ही आतंकित कर रखा था। सबके प्राण सदा मुट्ठीमें रहा करते थे। कौन जाने कब आकर सिंह खा ले, इस चिन्तासे सब हर समय घबराए हुएसे रहते थे। इस समय कुछ लोगोंने गुरुदत्तसे जाकर प्रार्थना की कि राजाधिराज, इस पर्वत पर एक बड़ा भारी हिंसक सिंह रहता है। उससे हमें बड़ा कष्ट है। इसलिए आप कोई ऐसा उपाय कीजिए, जिससे हम लोगोंका कष्ट दूर हो।

गुरुदत्त उन लोगोंको धीरज बँधाकर आप अपने कुछ वीरोंको साथ लिये पर्वत पर पहुँचा। सिंहको उसने सब ओरसे घेर लिया। पर मौका पाकर वह भाग निकला और जाकर एक अँधेरी गुफामें घुसकर छिप गया। गुरुदत्तने तब इस मौकेको अपने लिए और भी अच्छा समझा। उसने उसी समय बहुतसे लकड़े गुफामें भरवाकर सिंहके निकलनेका रास्ता बन्द कर दिया। और बाहर गुफाके मुँह पर भी एक लकड़ोंका ढेर लगवा कर उसमें आग लगवा दी। लकड़ों की खाकके साथ-साथ उस सिंहकी भी देखते-देखते खाक हो गई। सिंह बड़े कष्टके साथ मरकर इसी चन्द्रपुरीमें भरत नामके ब्राह्मणकी विश्वदेवी स्त्रीके कपिल नामका लड़का हुआ। यह जन्मसे ही बड़ा क्रूर हुआ और यह ठीक भी है कि पहले जैसा संस्कार होता है, वह दूसरे जन्ममें भी आता है।

इसके बाद गुरुदत्त अपनी प्रियाको लिए राजधानीमें लौट आया। दोनों नव दम्पती बड़े सुखसे रहने लगे। कुछ दिनों बाद अभयमतीके एक पुत्रने जन्म लिया। इसका नाम रखा गया सुवर्णभद्र। यह सुन्दर था, सरलता और पवित्रताकी प्रतिमा था और बुद्धिमान् था। इसीलिये सब ही इसे बहुत प्यार करते थे। जब इसकी उमर योग्य हो गई और सब कामोंमें यह हुशियार

हो गया तब जिनेन्द्र भगवान्‌के सच्चे भक्त इसके पिता कुछ वर्षों बाद ये अनेक देशों, नगरों और गाँवोंमें धर्मोपदेश करते, भव्य-जनोंको सुलटाते एक बार चन्द्रपुरीकी ओर आये।

एक दिन गुरुदत्त मुनि कपिल ब्राह्मणके खेत पर कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे। इसी समय कपिल घर पर अपनी स्त्रीसे यह कह कर, कि प्रिये, मैं खेत पर जाता हूँ, तुम यहाँ भोजन लेकर जल्दी आना, खेत पर आ गया। जिस खेत पर गुरुदत्त मुनि ध्यान कर रहे थे, उसे तब जोतने योग्य न समझ वह दूसरे खेत पर जाने लगा। जाते समय मुनिसे वह यह कहता गया कि मेरी स्त्री यहाँ भोजन लिए हुये आवेगी सो उसे आप कह दीजियेगा कि कपिल दूसरे खेत पर गया है। तू भोजन वहीं ले जा, सच है, मूर्ख लोग महामुनिके मार्ग को न समझ कर कभी-कभी बड़ा ही अनर्थ कर बैठते हैं। इसके बाद जब कपिलको स्त्री भोजन लेकर खेत पर आई और उसने अपने स्वामीको खेत पर न पाया तब मुनिसे पूछा—क्यों साधु महाराज, मेरे स्वामी यहाँसे कहाँ गये हैं ? मुनि चुप रहे, कुछ बोले नहीं। उनसे कुछ उत्तर न पाकर वह घर पर लौट आई। इधर समय पर समय बीतने लगा ब्राह्मण देवता भूखके मारे छट-पटाने लगे पर ब्राह्मणीका अभी तक पता नहीं; यह देख उन्हें बड़ा गुस्सा आया। वे क्रोधसे गुर्राते हुए घर आये और लगे बेचारी ब्राह्मणी पर गालियोंकी बोछार करने। रौंड, मैं तो भूखके मारे मरा जाता हूँ और तेरा अभी तक आनेका ठिकाना ही नहीं ! उस नंगेको पूछकर खेत पर चली आती। बेचारी ब्राह्मणी घबराती हुई बोली—अजी तो इसमें मेरा क्या अपराध था। मैंने उस साधुसे तुम्हारा ठिकाना पूछा। उसने कुछ न बताया ! तब मैं वापिस घर पर आ गई। ब्राह्मणने दाँत पीसकर कहा—हाँ उस नगेने तुझे मेरा ठिकाना नहीं बताया। और मैं तो उससे कह गया था। अच्छा, मैं अभी ही जाकर उसे इसका मजा चखता हूँ। पाठकोंको याद होगा कि कपिल पहले जन्ममें सिंह था, और उसे इन्हीं गुरुदत्त मुनिने राज अवस्थामें जलाकर मार डाला था तब इस हिसाबमें कपिलके वे शत्रु हुए। यदि कपिलको किसी तरह यह जान पड़ता कि ये मेरे शत्रु हैं, तो उस शत्रुताका बदला उसने कभीका ले लिया होता पर उसे इसके जाननेका न तो कोई जरिया मिला और न था ही। तब

उस शत्रुताको जाग्रत करनेके लिए कपिलकी स्त्रीको कपिलके दूसरे खेत पर जानेका हाल जो मुनिने न बताया, यह घटना सहायक हो गई । कपिल गुस्सेसे लाल होता हुआ मुनिके पास पहुँचा । वहाँ बहुतसी सेमलकी रुई पड़ी हुई थी । कपिलने उस रुईसे मुनिको लपेट कर उसमें आग लगा दी । मुनि पर बड़ा उपसर्ग हुआ । पर उसे उन्होंने बड़ी धीरतासे सहा । उस समय शुक्लध्यानके बलसे घातिया कर्मोंका नाश होकर उन्हें केवलज्ञान प्राप्त हो गया । देवोंने आकर उन पर फूलोंकी वर्षा की, आनन्द मनाया । कपिल ब्राह्मण यह सब देखकर चकित हो गया । उसे तब जान पड़ा कि जिन साधुको मैंने अत्यन्त निर्दयतासे जला डाला उनका कितना माहात्म्य था ! उसे अपनी इस नीचता पर बड़ा ही पछतावा हुआ । उसने बड़ी भक्तिसे भगवान्‌को हाथ जोड़कर अपने अपराधकी उनसे क्षमा माँगी । भगवान्‌के उपदेशने उसके हृदय पर गहरा असर किया । वह उसी समय सब छोड़-छोड़ कर अपने पापका प्रायश्चित करनेके लिये मुनि हो गया । सच है, सत्पुरुषों—महात्माओंकी संगति सुख देनेवाली होती है । यही तो कारण था कि एक महाक्रोधी ब्राह्मण पल भरमें सब छोड़-छोड कर योगी बन गया । इसलिये भव्य-जनोंको सत्पुरुषोंकी संगतिसे अपनेको, अपनी सन्तानको और अपने कुलको सदा पवित्र करनेका यत्न करते रहना चाहिए । यह सत्संग परम सुखका कारण है ।

वे कर्मोंके जीतनेवाले जिनेन्द्र भगवान् सदा संसारमें रहें, उनका शासन चिरकाल तक जय लाभ करे जो सारे संसारको सुख देनेवाले हैं, सब सन्देहोंके नाश करनेवाले हैं और देवों द्वारा जो पूजा स्तुति किये जाते हैं । तथा दुःसह उपसर्ग आने पर भी जो मेरुकी तरह स्थिर रहे और जिन्होंने अपना आत्मस्वभाव प्राप्त किया ऐसे गुरुदत्त मुनि तथा मेरे परम गुरु श्रीप्रभाचन्द्राचार्य, ये मुझे आत्मीक सुख प्रदान करें ।

७०. चिलात-पुत्र की कथा

केवलज्ञान जिनका प्रकाशमान नेत्र है, उन जिन भगवानको नमस्कार कर चिलातपुत्रकी कथा लिखी जाती है।

राजगृहके राजा उपश्रेणिक एक बार हवाखोरीके लिए शहर बाहर गए। वे जिस घोड़े पर सवार थे, वह बड़ा दुष्ट था। सो उसने उन्हें एक भयानक वनमें जा छोड़ा। उस वनका मालिक एक यमदंड नामका भील था। इसके एक लड़की थी। उसका नाम तिलकवती था। वह बड़ी सुन्दरी थी। उपश्रेणिक उसे देखकर कामके बाणोंसे अत्यन्त बींधे गये। उनकी यह दशा देखकर यमदण्डने उनसे कहा—राजाधिराज, यदि आप इससे उत्पन्न होनेवाले पुत्रको राज्यका मालिक बनाना मंजूर करें तो मैं इसे आपके साथ ब्याह सकता हूँ। उपश्रेणिकने यमदण्डकी शर्त मंजूर कर ली। यमदण्डने तब तिलकवतीका ब्याह उनके साथ कर दिया। वे प्रसन्न होकर उसे साथ लिये राजगृह लौट आये।

बहुत दिनों तक उन्होंने तिलकवतीके साथ सुख भोगा, आनन्द मनाया। तिलकवतीके एक पुत्र हुआ। इसका नाम चिलातपुत्र रक्खा गया। उपश्रेणिकके पहली रानियोंसे उत्पन्न हुये और भी कई पुत्र थे। यद्यपि राज्य वे तिलकवतीके पुत्रको देनेका संकल्प कर चुके थे, तो भी उनके मनमें यह खटका सदा बना रहता था कि कहीं इसके हाथमें राज्य जाकर धूलधानी न हो जाय। जो हो, पर वे अपनी प्रतिज्ञाके न तोड़नेको लाचार थे। एक दिन उन्होंने एक अच्छे विद्वान् ज्योतिषीको बुलाकर उससे पूछा—पंडितजी, अपने निमित्तज्ञानको लगाकर मुझे आप यह समझाइए कि मेरे इन पुत्रोंमें राज्यका मालिक कौन होगा? ज्योतिषीजी बहुत कुछ सोच-विचारके बाद राजासे बोले—सुनिये महाराज, मैं आपको इसका खुलासा कहता हूँ। आपके सब पुत्र खीरका भोजन करनेको एक जगह बैठाये जायें और उस समय उनपर कुत्तोंका एक झुंड छोड़ा जाय। तब उन सबमें जो निडर होकर वहीं रखे हुए सिंहासन पर बैठ नगारा बजाता जाय और भोजन भी करता जाय और दूसरे कुत्तोंको भी डालकर खिलाता जाय, उसमें राजा होनेकी योग्यता है। मतलब यह कि अपनी बुद्धिमानीसे कुत्तोंके स्पर्शसे अछूता रहकर आप भोजन कर ले।

दूसरा निमित्त यह होगा कि आग लगने पर जो सिंहासन, छत्र, चँवर आदि राज्यचिन्होंको निकाल सके, वह राजा हो सकेगा। इत्यादि और कई बातें है, पर उनके विशेष कहनेकी जरूरत नहीं।

कुछ दिन बीतने पर उपश्रेणिकने ज्योतिषीजीके बताये निमित्तकी जाँच करनेका उद्योग किया। उन्होंने सिंहासनके पास ही एक नगारा रखवाकर वहीं अपने सब पुत्रोंको खीर खानेको बैठाया। वे जीमने लगे कि दूसरी ओरसे कोई पाँच सौ कुत्तोंका झुण्ड दौड़कर उन पर लपका। उन कुत्तोंको देखकर राजकुमारोंके तो होश गायब हो गये। वे सब चीख मारकर भाग खड़े हुए। पर हाँ एक श्रेणिक जो इन सबसे वीर और बुद्धिमान था, उन कुत्तोंसे डरा नहीं और बड़ी फुरतीसे उठकर उसने खीर परोसी हुई बहुत-सी पत्तलोंको एक ऊँची जगह रख कर आप ही रखे हुए सिंहासन पर बैठ गया और आनन्दसे खीर खाने लगा। साथमें वह उन कुत्तोंको भी थोड़ी-थोड़ी देर बाद एक एक पत्तल उठा-उठा डालता गया और नगारा बजाता गया, जिससे कि कुत्ते उपद्रव न करें।

इसके कुछ दिनो बाद उपश्रेणिकने दूसरे निमित्तकी भी जाँच की। अबकी बार उन्होने कहीं कुछ थोड़ी-सी आग लगवा लोगो द्वारा शोरोगुल करवा दिया कि राजमहलमे आग लग गई। श्रेणिकने जैसे ही आग लगनेकी बात सुनी वह दौडा गया और झटपट राजमहलसे सिंहासन, चँवर आदि राज्यचिन्होंको निकाल बाहर हो गया। यही श्रेणिक आगे तीर्थंकर होगा।

श्रेणिककी वीरता और बुद्धिमानी देखकर उपश्रेणिकको निश्चय हो गया कि राजा यही होगा इसीके यह योग्य भी है। श्रेणिक के राजा होनेकी बात तब तक कोई न जान पाये जब तक वह अपना अधिकार स्वयं अपनी भुजाओं द्वारा प्राप्त न कर ले। इसके लिए उन्हें उसके रक्षाकी चिन्ता हुई। कारण उपश्रेणिक राज्यका अधिकारी तिलकवतीके पुत्र चिलातको बना चुके थे और इस हालमें किसी दुश्मनको या चिलातके पक्षपातियोंको यह पता लग जाता कि इस राज्यका राजा तो श्रेणिक ही होगा, तब यह असम्भव नहीं था कि वे उसे राजा होने देनेके पहले ही मार डालते। इसलिये उपश्रेणिकका यह चिन्ता करना वाजिब था, समयोचित और दूरदर्शिताका था। इस लिये उन्हें

एक अच्छी युक्ति सूझ गई और बहुत जल्दी उन्होंने उसे कार्यमें भी परिणित कर दिया। उन्होंने श्रेणिकके सिर पर यह अपराध मढ़ा कि उसने कुत्तोंका झूँठा खाया, इसलिये वह भ्रष्ट है। अब वह न तो राजघरानेमें ही रहने योग्य रहा और न देश में ही। इसलिये मैं उसे आज्ञा देता हूँ कि वह बहुत जल्दी राजगृहसे बाहर हो जाये। सच है पुण्यवानोंकी सभी रक्षा करते हैं।

श्रेणिक अपने पिताकी आज्ञा पाते ही राजगृहसे उसी समय निकल गया। वह फिर पलभरके लिए भी वहाँ न ठहरा। वहाँसे चलकर वह द्राविड़ देशकी प्रधान नगरी काञ्चीमें पहुँचा। इसने अपनी बुद्धिमानीसे वहाँ कोई ऐसा वसीला लगा लिया जिससे इसके दिन बड़े सुखसे कटने लगे।

इधर उपश्रेणिक कुछ दिनों तक तो और राजकाज चलाते रहे। इसके बाद कोई ऐसा कारण उन्हें देख पड़ा जिससे संसार और विषयभोगोंसे वे बहुत उदासीन हो गये। अब उन्हें संसारका वास एक बहुत ही पेंचीला जाल जान पड़ने लगा। उन्होंने तब अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार चिलातपुत्रको राजा बनाकर सब जीवोंका कल्याण करनेवाला मुनिपद ग्रहण कर लिया।

चिलात-पुत्र राजा हो गया सही, पर उसका जाति-स्वभाव न गया। और ठीक भी है कौएको मोरके पंख भले ही लगा दिये जायें, पर वह मोर न बनकर रहेगा कौआका कौआ ही। यही दशा चिलातपुत्रकी हुई। वह राजा बना भी दिया गया तो क्या हुआ, उसमें राजाके तो कुछ गुण नहीं थे, तब वह राजा होकर भी क्या बड़ा कहला सका ? नहीं। अपने जाति-स्वभावके अनुसार प्रजाको कष्ट देना, उस पर जबरन जोर-जुल्म करना उसने शुरू किया। यह एक साधारण बात है कि अन्यायी का कोई साथ नहीं देता और यही कारण हुआ कि मगधकी प्रजाकी श्रद्धा उस परसे बिलकुल ही उठ गई। सारी प्रजा उससे हृदयसे नफरत करने लगी। प्रजाका पालक होकर जो राजा उसी पर अन्याय करे तब इससे बढ़कर और दुःखकी बात क्या हो सकती है ?

परन्तु इसके साथ ही यह भी बात है कि प्रकृति अन्यायको नहीं सहती। अन्यायीको अपने अन्यायका फल तुरन्त मिलता है। चिलातपुत्रके अन्यायकी डुगडुगी चारों ओर पिट गई। श्रेणिकको जब यह बात सुन पड़ी तब उससे

चिलातपुत्रका प्रजा पर जुल्म करना न सहा गया । वह उसी समय मगधकी ओर रवाना हुआ । जैसे ही प्रजाको श्रेणिकके राजगृह आनेकी खबर लगी उसने उसका एकमत होकर साथ दिया । प्रजाकी इस सहायतासे श्रेणिकने चिलातको राज्यसे बाहर निकाल आप मगधका सम्राट बना । सच है, राजाहोनेके योग्य वही पुरुष है जो प्रजाका पालन करनेवाला हो । जिसमें यह योग्यता नहीं वह राजा नहीं, किन्तु इस लोकमें तथा परलोकमें अपनी कीर्त्तिका नाश करनेवाला है ।

चिलातपुत्र मगधसे भागकर एक वनीमें जाकर बसा । वहाँ उसने एक छोटा-मोटा किला बनवा लिया और आसपासके छोटे-छोटे गाँवोंसे जबरदस्ती कर वसूल कर आप उनका मालिक बन बैठा । इसका भर्तृमित्र नामका एक मित्र था । भर्तृमित्रके मामा रुद्रदत्तके एक लड़की थी । सो भर्तृमित्रने अपने मामासे प्रार्थना की—वह अपनी लड़कीका ब्याह चिलातपुत्रके साथ कर दे । उसकी बात पर कुछ ध्यान न देकर रुद्रदत्त चिलातपुत्रको लड़की देनेसे साफ मुकर गया । चिलातपुत्रसे अपना यह अपमान न सहा गया । वह छुपा हुआ राजगृहमें पहुँचा और विवाहस्नान करती हुई सुभद्राको उठा चलता बना । जैसे ही यह बात श्रेणिकके कानों में पहुँची वह सेना लेकर उसके पीछे दौडा । चिलातपुत्रने जब देखा कि अब श्रेणिकके हाथसे बचना कठिन है, तब उस दुष्ट निर्दयीने बेचारी सुभद्राको तो जानसे मार डाला और आप जान लेकर भागा । वह वैभारपर्वत परसे जा रहा था कि उसे वहाँ एक मुनियोंका सघ देख पड़ा । चिलातपुत्र दौड़ा हुआ सघाचार्य श्री मुनिदत्त मुनिराजके पास पहुँचा और उन्हें हाथ जोड़ सिर नवा उसने प्रार्थना की कि प्रभो, मुझे तप दीजिए, जिससे मैं अपना हित कर सकूँ । आचार्यने तब उससे कहा—प्रिय, तूने बड़ा अच्छा सोचा जो तू तप लेना चाहता है । तेरी आयु अब सिर्फ आठ दिनकी रह गई है । ऐसे समय जिनदीक्षा लेकर तुझे अपना हित करना उचित ही है । मुनिराजसे अपनी जिन्दगी इतनी थोड़ी सुन उनसे उसी समय तप ले लिया जो संसार—समुद्रसे पार करनेवाला है । चिलातपुत्र तप लेनेके साथ ही प्रायोपगमन सन्यास ले धीरतासे आत्मभावना भाने लगा । उधर उसके पकड़नेको पीछे

आनेवाले श्रेणिकने वैभारपर्वत पर आकर उसे इस अवस्थामें जब देखा तब उसे चिलातपुत्रकी इस धीरता पर बड़ा चकित होना पड़ा। श्रेणिकने तब उसके इस साहसकी बड़ी तारीफ की। इसे बाद वह उसे नमस्कार कर राजगृह लौट आया। चिलातपुत्रने जिस सुभद्राको मार डाला था, वह मरकर व्यन्तर देवी हुई। उसे जान पड़ा कि मैं चिलातपुत्र द्वारा बड़ी निर्दयतासे मारी गई हूँ। मुझे भी तब अपने बैरका बदला लेना ही चाहिए। यह सोचकर वह चीलका रूप ले चिलात मुनिके सिर पर आकर बैठ गई। उसने मुनिको कष्ट देना शुरू किया। पहले उसने चोंचसे उनकी दोनों आँखे निकाल लीं और बाद मधुमक्खी बनकर वह उन्हें काटने लगी। आठ दिनतक उन्हें उसने बेहद कष्ट पहुँचाया। चिलातमुनिने विचलित न हो इस कष्टको बड़े शान्तिसे सहा। अन्त में समाधिसे मरकर उसने सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की।

जिस वीरोंके वीर और गुणों की खान चिलात मुनिने ऐसा दुःसह उपसर्ग सहकर भी अपना धैर्य न छोड़ा और जिनेन्द्र भगवानके चरणोंका, जो कि देवों द्वारा भी पूज्य है, खूब मन लगाकर ध्यान करते रहे और अन्तमें जिन्होंने अपने पुण्यबलसे सर्वार्थसिद्धि प्राप्त की वे मुझे भी मंगल दें।

---

७१. धन्य मुनिकी कथा

सर्वोच्च धर्मका उपदेश करनेवाले श्रीजिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर धन्य नामके मुनिकी कथा लिखी जाती है, जो पढने या सुननेसे सुख प्रदान करनेवाली है ।

जम्बूद्वीप पूर्वकी ओर बसे हुए विदेह क्षेत्रकी प्रसिद्ध राजधानी वीतशोकपुरका राजा अशोक बडा ही लोभी राजा हो चुका है । जब फसल काटकर खेतों पर खले किए जाते थे तब वह बेचारे बैलोका मुँह बँधवा दिया करता और रसोई घरमें रसोई बनानेवाली स्त्रियोके स्तन बँधवा कर उनके बच्चेको दूध न पीने देता था । सच है, लोभी मनुष्य कौनसा पाप नहीं करते ?

एक दिन अशोकके मुँहमें कोई ऐसी बीमारी हो गई जिससे उसका सारा मुँह आ गया । सिरमे भी हजारों फोडे-फुन्सी हो गए । उससे उसे बड़ा कष्ट होने लगा । उसने उस रोग की औषधि बनवाई । वह उसे पीनेको ही था कि इतनेमें अपने चरणोंसे पृथ्वीको पवित्र करते हुए एक मुनि आहारके लिए इसी ओर आ निकले । भाग्यसे ये मुनि भी राजाकी तरह इसी महारोगसे पीडित हो रहे थे । इन तपस्वी मुनिकी यह कष्टमय दशा देखकर राजाने सोचा कि जिस रोग से मैं कष्ट पा रहा हूँ, जान पडता है उसी रोगसे ये तपोनिधि भी दु खी है । यह सोचकर या दयासे प्रेरित होकर राजा जिस दवाको स्वय पीनेवाला था, उसे उसने मुनिराजको पिला दिया और वैसा ही उन्हे पथ्य भी दिया । दवाने बहुत लाभ किया । बारह वर्षका यह मुनि का महारोग थोडे ही समयमें मिट गया, मुनि भले चगे हो गए ।

अशोक जब मरा तो इस पुण्यके फलसे वह अमलकण्ठपुरके राजा निष्ठसेनकी रानी नन्दमतीके धन्य नामका सुन्दर गुणवान् पुत्र हुआ । धन्यको एक दिन श्रीनेमिनाथ भगवान्के पास धर्मका उपदेश सुननेका मौका मिला । वह भगवानके द्वारा अपनी उमर बहुत थोड़ी जानकर उसी समय सब माया ममता छोड़ मुनि बन गया । एक दिन वह शहरमें भिक्षाके लिए गया, पर पूर्वजन्म के पाप कर्मके उदयसे उसे भिक्षा न मिली । वह वैसे ही तपोवनमे लौट आया । यहाँसे विहार कर वह तपस्या करता तथा धर्मोपदेश देता हुआ

सौरिपुर आकर यमुनाके किनारे आतापन योग द्वारा ध्यान करने लगा। इसी ओर यहाँका राजा शिकारके लिए आया हुआ था, पर आज उसे शिकार न मिला। वह वापिस अपने महलकी ओर आ रहा था कि इसी समय इसकी नजर मुनि पर पड़ी। इसने समझ लिया कि बस, शिकार न मिलनेका कारण इस नंगेका दीख पड़ना है, इसीने यह अशकुन किया है। यह धारण कर इस पापी राजाने मुनिको बाणोंसे खूब वेध दिया। मुनिने तब शुक्लध्यानकी शक्तिसे कर्मोंका नाश कर सिद्ध गति प्राप्त की। सच है, महापुरुषोंकी धीरता बड़ी ही चकित करनेवाली होती है। जिससे महान् कष्टके समयमें भी मोक्ष प्राप्ति हो जाता है।

वे धन्य मुनि रोग, शोक, चिन्ता आदि दोषोंको नष्ट कर मुझे शाश्वत, कभी नाश न होनेवाला सुख दें, जो भव्यजनोंका भय मिटानेवाले हैं, संसार समुद्रसे पार करनेवाले हैं, देवों द्वारा पूजा किये जाते हैं, मोक्ष-महिलाके स्वामी हैं, ज्ञानका समुद्र हैं और चारित्र-चूड़ामणि हैं।

७२. पाँचसौ मुनियोंकी कथा

जिनेन्द्र भगवान्‌के चरणोंको नमस्कार कर पाँचसौ मुनियों पर एक साथ बीतनेवाली घटनाका हाल लिखा जाता है, जो कि कल्याणका कारण है।

भरतके दक्षिणकी ओर बसे हुए कुम्भकारकट नामके पुराने शहरके राजाका नाम दण्डक और उनकी रानीका नाम सुव्रता था। सुव्रता रूपवती और विदुषी थी। राजमंत्रीका नाम बालक था। यह पापी जैनधर्मसे बड़ा द्वेष रखा करता था। एक दिन इस शहरमें पाँचसौ मुनियोंका संघ आया। बालक मंत्रीको अपनी पण्डिताई पर बड़ा अभिमान था। सो वह शास्त्रार्थ करनेको मुनिसंघके आचार्यके पास जा रहा था। रास्तेमें इसे एक खण्डक नामके मुनि मिल गये। सो उन्हींसे आप झगड़ा करनेको बैठ गया और लगा अन्टसन्ट बकने। तब मुनिने इसकी युक्तियोंका अच्छी तरह खण्डन कर स्याद्वाद-सिद्धान्तका इस शैलीसे प्रपिपादन किया कि बालक मंत्रीका मुँह बन्द हो गया, उनके सामने फिर उससे कुछ बोलते न बना। झख मारकर तब उसे लज्जित हो घर लौट आना पड़ा। इस अपमानकी आग उसके हृदयमें खूब धधकी। उसने तब इसका बदला चुकनेकी ठानी। इसके लिए उसने यह युक्तिकी कि एक भाँडको छलसे मुनि बनाकर सुव्रता रानीके महलमें भेजा। यह भाँड रानीके पास जाकर उससे भला-बुरा हँसी-मजाक करने लगा। इधर उसने यह सब लीला राजाको भी बतला दी और कहा—महाराज, आप इन लोगोंकी इतनी भक्ति करते हैं, सदा इनकी सेवामें लगे रहते हैं, तो क्या यह सब इसी दिनके लिए है? जरा आँखें खोलकर देखिए कि सामने क्या हो रहा है? उस भाँडकी लीला देखकर मूर्खराज दण्डकके क्रोधका कुछ पार न रहा। क्रोधसे अन्धे होकर उसने उसी समय हुक्म दिया कि जितने मुनि इस समय मेरे शहरमें मौजूद हों, उन सबको घानीमें पेल दी। पापी मंत्री तो इसी पर मुँह धोये बैठा था। सो राजाज्ञा होते ही उसने पलभर का भी विलम्ब करना उचित न समझ मुनियोंके पेले जानेकी सब व्यवस्था फौरन जुटा दी। देखते-देखते वे सब मुनि घानीमें पेले दिये गये। बदला लेकर बालक मंत्रीकी आत्मा सन्तुष्ट हुई। सच है, जो पापी होते हैं, जिन्हें दुर्गतियोंमें दुःख भोगना है, वे मिथ्यात्वी लोग भयंकर

पाप करनेमें जरा भी नहीं हिचकते । चाहे फिर उस पापके फलसे उन्हें जन्म-जन्ममें भी क्यों न कष्ट सहना पड़े । जो हो, मुनिसंघ पर इस समय बड़ा ही घोर और दुःसह उपद्रव हुआ । पर वे साहसी धन्य हैं, जिन्होंने जबानसे चूँ तक न निकाल कर सब कुछ बड़े साहसके साथ सह लिया । जीवनकी इस अन्तिम कसौटी पर वे खूब तेजस्वी उतरे । उन मुनियोंने शुक्लध्यानरूपी अपनी महान् आत्मशक्तिसे कर्मोंका, जो कि आत्माके पक्के दुश्मन हैं, नाश कर मोक्ष लाभ किया ।

दिपते हुए सुमेरुके समान स्थिर, कर्मरूपी मैलको, जो कि आत्माको मलिन करनेवाला है, नाश करनेवाले और देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों, राजों और महाराजों द्वारा पूजा किये गये जिन मुनिराजोंने संसारका नाश कर मोक्ष लाभ किया, वे मेरा भी संसार-भ्रमण मिटावें ।

------

७३. चाणक्यकी कथा

देवों द्वारा पूजा किये जानेवाले जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर चाणक्यकी कथा लिखी जाती है।

पाटलिपुत्र या पटनाके राजा नन्दके तीन मंत्री थे। कावी, सुबन्धु और शक्टाल ये उनके नाम थे। यहीं एक कपिल नामका पुरोहित रहता था। कपिलकी स्त्रीका नाम देविला था। चाणक्य इन्हींका पुत्र था। यह बड़ा बुद्धिमान् और वेदोंका ज्ञाता था।

एक बार आस-पास छोटे-मोटे राजोंने मिलकर पटना पर चढ़ाई कर दी। कावी मंत्रीने इस चढ़ाईका हाल नन्दसे कहा। नन्दने घबरा कर मंत्रीसे कह दिया कि जाओ जैसे बने उन अभिमानियोंको समझा-बुझाकर वापिस लौटा दो। धन देना पड़े तो वह भी दो। राजाज्ञा पा मंत्रीने उन्हें धन वगैरह देकर लौटा दिया। सच है, बिना मंत्रीके राज्य स्थिर हो ही नहीं सकता।

एक दिन नन्दको स्वयं कुछ धनकी जरूरत पड़ी। उसने खजांचीसे खजानेमें कितना धन मौजूद है, इसके लिए पूछा। खंजाचीने कहा—महाराज, धन तो सब मंत्री महाशयने दुश्मनोंको दे डाला। खजानेमें तो अब नाम मा के लिये थोड़ा-बहुत धन बचा होगा। यद्यपि दुश्मनोंको धन स्वयं राजाने दिलवाया था और इसलिए गलती उसी की थी, पर उस समय अपनी यह भूल उसे न दीख पड़ी और दूसरेके उकसानेमें आकर उसने बेचारे निर्दोष मंत्रीको और साथमें उसके सारे कुटुम्बको एक अन्धे कुएमें डलवा दिया। मंत्री तथा उसका कुटुम्ब वहाँ बड़ा कष्ट पाने लगा। इनके खाने-पीनेके लिए बहुत ही थोड़ा भोजन और थोड़ा-सा पानी दिया जाता था। यह इतना थोड़ा होता था कि एक मनुष्य भी उससे अच्छी तरह पेट न भर सकता था। सच है, राजा किसीका मित्र नहीं होता। राजाके इस अन्यायने कावीके मनमें प्रतिहिंसाकी आग धधका दी। इस आगने बड़ा भयंकर रूप धारण किया। कावीने तब अपने कुटुम्बके लोगोंसे कहा—जो भोजन इस समय हमें मिलता है उसे यदि हम इसी तरह थोड़ा थोड़ा सब मिलकर खाया करेंगे तब तो हम धीरे-धीरे सब ही मर मिटेंगे और ऐसी दशामें कोई राजासे उसके इस अन्यायका बदला

लेनेवाला न रहेगा। पर मुझे यह सह्य नहीं। इसलिये मैं चाहता हूँ कि मेरा कोई कुटुम्बका मनुष्य राजासे बदला ले। तब ही मुझे शान्ति मिलेगी। इसलिये इस भोजनको वही मनुष्य अपनेमेंसे खाये जो बदला लेनेकी हिम्मत रखता हो। तब उसके कुटुम्बियोंने कहा—इसका बदला लेनेमें आप ही समर्थ देख पड़ते हैं। इसलिये हम खुशीके साथ कहते हैं कि इस भारको आप ही अपने सर पर लें। उस दिनसे उसका सारा कुटुम्ब भूखा रहने लगा और धीरे-धीरे सबका सब मर मिटा। इधर कावी अपने रहने योग्य एक छोटा-सा गड्ढा उस कुएमें बनाकर दिन काटने लगा। ऐसे रहते उसे कोई तीन वर्ष बीत गये।

जब यह हालत आस-पासके राजोंके पास पहुँचा तब उन्होंने इस समय राज्यको अव्यवस्थित देख फिर चढ़ाई कर दी। अब तो नन्दके कुछ होश ढीले पड़े, अकल ठिकाने आई। अब उसे न सूझ पड़ा कि वह क्या करे ? तब उसे अपने मंत्री कावीकी याद आई। उसने नौकरोंको आज्ञा दे कुएसे मंत्रीको निकलवाया और पीछा मंत्रीकी जगह नियत किया। मंत्री भी इस समय तो उन राजोंसे सुलह कर नन्दकी रक्षा कर ली। पर अब उसे अपना बैर निकालनेकी चिन्ता हुई। वह किसी ऐसे मनुष्यको खोज करने लगा, जिससे उसे सहायता मिल सके। एक दिन कावी किसी वनमें हवाखोरीके लिए गया हुआ था। इसने वहाँ एक मनुष्यको देखा कि जो काँटोंके समान चुभनेवाली दूबाको जड़-मूलसे उखाड़-उखाड़ कर फैंक रहा था। उसे एक निकम्मा काम करते देखकर कावीने चकित होकर पूछा—ब्राह्मदेव, इसे खोदनेसे तुम्हारा क्या मतलब है ? क्यों बे-फायदा इतनी तकलीफ उठा रहे हो ? इस मनुष्य का नाम चाणक्य था। इसका उल्लेख ऊपर आ चुका है चाणक्यने तब कहा—वाह महाशय ! इसे आप बे-फायदा बतलाते हैं। आप जानते हैं कि इसका क्या अपराध है ? सुनिये ! इसने मेरा पाँव छेद डाला और मुझे महा कष्ट दिया, तब मैं ही क्यों इसे छोड़ने चला ? मैं तो इसका जड़मूलसे नाश कर ही उठूँगा। यही मेरा संकल्प है। तब कावीने उसके हृदयकी थाह लेनेके लिए कि इसकी प्रतिहिंसाकी आग कहाँ जाकर ठण्डी पड़ती है, कहा—तो महाशय ! अब इस बेचारीको क्षमा कीजिए, बहुत हो चुका। उत्तरमें चाणक्यने कहा—नहीं,

तब तक इसके खोदने से लाभ ही क्या जब तक कि इसकी जड़ें बाकी रह जायँ। उस शत्रुके मारनेसे क्या लाभ जब कि उसका सिर न काट लिया जाये? चाणक्यकी यह ओजस्विता देखकर कावीको बहुत संतोष हुआ। उसे निश्चय हो गया कि इसके द्वारा नन्दकुलका जड़-मूल से नाश हो सकेगा। इससे अपनेको बहुत सहायता मिलेगी। अब सूर्य और राहुका योग मिला देना अपना काम है। किसी तरह नन्दके सम्बन्धमें इसका मनमुटाव करा देना ही अपने कार्यका श्रीगणेश हो जायगा। कावी मंत्री इस तरहका विचार कर ही रहा था कि प्यासेकी जलकी आशा होनेकी तरह एक योग मिल ही गया। इसी समय चाणक्यकी स्त्री यशस्वतीने आकर चाणक्यसे कहा—सुनती हूँ, राजा नन्द ब्राह्मणोंको गौ दान किया करते हैं। तब आप भी जाकर उनसे गौ लाइए न? चाणक्यने कहा—अच्छी बात है, मैं अपने महाराजके पास जाकर जरूर गौ लाऊँगा। यशस्वतीके मुँहसे यह सुनकर कि नन्द गौओंका दान किया करता है, कावी मंत्री खुश होता हुआ राजदरबारमें गया और राजासे बोला—महाराज! क्या आज आप गौएं दान करेंगे? ब्राह्मणोंको इकट्ठा करनेकी योजना की जाय? महाराज, आपको तो यह पुण्यकार्य करना ही चाहिए। धनका ऐसी जगह सदुपयोग होता है। मंत्रीने अपना चक्र चलाया और वह राजा पर चल भी गया। सच है, जिनके मनमें कुछ और होता है, जो वचनोंसे कुछ और बोलते हैं तथा शरीर जिनका मायासे सदा लिपटा रहता है, उन दुष्टोंकी दुष्टताका पता किसीको नहीं लग पाता। कावीकी सत्यसम्मति सुनकर नन्दने कहा—अच्छा ब्राह्मणोंको आप बुलवाइए, मैं उन्हें गौएं दान करूँगा। मंत्री जैसा चाहता था, वही हो गया। वह झटपट जाकर चाणक्यको ले आया और उसे सबसे आगे रखे आसन पर बैठा दिया। लोभी चाणक्यने सब आसन अपने आस-पास रख लिये। उसे इस प्रकार लोभी देखकर कावीने कपटसे कहा—पुरोहित महाराज! राजा साहब कहते हैं और बहुतसे ब्राह्मण विद्वान आए हैं, आप उनके लिये आसन दीजिये। चाणक्यने तब एक आसन निकाल कर दे दिया। इसी तरह धीरे-धीरे मंत्रीने उससे सब आसन रखवाकर अन्तमें कहा—महाराज, क्षमा कीजिए! मेरा कोई अपराध नहीं है। मैं तो पराया नौकर हूँ। इसलिये जैसा मालिक कहते हैं उनका हुक्म बजाता

हूँ पर जान पड़ता है कि राजा बड़ा अविचारी है जो आप सरीखे महा ब्राह्मणका अपमान करना चाहता है। महाराज, राजाका कहना है कि आप जिस अग्रासन पर बैठे हैं उसे छोड़कर चले जाइये। यह आसन दूसरे विद्वान के लिये पहले हीसे दिया जा चुका है। यह कहकर ही कावीने गर्दन पकड़ चाणक्यको निकाल बाहर कर दिया। चाणक्य एक तो वैसे ही महाक्रोधी और अब उसका ऐसा अपमान किया गया और वह भी भरी राजसभामें। तबतो अब चाणक्य के क्रोधका पूछना ही क्या? वह नन्दवंशको जड़मूलसे उखाड़ फैंकनेका दृढ़ संकल्प कर जाता-जाता बोला कि जिसे नन्दका राज्य चाहना हो, वह मेरे पीछे-पीछे चला आवे। यह कहकर वह चलता बना। चाणक्यकी इस प्रतिज्ञाके साथ ही कोई एक मनुष्य उसके पीछे हो गया। चाणक्य उसे लेकर उन आस-पासके राजोंसे मिल गया और नन्द को मरवा कर आप इस राज्यका मालिक बन बैठा। सच है, मंत्रीके क्रोधसे कितने राजोंका नाम इस पृथिवी से उठ गया होगा।

इसके बाद चाणक्यने बहुत दिनोंतक राज्य किया। एक दिन उसे श्रीमहीधर मुनि द्वारा जैनधर्मका उपदेश सुननेका मौका मिला। उस उपदेशका उसके चित्त पर खूब असर पड़ा। वह उसी समय सब राज-काज छोड़कर मुनि बन गया। चाणक्य बुद्धिमान् और बड़ा तेजस्वी था। इसलिए थोड़े ही दिनों बाद उसे आचार्य पद मिल गया। वहाँसे कोई पांचसौ शिष्योंको साथ लिये उसने बिहार किया। रास्ते में पड़नेवाले देशों, नगरों और गाँवोंमें धर्मोपदेश करता और अनेक भव्य-जनोंको हितमार्ग में लगाता वह दक्षिण की ओर बसे हुए बनवास देशके क्रौंचपुरमें आया। इस पुरके पश्चिम किनारे कोई अच्छी जगह देख इसने संघ ठहरा दिया। चाणक्य को यहाँ यह मालूम हो गया कि उसकी उमर बहुत थोड़ी रह गई है इसलिये उसने वहीं प्रायोपगमन संन्यास ले लिया।

नन्दका दूसरा मंत्री सुबन्धु था। चाणक्यने जब नन्दको मरवा डाला तब उसके क्रोधका पार नहीं रहा। प्रतिहिंसाकी आग उसके हृदयमें दिन-रात जलने लगी। पर उस समय उसके पास कोई साधन बदला लेनेका न था। इसलिये वह लाचार चुप रहा। नन्दकी मृत्युके बाद वह इसी क्रौंचपुरमें आकर

यहाँके राजा सुमित्रका मंत्री हो गया । राजाने जब मुनिसंघके आनेका समाचार सुना तो वह उसकी वन्दना पूजाके लिए आया, बड़ी भक्तिसे उसने सब मुनियोंकी पूजा कर उनसे धर्मोपदेश सुना और बाद उनकी स्तुति कर वह अपने महलमें लौट आया ।

मिथ्यात्वी सुबन्धुको चाणक्यसे बदला लेनेका अब अच्छा मौका मिल गया । उसने उस मुनिसंघके चारों ओर खूब घास इकट्ठा करवा कर उसमें आग लगवा दी । मुनि संघ पर हृदयको हिला देनेवाला बड़ा ही भयंकर दु:सह उपसर्ग हुआ सही, पर उसने उसे बड़ी सहन-शीलता के साथ सह लिया और अन्तमें अपनी शुक्लध्यानरूपी आत्मशक्ति से कर्मोंका नाश कर सिद्धगति लाभ की । जहाँ राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, दु:ख, चिन्ता आदि दोष नहीं हैं और सारा संसार जिसे सबसे श्रेष्ठ समझता है ।

चाणक्य आदि निर्मल चारित्रके धारक ये सब मुनि अब सिद्धगतिमें ही सदा रहेंगे । ज्ञानके समुद्र ये मुनिराज मुझे भी सिद्धगतिका सुख दें ।

---

७४. वृषभसेनकी कथा

जिनेन्द्र भगवान्, जिनवाणी और ज्ञानके समुद्र साधुओंको नमस्कार कर वृषभसेनकी उत्तम कथा लिखी जाती है ।

दक्षिण दिशाकी ओर बसे हुए कुण्डल नगरके राजा वैश्रवण बड़े धर्मात्मा ओर सम्यग्दृष्टि थे । और रिष्टामातय नामका इनका मंत्री इनसे बिलकुल उल्टा-मिथ्यात्वी और जैनधर्मका बड़ा द्वेषी था । सो ठीक ही है, चन्दनके वृक्षोके आस-पास सर्प रहा ही करते हैं ।

एक दिन श्रीवृषभसेन मुनि अपने संघको साथ लिये कुण्डल नगरकी ओर आये । वैश्रवण उनके आनेके समाचार सुन बड़ी विभूतिके साथ भव्यजनोंको संग लिये उनकी वन्दनाको गया । भक्तिसे उसने उनकी प्रदक्षिणा की, स्तुति की वन्दना की और पवित्र द्रव्योंसे पूजा की तथा उनसे जैनधर्मका उपदेश सुना । उपदेश सुनकर वह बड़ा प्रसन्न हुआ । सच है, इस सर्वोच्च और सब सुखोंके देनेवाले जैनधर्मका उपदेश सुनकर कौन सद्‌गति-का पात्र सुखी न होगा ?

राजमंत्री भी मुनिसंघके पास आया । पर वह इसलिए नहीं कि वह उनकी पूजा-स्तुति करे, किन्तु उनसे वाद-शास्त्रार्थ कर उनका मानभंग करने, लोगोंकी श्रद्धा उन परसे उठा देने । पर यह उसकी भूल थी । कारण जो दूसरोंके लिए कुआ खोदते हैं उसमें पहले उन्हें ही गिरना पड़ता है । यही हुआ भी । मन्त्रीने मुनियोंका अपमान करनेकी गर्जसे उनसे शास्त्रार्थ किया, पर अपमानभी उसीका हुआ । मुनियोंके साथ उसे हार जाना पड़ा । इस अपमानकी उसके हृदय पर गहरी चोट लगी । इसका बदला चुकाना निश्चित कर वह शामको छुपा हुआ मुनिसंघके पास आया और जिस स्थानमें वह ठहरा था उसमें उस पापीने आग लगा दी । बड़े दुःखकीबात है कि दुर्जनोंका स्वभाव एक विलक्षण ही तरहका होता है । वे स्वयं तो पहले दूसरोंके साथ छेड़-छाड़ करते हैं और जब उन्हें अपने कियेका फल मिलता है तब वे यह समझ कर, कि मेरा इसने बुरा किया, दूसरे निर्दोष सत्पुरुषों पर क्रोध करते हैं और फिर उनसे बदला लेनेके लिए उन्हें नाना प्रकारके कष्ट देते हैं ।

जो हो, मंत्रीने अपनी दुष्टतामें कोई कसर न की । मुनिसंघ पर उसने

बड़ा ही भयंकर उपसर्ग किया। पर उन तत्वज्ञानी-वस्तु स्थितिको जानने वाले मुनियोंने इस कष्टकी कुछ परवा न कर बड़ी सहन-शीलताके साथ सब कुछ सह लिया और अन्तमें अपने-अपने भावोंकी पवित्रताके अनुसार उनमेंसे कितने ही मोक्ष गये और कितने ही स्वर्गमें।

दुष्ट पुरुष सत्पुरुषोंको कितना ही कष्ट क्यो न पहुँचावें उससे खराबी उन्हीं की है, उन्हें ही दुर्गतिमें दु:ख भोगना पड़ेंगे। और सत्पुरुष तो ऐसे कष्टके समयमें भी अपनी प्रतिज्ञाओं पर दृढ़ रहकर अपना धर्म अर्थात् कर्तव्य पालन कर सर्वोच्च सुख लाभ करेंगे। जैसा कि उक्त मुनिराजोंने किया।

वे मुनिराज आप लोगोंको भी सुख दे, जिन्होंने ध्यानरूपी पर्वतका आश्रय ले बड़ा दु:सह उपसर्ग जीता, अपने कर्तव्यसे सर्वश्रेष्ठ कहलानेका सम्मान लाभ किया और अन्तमें अपने उच्च भावोंसे मोक्ष सुख प्राप्त कर देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों आदि द्वारा पूजाको प्राप्त हुए और संसारमें सबसे पवित्र गिने जाने लगे।

७५. शालिसिक्थ मच्छके भावोंकी कथा

केवलज्ञानरूपी नेत्रके धारक और स्वयंभू श्री आदिनाथ भगवान्‌को नमस्कार कर सत्पुरुषोंको इस बातका ज्ञान हो कि केवल मनकी भावनासे ही मनमें विचार करनेसे ही कितना दोष या कर्मबन्ध होता है, इसकी एक कथा लिखी जाती है ।

सबसे अन्तके स्वयभूरमण समुद्रमें एक बड़ी भारी दीर्घकाय मच्छ है । वह लम्बाईमें एक हजार योजन, चौड़ाई में पॉच सौ योजन और ऊँचाईमें ढाईसौ योजनका है । (एक योजन चार या दो हजार कोसका होता है) यहीं एक और शालिसिक्थ नामका मच्छ इस बडे मच्छके कानोंके पासरहता है । पर यह बहुत ही छोटा है और इस बड़े मच्छके कानोंका मैल खाया करता है । जब यह बड़ा मच्छ सैकड़ों छोटे-मोटे जल-जीवोंको खाकर और मुँह फाडे छह मासकी गहरी नींदके खुर्राटेमें मग्न हो जाता उस समय कोई एक-एक दो-दो योजनके लम्बे-चौड़े कछुए, मछलियॉ, घडियाल, मगर आदि जलजन्तु, बडे निर्भीक होकर इसके विकराल डाढोंवाले मुँहमें घुसते और बाहर निकलते रहते हैं । तब यह छोटा सिक्थमच्छ रोज-रोज सोचा करता है कि यह बड़ा मच्छ कितना मूर्ख है जो अपने मुखमें आसानीसे आये हुए जीवोंको व्यर्थ ही जाने देता है ! यदि कहीं मुझे वह सामर्थ्य प्राप्त हुई होती तो मैं कभी एक भी जीवको न जाने देता । बडे दु·खकी बात है कि पापी लोग अपने आप ही ऐसे बुरे भावों द्वारा महान् पापका बन्धकार दुर्गतियोंमें जाते है और वहाँ अनेक कष्ट सहते हैं । सिक्थ-मच्छकी भी यही दशा हुई । वह इस प्रकार बुरे भावोंसे तीव्र कर्मोका बन्ध कर सातवें नरक गया । क्योंकि मनके भाव ही तो पुण्य या पापके कारण होते हैं । इसलिए सत्पुरुषोंको जैनशास्त्रोंके अभ्यास या पढ़ने-पढ़ानेसे मनको सदा पवित्र बनाये रखना चाहिए, जिससे उसमें बुरे विचारोंका प्रवेश ही न हो पाये । और शास्त्रोंके अभ्यासके बिना अच्छे बुरेका ज्ञान नहीं हो पाता, इसलिए शास्त्राभ्यास पवित्रताका प्रधान कारण है ।

---

७६. सुभौम चक्रवर्तीकी कथा

चारों प्रकारके देवों द्वारा जिनके चरण पूजे जाते है उन जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर आठवें चक्रवर्ती सुभौमकी कथा लिखी जाती है।

सुभौम ईर्ष्यावान् शहरके राजा कार्त्तवीर्यकी रानी रेवतीके पुत्र थे। चक्रवर्तीका एक जयसेन नामका रसोइया था। एक दिन चक्रवर्ती जब भोजन करनेको बैठे तब रसोइयेने उन्हें गरम-गरम खीर परोस दी। उसके खानेसे चक्रवर्तीका मुँह जल गया। इससे उन्हें रसोइए पर बड़ा गुस्सा आया। गुस्सेसे उन्होंने खीर रखे गरम बरतनको ही उसके सिरपर दे मारा। उससे उसका सारा सिर जल गया। इसकी घोर वेदनासे मरकर वह लवणसमुद्रमें व्यन्तर देव हुआ। कु-अवधिज्ञानसे अपने पूर्वभवकी बात जानकर चक्रवर्ती पर उसके गुस्सेका पार न रहा। प्रतिहिंसासे उसका जी बे-चैन हो उठा। तब वह एक तापसी बनकर अच्छे-अच्छे सुन्दर फलोंको अपने हाथमें लिये चक्रवर्तीके पास पहुँचा। फलोंको उसने चक्रवर्तीको भेंट किया। चक्रवर्ती उन फलोंको खाकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उस तापससे कहा—महाराज, ये फल तो बड़े ही मीठे हैं। आप इन्हें कहाँसे लाये? और ये मिलें तो कहाँ मिलेंगे? तब उस व्यन्तरने धोखा देकर चक्रवर्तीसे कहा—समुद्रके बीचमें एक छोटा सा टापू है। वहीं मेरा घर है। आप मुझ गरीब पर कृपा कर मेरे घरको पवित्र करें तो मैं आपको बहुतसे ऐसे-ऐसे उत्तम और मीठे फल भेंट करूँगा। कारण वहाँ ऐसे फलोंके बहुत बगीचे हैं। चक्रवर्ती लोभमें फँसकर व्यन्तरके झाँसेमें आ गये और उसके साथ चल दिये। जब व्यन्तर इन्हें साथ लिये बीच समुद्र में पहुँचा तब अपने सच्चे स्वरूपमें आ उसने बड़े गुस्सेसे चक्रवर्तीको कहा—पापी, जानता है कि मैं तुझे यहाँ क्यों लाया हूँ? यदि न जानता हो तो सुन—मैं तेरा जयसेन नामका रसोइया था, तब तूने मुझे निर्दयताके साथ जलाकर मार डाला था। अब उसीका बदला लेनेको मैं तुझे यहाँ लाया हूँ। बतला अब कहाँ जायगा? जैसा किया उसका फल भोगने को तैयार हो जा । तुझसे पापियोंकी ऐसी गति होनी ही चाहिए। पर सुन, अब भी एक उपाय है, जिससे तू बच सकता है। और वह यह कि यदि तू पानीमें पंच नमस्कार मन्त्र लिखकर उसे अपने पाँवोंसे मिटा दे तो तुझे मैं जीना छोड़ सकता हूँ। अपनी

जान बचाने के लिए कौन किस कामको नहीं कर डालता ? वह भला है या बुरा इसके विचार करनेकी तो उसे जरूरत ही नहीं रहती । उसे तब पड़ी रहती है अपनी जान की । यही दशा चक्रवर्ती महाशय की हुई । उन्होंने तब नहीं सोच पाया कि इस अनर्थसे मेरी क्या दुर्दशा होगी ? उन्होंने उस व्यन्तरके कहे अनुसार झटपट जलमें मंत्र लिख कर पाँवसे उसे मिटा डाला । उनका मन्त्र मिटाना था कि व्यन्तरने उन्हें मारकर समुद्रमें फैंक दिया । इसका कारण यह हो सकता है कि मंत्रको पाँवसे मिटानेके पहले व्यन्तरकी हिम्मत चक्रवर्तीको मारनेकी इसलिए न पड़ी होगी कि जगत्पूज्य जिनेन्द्र भगवान्के भक्तको वह कैसे मारे, या यह भी संभव था कि उस समय कोई जिनशासनका भक्त अन्य देव उसे इस अन्यायसे रोककर चक्रवर्तीकी रक्षा कर लेता और अब मंत्रको पाँवोंसे मिटा देनेसे चक्रवर्त्ती जिनधर्मका द्वेषी समझा गया और इसीलिए व्यन्तरने उसे मार डाला । मरकर इस पापके फलसे चक्रवर्ती सातवें नरक गया । उस मूर्खताको, उस लम्पटताको धिक्कार है जिससे चक्रवर्त्ती सारी पृथिवीका सम्राट् दुर्गतिमें गया । जिसका जिन भगवान्के धर्म पर विश्वास नहीं होता उसे चक्रवर्तीकी तरह कुगतिमें जाना पड़े तो इसमें आश्चर्य क्या ? वे पुरुष धन्य है और वे ही सबके आदर पात्र हैं, जिनके हृदयमें सुख देनेवाले जिन वचन रूप अमृतका सदा स्रोत बहता रहता है । इन्हीं वचनोंपर विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं । यह सम्यग्दर्शन जीवमात्रका हित करनेवाला है, ससार भय मिटाने वाला है, नाना प्रकारके सुखोंका देनेवाला है, और मोक्ष प्राप्तिका मुख्य कारण है । देव, विद्याधर आदि सभी बड़े-बड़े पुरुष सम्यग्दर्शनकी या उसके धारण करनेवाले की पूजा करते हैं । यह गुणोंका खजाना है । सम्यग्दृष्टिको कोई प्रकार की भय-बाधा नहीं होती । वह बड़ी सुख-शान्तिसे रहता है । इसलिए जो सच्चे सुखकी आशा रखते हैं उन्हें आठ अंग सहित इस पवित्र सम्यग्दर्शनका विश्वासके साथ पालन करना चाहिए ।

---

७७. शुभ राजाकी कथा

संसारका हित करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को प्रसन्नता पूर्वक नमस्कार कर शुभ नामके राजाकी कथा लिखी जाती है ।

मिथिला नगरके राजा शुभकी रानी मनोरमोके देवरति नामका एक पुत्र था । देवरति गुणवान और बुद्धिमान् था । किसी प्रकारका दोष या व्यसन उसे छू तक न गया था ।

एक दिन देवगुरु नामके अवधिज्ञानी मुनिराज अपने संघको साथ लिये मिथिला आये । शुभ राजा तब बहुतसे भव्यजनोके साथ मुनि-पूजाके लिए गया । मुनिसंघकी सेवा-पूजाकर उसने धर्मोपदेश सुना । अन्तमें उसने अपने भविष्यके सम्बन्धका मुनिराज से प्रश्न किया—योगिराज, कृपाकर बतलाइए कि आगे मेरा जन्म कहाँ होगा ? उत्तरमें मुनिने कहा— राजन् सुनिए-पापकर्मोके उदयसे तुम्हें आगे के जन्ममें तुम्हारे ही पाखानेमें एक बड़े कीड़ेकीदेह प्राप्त होगी, शहरमें घुसते समय तुम्हारे मुँहमें विष्टा प्रवेश करेगा, तुम्हारा छत्रभग होगा और आजके सातवें दिन बिजली गिरनेसे तुम्हारी मौत होगी । सच है, जीवोंके पापके उदयसे सभी कुछ होता है । मुनिराजने ये सब बातें राजासे बड़े निडर होकर कहीं । और यह ठीक भी है कि योगियोंके मनमे किसी प्रकार का भय नहीं रहता । मुनिका शुभके सम्बन्धका भविष्य—कथन सच होने लगा । एक दिन बाहरसे लौट कर जब वे शहरमें घुसने लगे तब घोडेके पाँवो की ठोकरसे उड़े हुए थोड़ेसे विष्टाका अंश उनके मुँहमें आ गिरा और यहाँसे वे थोड़े ही आगे बढ़े होंगे कि एक जोरकी आँधीने उनके छत्रको तोड डाला । सच है, पापकर्मोके उदयसे क्या नहीं होता । उन्होंने तब अपने पुत्र देवरतिको बुलाकर कहा—बेटा, मेरे कोई ऐसा पापकर्मका उदय आवेगा उससे मैं मरकर अपने पाखानेमें पाँच रंगका कीड़ा होऊँगा, सो तुम उस समय मुझे मार डालना । इसलिए कि फिर मैं कोई अच्छी गति प्राप्त कर सकूँ । उक्त घटनाको देखकर शुभको यद्यपि यह एक तरह निश्चय-सा हो गया था कि मुनिराजकी कही बातें सच्ची है और वे अवश्य होंगी पर तब भी उनके मनमें कुछ-कुछ सन्देह बना रहा और इसी कारण बिजली गिरनेके भयसे डरकर

उन्होंने एक लोहेकी बड़ी मजबूत सन्दूक मँगवाई और उसमें बैठकर गंगाके गहरे जलमें उसे रख आनेको नौकरोंको आज्ञा की । इसलिए कि जलमें बिजलीका असर नहीं होता । पर उनकी ये बे-समझी थी । कारण प्रत्यक्ष-ज्ञानियोंकी कोई बात कभी झूठी नहीं होती । जो हो, सातवाँ दिन आया । आकाशमें बिजलियाँ चमकने लगीं । इसी समय भाग्यसे एक बड़े मच्छने राजाकी उस सन्दूकको एक ऐसा जोरका उथेला दिया कि सन्दूक जल के बाहर दो हाथ ऊँचे तक उछल आई । सन्दूकका बाहर होना था कि इतनेमें बड़े जोरसे कड़क कर उस पर बिजली आ गिरी । खेद है कि उस बिजलीके गिरनेसे राजा अपने यत्नमें कामयाब न हुए और आखिर वे मौतके मुँहमें पड़ ही गये । मरकर वह मुनिराजके कहे अनुसार पाखानेमें कीड़ा हुए । पिताके कहे माफिक जब देवरतिने जाकर देखा तो सचमुच एक पाँच रगका कीड़ा उसे देख पड़ा और तब उसने उसे मार डालना चाहा । पर जैसे ही देवरतिने हाथका हथियार उसके मारनेको उठाया, वह कीड़ा उस विष्टाके ढेर में घुस गया । देवरतिको इससे बड़ा अचम्भा हुआ । उसने जिन-जिनसे इस घटनाका हाल कहा, उन सबको ससारकी इस भयंकर लीलाको सुन बडा डर मालूम हुआ । उन्होंने तब ससारका बन्ध काट देनेके लिए जैनधर्मका आश्रय लिया, कितनोने सब माया-ममता तोड़ जिनदीक्षा ग्रहण की और कितनोंने अभ्यास बढ़ानेको पहले श्रावकोंके व्रत ही लिये ।

देवरतिको इन घटनासे बड़ा अचम्भा हो ही रहा था, सो एक दिन उसने ज्ञानी मुनिराजसे इसका कारण पूछा—भगवन्, क्यों तो मेरे पिताने मुझसे कहा कि मै विष्टामें कीड़ा होऊँगा सो मुझे तू मार डालना और जब मैं उस कीड़ेको मारने जाता हूँ तब वह भीतर ही भीतर घुसने लगता है । मुनिने उसके उत्तरमें देवरतिसे कहा—भाई, जीव गतिसुखी होता है फिर चाहे वे कितनी ही बुरीसे बुरी जगह भी क्यों न पैदा हो । वह उसीमें अपनेको सुखी मानेगा, वहाँसे कभी मरना पसन्द न करेगा । यही कारण है कि जबतक तुम्हारे पिता जीते थे तबतक उन्हें मनुष्य जीवनसे प्रेम था, उन्होंने न मरनेके लिए यत्न भी किया, पर उन्हें सफलता न मिली । और ऐसी उच्च मनुष्य गतिसे वे मरकर कीड़ा होंगे, सो भी विष्टामें । उसका उन्हें खेद था और इसलिए उन्होंने

तुमसे उस अवस्थामें मार डालनेको कहा था । पर अब उन्हें वही जगह अत्यन्त प्यारी है, वे मरना पसन्द नहीं करते । इसलिए जब तुम उसे कीड़ेको मारने आते हो तब वह भीतर घुस जाता है । इसमें आश्चर्य और खेद करनेकी कोई बात नहीं । संसारकी स्थिति ही ऐसी है । मुनिराज द्वारा यह मार्मिक उपदेश सुनकर देवरतिको बड़ा वैराग्य हुआ । वह संसार छोड़कर, इसलिए कि उसमें सार कुछ नहीं है, मुनिपद स्वीकार कर आत्महित साधक योगी हो गया ।

जिनके वचन पापोंके नाश करनेवाले हैं, सर्वोत्तम है ओर संसारका भ्रमण मिटानेवाले हैं, वे देवों द्वारा, पूजे जानेवाले जिन भगवान् मुझे तब तक अपने चरणोंकी सेवाका अधिकार दें जब तक कि मैं कर्मोका नाश कर मुक्ति प्राप्त न कर लूँ ।

७८. सुदृष्टि सुनारकी कथा

देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों, राजों और महाराजों द्वारा पूजा किये जानेवाले जिन भगवानको नमस्कार कर सुदृष्टि नामक सुनारकी, जो रत्नोंके काममें बड़ा होशियार था, कथा लिखी जाती है।

उज्जैनके राजा प्रजापाल बड़े प्रजाहितैषी, धर्मात्मा और भगवान्के सच्चे भक्त थे। इनकी रानीका नाम सुप्रभा था। सुप्रभा बड़ी सुन्दरी और सती थी। सच है संसारमें वही रूप और वही सौन्दर्य प्रशंसाके लायक होता है जो शीलसे भूषित हो।

यहाँ एक सुदृष्टि नामका सुनार रहता था। जवाहिरातके काममें यह बड़ा चतुर था तथा सदाचारी और सरल-स्वभावी था। इसक स्त्रीका नाम विमला था। विमला दुराचारिणी थी। अपने घरमें रहनेवाले एक वक्र नामके विद्यार्थीसे, जिसे कि सुदृष्टि अपने खर्चसे लिखाता-पढ़ाता था, विमलाका अनुचित सम्बन्ध था। विमला अपने स्वामीसे बहुत ना-खुश थी। इसलिए उसने अपने प्रेमी वक्रको उकसा कर, उसे कुछ भली-बुरी सुझाकर सुदृष्टिका खून करवा दिया। खून उस समय किया गया जब कि सुदृष्टि विषय-सेवनमें मग्न था। सो यह मरकर विमलाके ही गर्भमें आया। विमलाने कुछ दिनों बाद पुत्र प्रसव किया। आचार्य कहते हैं कि संसारकी स्थिति बड़ी ही विचित्र है जो पल भरमें कर्मोंकी पराधीनतासे जीवोंका अजब परिवर्तन हो जाता है। वे नटकी तरह क्षणक्षणमें रूप बदला ही करते हैं।

चैतका महीना था वसन्त शोभाने सब ओर अपना साम्राज्य स्थापित कर रक्खा था। वन उपवनोंकी शोभा मनको मोह लेती थी। इसी सुन्दर समयमें एक दिन महारानी सुप्रभा अपने खास बगीचेमें प्राणनाथके साथ हँसीविनोद कर रही थी। इसी हँसी-विनोदमें उसका क्रीड़ा-विलास नामका सुन्दर बहुमूल्य हार टूट पड़ा। उसके सब रत्न बिखर गये। राजाने उसे फिर वैसा ही बनवानेका बहुत यत्न किया, जगह-जगहसे अच्छे सुनार बुलवाये पर हार पहले सा किसीसे नहीं बना। सच है, बिना पुण्यके कोई उत्तम कला या ज्ञान नहीं होता। इसी टूटे हुए हारको विमलाके लड़केने अर्थात पूर्वभवके

उसके पति सुदृष्टिने देखा। देखते ही उसे जाति स्मरणपूर्व जन्मका ज्ञान हो गया। उससे उसने इस हारको पहले-सा ही बना दिया। इसका कारण यह था कि इस हारको पहले भी सुदृष्टि हीने बनाया था और यह बात सच है कि इस जीवको पूर्व जन्मके संस्कार पुण्यसे ही कला कौशल, ज्ञान-विज्ञान दान-पूजा आदि सभी बातें प्राप्त हुआ करती है। । प्रजापाल उसकी यह होशियारी देखकर बड़े प्रसन्न हुए। उन्होंने उससे पूछा भी कि भाई, यह हार जैसा सुदृष्टिका बनाया था वैसा ही तुमने कैसे बना दिया ? तब वह विमलाका लड़का मुँह नीचा कर बोला—राजाधिराज, मैं अपनी कथा आपसे क्या कहूँ। आप यह समझें कि वास्तवमें मै ही सुदृष्टि हूँ। इसके बाद उसने बीती हुई सब घटना राजासे कह सुनाई। वे संसारकी इस विचित्रताको सुनकर विषय-भोगोंसे बड़े विरक्त हुए। उन्होंने उसी समय सब माया-जाल छोडकर आत्महितका पथ जिनदीक्षा ग्रहण कर ली।

इधर विमलाके लड़केको भी अत्यन्त वैराग्य हुआ। वह स्वर्ग मोक्षके सुखोंको देनेवाली जिनदीक्षा लेकर योगी बन गया। यहाँसे फिर यह शुद्धात्मा धर्मोपदेशके लिये अनेक और शहरोंमें घूम-फिर कर तपस्या करता हुआ और अनेक भव्यजनोंको आत्महितके मार्ग पर लगाता हुआ सौरीपुरके उत्तर भागमें यमुनाके पवित्र किनारे पर आकर ठहरा। यहाँ शुक्लध्यान द्वारा कर्मोंका नाश कर इसने लोकालोकका ज्ञान करानेवाला केवलज्ञान प्राप्त किया और संसार द्वारा पूज्य होकर अन्तमें मुक्ति लाभ किया। वे विमला-सुत मुनि मुझे शान्ति दें।

वे जिन भगवान् आप भव्यजनोंको और मुझे मोक्षका सुख दें, जो संसार-सिन्धुमें डूबते हुए, असहाय-निराधर जीवोंको पार करनेवाले हैं, कर्म-शत्रुओंका नाश करनेवाले हैं, ससारके सब पदार्थोंको देखनेवाले केवलज्ञानसे युक्त हैं, सर्वज्ञ हैं, स्वर्ग तथा मोक्षका सुख देनेवाले हैं और देवों, विद्याधरों, चक्रवर्तियों आदि प्रायः सभी महापुरुषोंसे पूजा किये जाते हैं।

---

७१. धर्मसिंह मुनिकी कथा

इस प्रकार के देवों द्वारा जो पूजा-स्तुति किये जाते है और ज्ञानके समुद्र है, उन जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर धर्मसिंह मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

दक्षिण देशके कौशलगिर नगरके राजा वीरसेनकी रानी वीरमतीके दो सन्तान थीं । एक पुत्र था और एक कन्या थी । पुत्रका नाम चन्द्रभूति और कन्याका चन्द्रश्री था । चन्द्रश्री बड़ी सुन्दर थी । उसकी सुन्दरता देखते ही बनती थी ।

कौशल देश और कौशल ही शहरके राजा धर्मसिंहके साथ चन्द्रश्रीकी शादी हुई थी । दोनों दम्पति सुखसे रहते थे । नाना प्रकारकी भोगोपभोग वस्तुएँ सदा उनके लिये मौजूद रहती थीं । इतना होने पर भी राजाका धर्मपर पूर्ण विश्वास था, अगाध श्रद्धा थी । वे सदा दान, पूजा व्रतादि धर्मकार्य करते थे ।

एक दिन धर्मसिंह तपस्वी दमधर मुनिके दर्शनार्थ गये । उनकी भक्तिसे पूजा-स्तुति कर उन्होंने उनसे धर्मका पवित्र उपदेश सुना, जो धर्म देवों द्वारा भी बड़ी भक्तिके साथ पूजा माना जाता है । धर्मोपदेशका धर्मसिंहके चित्त पर बड़ा गहरा असर पड़ा । वे संसार और विषय-भोगोंसे विरक्त हो गये और मुनि दीक्षा लेली । उनकी रानी चन्द्रश्रीको उन्हें जवानीमें दीक्षा ले जानेसे बड़ा कष्ट हुआ । पर बेचारी लाचार थी । उसके दु खकी बात जब उसके भाई चन्द्रभूतिको मालूम हूई तो उसे भी अत्यन्त दु ख हुआ । उससे अपनी बहिनकी यह हालत न देखी गई । उसने तब जबरदस्ती अपने बहनोई धर्मसिहको उठा लाकर चन्द्रश्रीके पास ला रक्खा । धर्मसिह फिर भी न ठहरे और जाकर उन्होंने पुन दीक्षा ले ली और महा तप तपने लगे ।

एक दिन इसी तरह वे तपस्या कर रहे थे । तब उन्होंने चन्द्रभूतिको अपनी ओर आता हुआ देखा । उन्होंने समझ लिया कि यह फिर मेरी तपस्या बिगाड़ेगा । सो तपको रक्षाके लिये पास ही पडे हुए मृत हाथी के शरीरमें घुसकर उन्होंने समाधि ले ली और अन्तमें शरीर छोड़कर वे स्वर्गमें गये ।

इसलिये भव्यजनोंको कष्टके समय भी अपने व्रतकी रक्षा करनी ही चाहिये कि जिससे स्वर्ग या मोक्षका सर्वोच्च सुख प्राप्त होता है ।

निर्मल जैनधर्मके प्रेमी जिन श्रीधर्मसिंह मुनिने जिन भगवान्के उपदेश किये और स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले तप मार्गका आश्रय ले उसके पुण्यसे स्वर्ग-सुख लाभ किया वे संसार प्रसिद्ध महात्मा और अपने गुणोंसे सबकी बुद्धि पर प्रकाश डालनेवाले मुझे भी मंगल-सुख दान करें ।

---

८०. वृषभसेनकी कथा

स्वर्ग ओर मोक्षका सुख देनेवाले तथा सारे संसारके द्वारा पूज्य-माने-जानेवाले श्री भगवान्‌को नमस्कार कर वृषभसेनकी कथा लिखी जाती है ।

पाटलिपुत्र (पटना) में वृषभदत्त नामका एक सेठ रहता था । पूर्व पुण्यके प्रभावसे इसके पास धन सम्पत्ति खूब थी । इसकी स्त्रीका नाम वृषभदत्ता था । इसके वृषभसेन नामका सर्वगुण-सम्पन्न एक पुत्र था । वृषभसेन बड़ा धर्मात्मा और सदा दान-पूजादिक पुण्यकर्मोंका करनेवाला था ।

एक अन्य सेठ धनपतिकी स्त्री श्रीकान्ताके एक लड़की थी । इसका नाम धनश्री था । धनश्री सुन्दरी थी, चतुर थी और लिखी-पढ़ी थी । धनश्रीका ब्याह वृषभसनेके साथ हुआ था । दोनों दम्पति सुखसे रहते थे । नाना प्रकारके विषय-भोगोंकी वस्तुएँ उनके लिये सदा हाजिर रहती थी ।

एक दिन वृषभसेन दमधर मुनिराजके दर्शनोंके लिये गया । भक्ति सहित उनकी पूजा-वन्दना कर उसने उनसे धर्मका पवित्र उपदेश सुना । उपदेश उसे बहुत रुचा और उसका प्रभाव भी उसपर बहुत पड़ा । वह उसी समय ससार और भ्रमसे सुख जान पड़नेवाले विषय-भोगोंसे उदासीन हो मुनिराजके पास आत्महितकी साधक जिनदीक्षा ले गया । उसे युवावस्थामें ही दीक्षा ले-जानेसे धनश्रीको बड़ा दु ख हुआ । उसे दिन-रात रोनेके सिवा कुछ न सूझता था । धनश्रीका यह दु ख उसके पिता धनपतिसे न सहा गया । वह तपोवनमें जाकर वृषभसेनको उठा लाया और जबरदस्ती उसकी दीक्षा वगैरह खण्डित कर दी, उसे गृहस्थ बना दिया । सच है, मोही पुरुष करने और न करने योग्य कर्मोंका विचार न कर उन्मत्तकी तरह हर एक काम करने लग जाता है, जिससे कि पापकर्मोंका उसके तीव्र बन्ध होता है ।

जैसे मनुष्य कैदमें जबरदस्ती रहना पड़ता है उसी तरह वृषभसेनको भी कुछ समय तक और घरमें रहना पड़ा । इसके बाद वह फिर मुनि हो गया । इसका फिर मुनि हो जाना जब धनपतिको मालूम हुआ तो किसी बहानेसे घर पर लकार अबकी बार उसे उसने लोहेकी साँकलसे बाँध दिया । मुनिने यह सोचकर, कि यह मुझे अबकी बार फिर व्रतरूपी पर्वतसे गिरा देगा, मेरा व्रत

भंग कर देगा, संन्यास ले लिया और इसी अवस्थामें शरीर छोड़कर वह पुण्यके उदयसे स्वर्गमें देव हुआ। दुर्जनों द्वारा सत्पुरुषों को कितने ही कष्ट क्यों न पहुँचाये जायें पर वे कभी पापबन्धके कारण कामोंमें नहीं फँसते।

दुर्जन पुरुष चाहे कितनी ही तकलीफ क्यों न दें, पर पवित्र बुद्धि के धारी सज्जन महात्मा पुरुष तो जिन भगवानके चरणोंकी सेवा-पूजासे होनेवाले पुण्यसे सुख ही प्राप्त करेंगे। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं।

---

८१. जयसेन राजाकी कथा

स्वर्गादि सुखों को देनेवाले और मोक्षरूपी रमणीके स्वामी श्रीजिन भगवान् को नमस्कार कर जयसेन राजाकी सुन्दर कथा लिखी जाती है ।

श्रावस्तीके राजाजयसेनकी रानी वीरसेनाके एक पुत्र था । इसका नाम वीरसेन था । वीरसेन बुद्धिमान् और सच्चे हृदयका था, मायाचार-कपट उसे छू तक न गया था ।

यहाँ एक शिवगुप्त नामका वृद्ध भिक्षुक रहता था । यह मांसभक्षी और निर्दयी था । ईर्षा और द्वेष इसके रोम-रोममें ठसा था मानो वह इनका पुतला था । यह शिवगुप्त राजगुरु था । ऐसे मिथ्यात्वको धिक्कार है जिसके वश हो ऐसे मायावी और द्वेषी भी गुरु हो जाते हैं ।

एक दिन यतिवृषभ मुनिराज अपने सारे संघको साथ लिये श्रावस्ती में आये । राजा यद्यपि बुद्धधर्मका माननेवाला था, तथापि वह और-और लोगोंको मुनिदर्शनके लिये जाते देख आप भी गया । उसने मुनिराज द्वारा धर्मका पवित्र उपदेश चित्त लगाकर सुना । उपदेश उसे बहुत पसन्द आया । उसने मुनिराज़से प्रार्थना कर श्रावकोंके व्रत लिये । जैनधर्म पर अब उसकी दिनों-दिन श्रद्धा बढ़ती ही गई । उसने अपने सारे राज्यभरमें कोई ऐसा स्थान न रहने दिया जहाँ जिनमन्दिर न हो । प्रत्येक शहर, प्रत्येक गाँवमें उसने जिनमन्दिर बनवा दिया । जिनधर्मके लिये राजाका यह प्रयत्न देख शिवगुप्त ईर्षा और द्वेषके मारे जल कर खाक हो गया । वह अब राजाको किसी प्रकार मार डालनेके प्रयत्नमें लगा । और एक दिन खास इसी कामके लिये वह पृथिवीपुरी गया और वहाँके बुद्धधर्मके अनुयायी राजा सुमतिको उसने जयसनेके जैनधर्म धारण करने ओर जगह-जगह जिनमन्दिरोंके बनवाने आदिका सब हाल कह सुनाया । यह सुनसुमतिने जयसेनको एक पत्र लिखा कि "तुमने बुद्धधर्म छोडकर जो जैनधर्म ग्रहण किया, यह बहुत बुरा किया है । तुम्हें उचित है कि तुम पीछा बुद्धधर्म स्वीकार कर लो ।" इसके उत्तरमें जयसेनने लिख भेजा कि—"मेरा विश्वास है, निश्चय है कि जैनधर्म ही संसारमें एक ऐसा सर्वोच्च धर्म है जो जीवमात्रका हित करनेवाला है । जिस धर्ममें जीवोंका मांस खाया

जाता है या जिनमें धर्मके नाम पर हिंसा वगैरह महापाप बड़ी खुशीके साथ किये जाते है वे धर्म नहीं हो सकते । धर्मका अर्थ है जो ससारके दु खोंसे छुडाकर उत्तम सुखमें रक्खें, सो यह बात सिवा जैनधर्मके और धर्मोमे नहीं है । इसलिए इसे छोड़कर और सब अशुभ बन्धके कारण है ।" सच है, जिसने जैनधर्मका सच्चा स्वरूप जान लिया वह क्या फिर किसीसे डिगाया जा सकता है ? नहीं । प्रचण्डसे प्रचण्ड हवा भी क्यों न चले पर क्या वह मेरुको हिला देगी ? नहीं । जयसेनके इस प्रकार विश्वासको देख सुमतिको बड़ा गुस्सा आया । तब उसने दो आदमियोंको इसलिए श्रावस्तीमे भेजा कि वे जयसेनकी हत्या कर आवें । वे दोनो आकर कुछ समय तक श्रावस्तीमें ठहरे और जयसेनके मार डालनेकी खोजमें लगे रहे, पर उन्हे ऐसा मौका ही न मिल पाया जो वे जयसेनको मार सकें । तबलाचार हो वे वापिस पृथ्वीपुरी लौट आये और सब हाल उन्होंने राजासे कह सुनाया । इससे सुमतिका क्रोध और भी बढ़ गया । उसने तब अपने सब नौकरोंको इकट्ठा कर कहा—क्या कोई मेरे आदमियोमें ऐसा भी हिम्मत बहादुर है जो श्रावस्ती जाकर किसी तरह जयसेनको मार आवे । उनमेंसे एक हिमारक नामके दुष्टने कहा—हाँ महाराज, मैं इस कामको कर सकता हूँ । आप मुझे आज्ञा दें । इसके बाद ही वह राजाज्ञा पाकर श्रावस्ती आया और यतिवृषभ मुनिराजके पास मायाचारसे जिनदीक्षा लेकर मुनि हो गया ।

एक दिन जयसेन मुनिराजके दर्शन करनेको आया और अपने नौकर-चाकरोंको मन्दिर के बाहर ठहरा कर आप मन्दिरमे गया । मुनिको नमस्कार कर वह कुछ समयके लिए उनके पास बैठा और उनसे कुशल समाचार पूछकर उसने कुछ धर्म-सम्बन्धी बातचीत की। इसके बाद जब वह चलनेके पहले मुनिराजको ढोक देनेके लिए झुका कि इतनेमे वह दुष्ट हिमारक जयसेनको मार कर भाग गया । सच है बुद्ध लोग बड़े ही दुष्ट हुआ करते है । यह देख मुनि यतिवृषभको बड़ी चिन्ता हुई । उन्होंने सोचा—कहीं सारे संघ पर विपत्ति न आये, इसलिए पास ही की भीत पर उन्होंने यह लिखकर, कि "दर्शन या धर्मकी डाहके वश होकर ऐसा काम किया गया है," छुरीसे अपना पेट चीर लिया और स्थिरतासे सन्यास द्वारा मृत्यु प्राप्त कर वे

स्वर्ग गये ।

वीरसेनको जब अपने पिताकी मृत्युका हाल मालूम हुआ तो वह उसी समय दौड़ा हुआ मन्दिर आया । उसे इस प्रकार दिन-दहाड़े किसी साधारण आदमीकी नहीं, किन्तु खास राजा साहबकी हत्या हो जाने और हत्याकारीका कुछ पता न चलनेका बड़ा ही आश्चर्य हुआ । और जब उसने अपने पिताके पास मुनिको भी मरा पाया तब तो उसके आश्चर्यका कुछ ठिकाना ही न रहा । वह बड़े विचारमें पड़ गया । वे हत्याएँ क्यों हुई ? और कैसे हुई ? इसका कारण कुछ भी उसकी समझमें न आया । उसे यह भी सन्देह हुआ कि कहीं इन मुनिने तो यह काम न किया हो ? पर दूसरे ही क्षणमें उसने सोचा कि ऐसा नहीं हो सकता । इनका और पिताजीका कोई बैर-विरोध नहीं, लेना देना नहीं, फिर वे क्यों ऐसा करने चले ? और पिताजी तो इनके इतने बड़े भक्त थे । और न केवल यही बात थी कि पिताजी ही इनके भक्त हों, ये साधुजी भी तो उनसे बड़ा प्रेम करते थे, घण्टों तक उनके साथ इनकी धर्मचर्चा हुआ करती थी । फिर इस सन्देहको जगह नहीं रहती कि एक निस्पृह और शान्त योगी द्वारा यह अनर्थ किया जा सके । तब हुआ क्या ? बेचारा वीरसेन बड़ी कठिन समस्यामें फँसा । वह इस प्रकार चिन्तातुर हो कुछ सोच-विचार कर ही रहा था कि उसकी नजर सामनेकी भींत पर जा पडी । उस पर यह लिखा हुआ, कि "दर्शन या धर्मकी डाहके वश होकर ऐसा हुआ है," देखते ही उसकी समझमें उस समय सब बातें बराबर आ गई । उसके मनका अब रहा-सहा सन्देह भी दूर हो गया । उसकी अब मुनिराज पर अत्यन्त ही श्रद्धा हो गई । उसने मुनिराजके धैर्य और सहनपने की बड़ी प्रशंसा की । जैनधर्मके विषयमें उसका पूरा-पूरा विश्वास हो गया । जिनका दुष्ट स्वभाव है, जिनसे दूसरोंके धर्मका अभ्युदय-उन्नति नहीं सही जाती, ऐसे लोग जिनधर्म सरीखे पवित्र धर्म पर चाहे कितना ही दोष क्यों न लगावें, पर जिनधर्म तो बादलोंसे न ढके हुए सूरजकी तरह सदा ही निर्दोष रहता है ।

जिस धर्मको चारों प्रकारके देव, विद्याधर, चक्रवर्ती, राजे-महाराजे आदि सभी महापुरुष भक्तिसे पूजते-मानते हैं, जो संसारके दु:खोंका नाश कर

स्वर्ग या मोक्षका देनेवाला है, सुखका स्थान है, ससारके जीव मात्रका हित करनेवाला है और जिसका उपदेश सर्वज्ञ भगवान्‌ने किया है और इसीलिए सबसे अधिक प्रमाण या विश्वास करने योग्य है, वह धर्म—वह आत्माकी एक खास शक्ति मुझे प्राप्त होकर मोक्षका सुख दे ।

---

८२. शकटाल मुनिकी कथा

सुखके देनेवाले संसारका हित करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्के चरणोंको नमस्कार कर शकटाल मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

पाटलिपुत्र (पटना) के राजा नन्दके दो मत्री थे । एक शकटाल और दूसरा वररुचि । शकटाल जैनी था, इसलिए सुतरा उसकी जैनधर्म पर अचल श्रद्धा या प्रीति थी और वररुचि जैनी नहीं था, इसलिए सुतरा उसे जैनधर्मसे, जैनधर्मके पालनेवालों से द्वेष था, ईर्षा थी । और इसीलिए शकटाल और वररुचि की कभी न बनती थी, एकसे एक अत्यन्त विरुद्ध थे ।

एक दिन जैनधर्मके परम विद्वानमहापद्म मुनिराज अपने सघको साथ लिये पटनामें आये । शकटाल उनके दर्शन करनेको गया । बड़ी भक्तिके साथ उसने उनकी पूजा-वन्दना की और उनके पास बैठकर मुनि और गृहस्थ धर्मका उनसे पवित्र उपदेश सुना । उपदेशका शकटालके धार्मिक अतएव कोमल हृदय पर बहुत प्रभाव पडा । वह उसी समय ससारका सब मायाजाल तोड़कर दीक्षा ले मुनि हो गया । इसके बाद उसने अपने गुरु द्वारा सिद्धान्तशास्त्रका अच्छा अभ्यास किया । थोड़े ही दिनोमें शकटाल मुनिने कई विषयो में बहुत ही अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली । गुरु इनकी बुद्धि, विद्वत्ता तर्कनाशक्ति और सर्वोपरि इनकी स्वाभाविक प्रतिभा देखकर बहुत ही खुश हुए । उन्होंने अपना आचार्यपद अब इन्हें ही दे दिया । यहाँसे धर्मोपदेश और धर्मप्रचारके लिए अनेक देशों, शहरों और गाँवोंमें घूमे-फिरे । इन्होंने बहुतोंको आत्महित साधक पवित्र मार्ग पर लगाया और दुर्गति के दु खोंका नाश करनवाले पवित्र जैनधर्मका सब ओर प्रकाश फैलाया । इस प्रकार धर्म प्रभावना करते हुए ये एक बार फिर पटनामे आये ।

एक दिनकी बात है कि शकटाल मुनि राजाके अन्त पुरमे आहार कर तपोवनकी ओर जा रहे थे । मत्री वररुचिने इन्हे देख लिया । सो इस पापी ने पुराने बैरका बदला लेनेका अच्छा मौका देखकर नन्दसे कहा—महाराज, आपको कुछ खबर है कि इस समय अपना पुराना मत्री पापी शकटाल भीखके बहाने आपके अन्त पुरमें, रनवासमे घुसकर न जाने क्या अनर्थ कर गया है ।

मुझे तो उसके चले आने के बाद ये समाचार मिले, नहीं तो मैंने उसे कभीका पकड़वा कर पापकी सजा दिलवा दी होती । अस्तु, आपको ऐसे धूर्तोंके लिए चुप बैठना उचित नहीं । सच है, दुर्गतिमें जानेवाले ऐसे पापी लोग बुरासे बुरा कोई काम करते नहीं चूकते । नन्दने अपने मंत्रीके बहकानेमें आकर गुस्सेसे उसी समय एक नौकरको आज्ञा की कि वह जाकर शकटालको जानसे मार आवें । सच है, मूर्ख पुरुष दुर्जनों द्वारा उस्कारे जाकर, करने और न करने योग्य भले-बुरे कार्यका कुछ विचार न कर, अन्याय कर ही डालते हैं । शकटाल मुनिने जब उस घातक मनुष्यको अपनी ओर आते देखा तब उन्हें विश्वास हो गया कि वह मेरे ही मारनेको आ रहा है और यह सब कर्म मन्त्री वररुचिका है । अस्तु, जब तक वह घातक शकटाल मुनिके पास पहुँचता है उसके पहले ही उन्होंने सावधान होकर संन्यास ले लिया । घातक अपना काम पूरा कर वापिस लौट गया । इधर शकटाल मुनिने समाधिसे शरीर त्याग कर स्वर्ग लाभ किया । सच है, दुष्ट पुरुष अपनी ओरसे कितनी ही दुष्टता क्यों न करे, पर उससे सत्पुरुषोंको कुछ नुकसान न पहुँच कर लाभ ही होता है ।

परन्तु जब नन्दको यह सब सच्चा हाल ज्ञात हुआ और उसने सब बातोंकी गहरी छान-बीनकी तब उसे मालूम हो गया कि शकटाल मुनिका कोई दोष न था, वे सर्वथा निरपराध थे । इसके पहले जैनमुनियोंके सम्बन्धमें जो उसकी मिथ्या धारण हो गई थी और उन पर जो उसका बे-हद क्रोध हो रहा था उस सबको हृदयसे दूर कर वह अब बड़ा ही पछताया । अपने पाप कर्मोंकी उसने बहुत निन्दा की । इसके बाद वह श्रीमहापद्म मुनिके पास गया । बड़ी भक्तिसे उसने उनकी पूजा-वन्दना की और सुखके कारण पवित्र जैनधर्मका उनके द्वारा उपदेश सुना । धर्मोपदेशका उसके चित्त पर बहुत प्रभाव पड़ा । उसने श्रावकोंके व्रत धारण किये । जैनधर्म पर अब इसकी अचल श्रद्धा हो गई ।

इस जीवको जब कोई बुरी संगति मिल जाती है तब तो यह बुरेसे बुरे पापकर्म करने लग जाता है और जब अच्छे महात्मा पुरुषोंकी संगति मिलती है तब यही पुण्य-पवित्र कर्म करने लगता है । इसलिए भव्यजनोंको सदा ऐसे महापुरुषोंकी संगति करना चाहिए जो संसारके आदर्श हैं और जिनकी सत्संगतिसे स्वर्ग-मोक्ष प्राप्त हो सकता है ।

इन सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तपरूपी रत्नोंकी सुन्दर मालाको प्रभाचन्द्र आदि पूर्वाचार्योंने शास्त्रोंका सार लेकर बनाया है, जो ज्ञानके समुद्र और सारे संसारके जीव मात्रका हित करनेवाले थे। उन्हींकी कृपासे मैंने इस आराधनारूपी मालाको अपनी बुद्धि और शक्तिके अनुसार बनाया है। यह माला भव्यजनोंको और मुझे सुख दे।

---

८३. श्रद्धायुक्त मनुष्यकी कथा

निर्मल केवलज्ञान द्वारा सारे संसारके पदार्थोको प्रकाशित करनेवाले जिन भगवान्को नमस्कार कर श्रद्धागुणके धारी विनयधर राजाकी कथा लिखी जाती है जो कथा सत्पुरुषोंको प्रिय है ।

कुरुजागल देशकी राजधानी हस्तिनापुरका राजा विनयधर था । उसकी रानीका नाम विनयवती था । यहाँ वृषभसेन नामका एक सेठ रहता था । इसकी स्त्रीका नाम वृषभसेना था । इसके जिनदास नामका एक बुद्धिमान पुत्र था ।

विनयधर बड़ा कामी था । सो एक बार इसके कोई महारोग हो गया । सच है, ज्यादा मर्यादासे बाहर विषय सेवन भी उलटा दु खका ही कारण होता है । राजाने बड़े-बड़े वैद्योंका इलाज करवाया पर उसका रोग किसी तरह न मिटा । राजा इस रोगसे बड़ा दु खी हुआ । उसे दिन-रात चैन न पडने लगा ।

राजाका एक सिद्धार्थ नामका मत्री था । यह जैनी था । शुद्ध सम्यग्दर्शनका धारक था । सो एक दिन इसने पादौषधिऋद्धिके धारक मुनिराजके पॉव प्रक्षालनका जल लाकर, जो कि सब रोगोंका नाश करनेवाला होता है, राजाको दिया । जिन भगवान्के सच्चे भक्त उस राजाने बड़ी श्रद्धाके साथ उस जलको पी-लिया । उसे पीनेसे उसका सब रोग जाता रहा । जैसे सूरजके उगनेसे अन्धकार जाता रहता है । सच है, महात्माओ के तपके प्रभावको कौन कह सकता है, जिनके कि पॉव धोनेके पानीसे ही सब रोगोकी शान्ति हो जाती है । जिस प्रकार सिद्धार्थ मन्त्रीने मुनिके पॉव प्रक्षालनका पवित्र जल राजाको दिया, उसी प्रकार अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे धर्मरूपी जल सर्व-साधारणको देकर उनका ससार ताप शान्त करें । जैनतत्वके परम विद्वान् वे पादौषधिऋद्धिके धारक मुनिराज मुझे शान्ति-सुख दें ।

जैनधर्ममें या जैनधर्मके अनुसार किये जानेवाले दान, पूजा, व्रत, उपवास आदि पवित्र कार्योमें की हुई श्रद्धा, किया हुआ विश्वास दु खोंका नाश करनेवाला है । इस श्रद्धाका आनुषगिक फल है—इन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याध र आदिकी सम्पदाका लाभ और वास्तविक फल है मोक्षका कारण केवलज्ञान, जिसमें कि अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तसुख और अनन्तवीर्य ये चार

अनन्तचतुष्ठय-आत्माकी खास शक्तियाँ प्रगट हो जाती हैं । वह श्रद्धा आप भव्यजनोंका कल्याण करे ।

८४. आत्मनिन्दा करनेवालीकी कथा

चारों प्रकारके देवों द्वारा पूजे जानेवाले जिन भगवानको नमस्कार कर उस स्त्रीकी कथा लिखी जाती है कि जिसने अपने किये पापकर्मोंकी आलोचना कर अच्छा फल प्राप्त किया है ।

बनारसके राजा विशाखदत्त थे । उनकी रानीका नाम कनकप्रभा था । इनके यहाँ एक चितेरा रहता था । इसकानाम विचित्र था । यह चित्रकलाका बड़ा अच्छा जानकार था । चितेरेकी स्त्रीका नाम विचित्रपताका था । इसके बुद्धिमती नामकी एक लड़की थी । बुद्धिमती बड़ी सुन्दरी और चतुर थी ।

एक दिन विचित्र चितेरा राजाके खास महलमें, जो कि बड़ा सुन्दर था, चित्र कर रहा था । उसकी लडकी बुद्धिमती उसके लिए भोजन लेकर आई । उसने विनोद वश हो भींत पर मोरकी पींछीका एक चित्र बनाया वह चित्र इतना सुन्दर बना कि सहसा कोई न जान पाता कि वह चित्र है । जो उसे देखता वह यही कहता कि यह मोरकी पींछी है । इसी समय महाराज विशाखदत्त इस ओर आ गये । । वे उस चित्रको मोरकी पींछी समझ उठानेकोउसकी ओर बढे । यह देख बुद्धिमतीने समझा कि महाराज ने-समझ हैं । नहीं तो इन्हे इतना भ्रम नहीं होता ।

दूसरे दिन बुद्धिमतीने एक और अद्भुत चित्र राजाको बतलाते हुए अपने पिताको पुकारा–पिताजी, जल्दी आइए, भोजन की जवानीका समय बीत रहा है । बुद्धिमतीके इन शब्दोंको सुनकर राजा बड़े अचम्भेमें पड गया । वह उसके कहनेका कुछ भाव न समझ कर एक टकटकी लगाये उसके मुँहकी ओर देखता रह गया । राजाको अपना भाव न समझा देख बुद्धिमतीको उसके मूर्ख होनेका और दृढ विश्वास हो गया ।

अबकी बार बुद्धिमतीने और ही चाल चली । एक भींत पर दो परदे लगा दिये और राजाको चित्र बतलानेके बहाने उसने एक परदा उठाया । उसमें चित्र न था । तब राजा उस दूसरे परदेकी ओर चित्रकी आशासे आँखे फाडकर देखने लगा । बुद्धिमतीने दूसरा परदा भी उठा दिया । भींतपर चित्रको न देखकर राजा बड़ा शर्मिंदा हुआ । उसकी इन चेष्टाओंसे उसे पूरा मूर्ख समझ

बुद्धिमतीने जरा हँस दिया। राजा और भी अचम्भेमें पड़ गया। वह बुद्धिमती का कुछ भी अभिप्राय न समझ सका। उसने तब व्यग्र हो बुद्धिमती से ऐसा करनेका कारण पूछा। बुद्धिमतीके उत्तरसे उसे जान पड़ा कि वह उसे चाहती है और इसलिए पिताको भोजनके लिये पुकारते समय व्यंगसे राजा पर उसने अपना भाव प्रगट किया था। राजा उसकी सुन्दरता पर पहले हीसे मुग्ध था, सो वह बुद्धिमतीकी बातोंसे बड़ा खुश हुआ। उसने फिर बुद्धिमतीके साथ ब्याह भी कर लिया। धीरे-धीरे राजाका उस पर इतना अधिक प्रेम बढ़ गया कि अपनी सब रानियोंमें पटरानी उसने उसे ही बना दिया। सच बात यह है कि प्राणियोंकी उन्नतिके लिये उनके गुण ही उनका दूतपना करते हैं, उन्हें उन्नति पर पहुँचा देते हैं।

राजाने बुद्धिमतीको सारे रनवासकी स्वामिनी बना तो दिया, पर उसमें सब रानियाँ उस बेचारी की शत्रु बन गई, उससे डाह, ईर्षा करने लगी। आते-जाते वे बुद्धिमतीके सिर पर मारती और उसे बुरी-भली सुनाकर बे-हद कष्ट पहुँचातीं। बेचारी बुद्धिमती सीधी-साधी थी, सो न तो वह उनसे कुछ कहती और न महाराजसे ही कभी उनकी शिकायत करती। इस कष्ट और चिन्तासे मन ही मन घुलकर वह सूख सी गई। वह जब जिन मन्दिर दर्शन करने जाती तब सब सिद्धियोंके देनेवाले भगवान्के सामने खड़े हो अपने पूर्व कर्मोंकी निन्दा करती और प्रार्थना करती कि हे ससार पूज्य, हे स्वर्ग-मोक्षके सुख देनेवाले, हे दु·खरूपी दावानलके बुझानेवाले मेघ, और हे दयासागर, मैं एक छोटे कुलमें पैदा हुई हूँ, इसीलिये मुझे ये सब कष्ट हो रहे हैं। पर नाथ, इसमें दोष किसी का नहीं। मेरे पूर्व जन्मके पापोंका उदय है। प्रभो, जो हो, पर मुझे विश्वास है कि जीवोंको चाहे कितने ही कष्ट क्यों न सता रहे हों, पर जो आपको हृदयसे चाहता है, आपका सच्चा सेवक है,उसके सब कष्ट बहुत जल्दी नष्ट हो जाते हैं। और इसीलिये हे नाथ, कामी, क्रोधी, मानी मायावी देवोंको छोडकर मैंने आपकी शरण ली है। आप मेरा कष्ट दूर करेंगे ही। बुद्धिमती न मन्दिरमें ही किन्तु महल पर भी अपने कर्मोंकी आलोचना किया करती। वह सदा एकान्तमें रहती और न किसीसे विशेष बोलती-चालती। राजाने उसके दुर्बल होनेका कारण पूछा—बार-बार आग्रह

किया, पर बुद्धिमतीने उसे कुछ भी न कहा ।

बुद्धिमती क्यों दिनों दिन दुर्बल होती आती है, इसका शोध लगानेके लिये एक दिन राजा उसके पहले जिनमन्दिर आ गया । बुद्धिमतीने प्रतिदिनकी तरह आज भी भगवान्के सामने खड़ी होकर आलोचना की । राजाने वह सब सुन लिया । सुनकर ही वह सीधा महल पर आया । अपनी सब रानियोंको उसने खूब ही फटकारा, धिक्कारा और बुद्धिमतीको ही उनकी मालकिन—पट्टरानी बनाकर उन सबको उसकी सेवा करनेके लिए बाध्य किया ।

जिस प्रकार बुद्धिमतीने अपनी आत्म-निन्दा की, उसी तरह अन्य बुद्धिमानों और क्षुल्लक आदिको भी जिन भगवान्के सामने भक्तिपूर्वक आत्मनिन्दा—पूर्वकर्मोंकी आलोचना करना उचित है ।

उत्तम कुल और उत्तम सुखोंकी देनवाली तथा दुर्गतिके दुःखोंकी नाश करनेवाली जिन भगवान्की भक्ति मुझे भी मोक्ष का सुख दे ।

---

८५. आत्मनिन्दा की कथा

सब दोषोंके नाश करनेवाले और सुखके देनेवाले ऐसे जिन भगवान्को नमस्कार कर अपने बुरे कर्मोंकी निन्दा—आलोचना करनेवाली बीरा ब्राह्मणीकी कथा लिखी जाती है ।

दुर्योधन जब अयोध्याका राजा था तब की यह कथा है । यह राजा बड़ा न्यायी और बुद्धिमान् हुआ है । इसकी रानीका नाम श्रीदेवी था । श्रीदेवी बड़ी सुन्दरी और सच्ची पतिव्रता थी ।

यहाँ एक सर्वोपाध्याय नामका ब्राह्मण रहता था । इसकी स्त्रीका नाम बीरा था । इसका चाल-चलन अच्छा न था । जवानीके जोरमें यह मस्त रहा करती थी । उपाध्यायके घर पर एक विद्यार्थी पढ़ा करता था । उसका नाम अग्निभूति था । बीरा ब्राह्मणीके साथ इसकी अनुचित प्रीति थी । ब्राह्मणी इसे बहुत चाहती थी । पर उपाध्याय इन दोनोंके सुखका काँटा था । इसलिये ये मनमाना ऐशोआराम न कर पाते थे । ब्राह्मणी को यह बहुत खटका करता था । सो एक दिन मौका पाकर ब्राह्मणीने अपने पतिको मार डाला । और उसे मसानमें फैंक आनेको छत्रीमें छुपाकर अन्धेरी रातमें वह घरसे निकली । मसानमें जैसे ही उपाध्यायके मुर्देको फैंकनेको तैयार हुई कि एक व्यन्तरदेवीने उसके ऐसे नीच कर्म पर गुस्सा होकर छत्रीको कील दिया और कहा—"सबेरा होने पर जब तू सारे शहरकी स्त्रियोंके घर-घर पर जाकर अपना यह नीच कर्म प्रगट करेगी, अपने कर्म पर पछतायेगी तब तेरे सिर परसे यह छत्री गिरेगी ।" देवीके कहे अनुसार ब्राह्मणीने वैसा ही किया । तब कहीं उसका पीछा छूटा, छत्री सिरसे अलग हो सकी । इस आत्म-निन्दासे ब्राह्मणीका पापकर्म बहुत हल्का हो गया, वह शुद्ध हुई । इसी तरह अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे प्रतिदिन होनेवाले बुरे कर्मोंकी गुरुओंके पास आलोचना किया करें । उससे उनका पाप नष्ट होगा और अपने आत्माको वे शुद्ध बना सकेंगे ।

किसी पुरुषके शरीरमें काँटा लग गया और वह उससे बहुत कष्ट पा रहा है । पर जब तक वह काँटा उसके शरीरसे न निकलेगा तब तक वह सुखी नहीं हो सकता । इसलिए उस काँटेको निकाल फैंककर जैसे वह पुरुष सुखी

होता है, उसी तरह जो आत्म-हितैषी जैनधर्मके बताये सिद्धान्त पर चलनेवाले वीतरागी साधुओंकी शरण ले अपने आत्माको कष्ट पहुँचानेवाले पापकर्मरूपी काँटेको कृतकर्मोंकी आलोचना द्वारा निकाल फेंकते हैं वे फिर कभी नाश न होनेवाली आत्मीक लक्ष्मीको प्राप्त करते हैं ।

---

८६. सोमशर्म मुनिकी कथा

सर्वोत्तम धर्मका उपदेश करनेवाले जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर सोमशर्म मुनिकी कथा लिखी जाती है ।

आलोचना, गर्हा, आत्मनिन्दा, व्रत उपवास, स्तुति और कथाएँ इनके द्वारा प्रमादको, असावधानीको नाश करना चाहिए । जैसे मंत्र, औषधि आदिसे विषका वेग नाश किया जाता है इसी सम्बन्धकी यह कथा है ।

भारतके किसी हिस्सेमें बसे हुए पुण्ड्रक देशके प्रधान शहर देवी-कोटपुरमें सोमशर्म नामका ब्राह्मण हो चुका है । सोमशर्म वेद और वेदांग, व्याकरण, निरुक्त, छन्द, ज्योतिष, शिक्षा और कला का अच्छा विद्वान् था । इसकी स्त्रीका नाम सोमिल्या था । इसके अग्निभूति और वायुभूति दो लड़के थे ।

यहाँ विष्णुदत्त नामका एक और ब्राह्मण रहता था । इसकी स्त्रीका नाम विष्णुश्री था । विष्णुदत्त अच्छा धनी था । पर स्वभावका अच्छा आदमी न था । किसी दिन कोई खास जरूरत पड़ने पर सोमशर्मने विष्णुदत्तसे कुछ रुपया कर्ज लिया था । उसका कर्ज अदा न कर पाया था कि एक दिन सोमशर्मव किसी जैनमुनिके धर्मोपदेशसे वैराग्य हो जानेसे वह मुनि हो गया । वहाँसे विहार कर वह कहीं अन्यत्र चला गया और दूसरे नगरों और गाँवोंमें धर्मका उपदेश करता हुआ एक बार फिर वह कोटपुरमें आया । विष्णुदत्तने तब इसे देखकर पकड़ लिया और कहा—साधुजी, आपके दोनों लड़के तो इस समय महा दरिद्र दशामें हैं । उनके पास एक फूटी कौड़ी तक नहीं है वे मेरा रुपया नहीं दे सकते । इसलिये या तो आप मेरा रुपया दे दीजिये, या अपना धर्म बेच दीजिये । सोमशर्म मुनिके सामने बड़ी कठिन समस्या उपस्थित हुई । वे क्या करें, इसकी उन्हें कुछ सूझ न पड़ी । तब उनके गुरु वीरभद्राचार्यने उनसे कहा—अच्छा तुम जाओ और धर्म बेचो ! उनकी आज्ञा पाकर सो॰॰र्म मुनि मसानमें जाकर धर्म बेचने लगे । इस समय एक देवीने आ॰॰ उनसे पूछा—मुनिराज, जिस धर्मको आप बेच रहे है, भला, कहिये तो वह कैसा है ? उत्तरमें मुनिने कहा—मेरा धर्म अट्ठाईस मूलगुण और चौरासी लाख उत्तरगुणोंसे

युक्त है तथा उत्तम-क्षमा, मोर्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग आकिंचन और ब्रह्मचर्य इन दश भेद रूप है। धर्मका यह स्वरूप श्रीजिनेन्द्र भगवान्ने कहा है। मुनि द्वारा अपने बेचे जानेवाले धर्मकी इस प्रकार व्याख्या सुनकर वह देवी बहुत प्रसन्न हुई। उसने मुनिको नमस्कार कर धर्मकी प्रशंसामें कहा—मुनिराज, आपने जो कहा वह बहुत ठीक है। यही धर्म संसारको वश करनेके लिए एक वशीकरण मंत्र है, अमूल्य चिन्तामणि है, सुखरूप अमृतकी धारा है, और मनचाही वस्तुओंके दुहने—देने के लिये कामधेनु है। अधिक क्या, किन्तु यह समझना चाहिये कि संसारमें जो-जो मनोहरता देख पड़ती है वह सब एक धर्महीका फल है। धर्म एक सर्वोत्तम अमोल वस्तु है। उसका मोल हो ही नहीं सकता। पर मुनिराज, आपको उस ब्राह्मणका कर्ज चुकाना है। आपका यह उपसर्ग दूर हो, इसलिये दीक्षा समय-केश लोंच किये आपके बालोंको उसे कर्जके बदले दिये देती हूँ। यह कहकर देवी उन बालोंको अपनी दैवी-मायासे चमकते हुए बहुमूल्य रत्न बनाकर आप अपने स्थान पर चल दी। सच है, जैनधर्मका प्रभाव कौन वर्णन कर सकता है, जो कि सदा ही सुख देनेवाला और देवों द्वारा पूजा किया जाता है।

सबेरा होने पर विष्णुदत्त, सोमशर्म मुनिके तपका प्रभाव देखकर चकित रह गया। उसकी मुनि पर तब श्रद्धा हो गई। उसने नमस्कार कर उनकी प्रशंसा में कहा—योगिराज, सचमुच आप बडे ही भाग्यशाली हैं। अपके सरीखा विद्वान् और धीर मैंने किसीको नहीं देखा। यह आपहीसे महात्माओंका काम है जो मोहपाश तोड़-तुड़ाकर इस प्रकार दुःसह तपस्या कर रहे हैं। महाराज, आपकी मैं किन शब्दोंमें तारीफ करूँ, यह मुझे नहीं जान पड़ता। आपने तो अपने जीवनको सफल बना लिया। पर हाय! मैं पापी पापकर्मके उदयसे धनरूपी चोरों द्वारा ठगा गया। मैं अब इनके पैंचीले जालसे कैसे छूट सकूँगा। दयासागर, मुझे बचाइये। नाथ, अब तो मैं आप हीके चरणोंकी सेवा करूँगा। आपकी सेवाको ही अपना ध्येय बनाऊँगा। तब ही कहीं मेरा भला होगा। इस प्रकार बड़ी देर तक विष्णुदत्तने सोमशर्म मुनिकी स्तुति की। अन्त में प्रार्थना कर उनसे दीक्षा ले वह मुनि हो गया।

जो विष्णुदत्त एक ही दिन पहले मुनिकी इज्जत, प्रतिष्ठा बिगाड़नेको हाथ धोकर उनके पीछा पड़ा था और मुनिको उपसर्ग कर जिसने पाप बाँधा था वही गुरुभक्तिसे स्वर्ग और मोक्षके सुखका पात्र हो गया। सच है, धर्मकी शरण ग्रहण कर सभी सुखी होते हैं। विष्णुदत्तके सिवा और भी बहुतेरे भव्यजन जैनधर्मका ऐसा प्रभाव देखकर जैनधर्मके प्रेमी हो गए और उस धनसे, जिसे देवीने मुनिके बालोंको रत्नोंके रूपमें बनाया था, कोटितीर्थ, नामका एक बड़ा ही सुन्दर जिनमन्दिर बनवा दिया, जिसमें धर्मसाधन कर भव्यजन सुख-शान्ति लाभ करते थे।

जो बुद्धिरूपी धनके मालिक, बड़े विचारशील साधु-सन्त जिन भगवान् के द्वारा उपदेश किये, सारे संसारमें पूजे-माने जाने वाले, स्वर्ग-मोक्षके या और सब प्रकार सांसारिक सुखके कारण, संसारका भय मिटानेवाले ऐसे परम पवित्र तपको भक्तिसे ग्रहण करते हैं वे कभी नाश न होनेवाले मोक्षका सुखका लाभ करते हैं। ऐसे महात्मा योगीराज मुझे भी आत्मीक सच्चा सुख दें।

---

८७. कालाध्ययनकी कथा

जिनका ज्ञान सबसे श्रेष्ठ है और संसारसमुद्रसे पार करनेवाला है, उन जिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर उचित कालमें शास्त्राध्ययन कर जिसने फल प्राप्त किया उसकी कथा लिखी जाती है।

जैनतत्वके विद्वान् वीरभद्र मुनि एक दिन सारी रात शास्त्राभ्यास करते रहे। उन्हें इस हालतमें देखकर श्रुतदेवी एक अहीरनीका वेष लेकर उनके पास आई। इसलिये कि मुनिको इस बातका ज्ञान हो जाय कि यह समय शास्त्रोंके पढ़ने पढ़ानेका नहीं है। देवी अपने सिर पर छाछकी मटकी रखकर और यह कहती हुई, कि लो, मेरे पास बहुत ही मीठी छाछ है, मुनिके चारों ओर घूमने लगी। मुनिने तब उसकी ओर देखकर कहा—अरी, तू बड़ी बेसमझ जान पड़ती है, कहीं पगली तो नहीं हो गई है बतला तो ऐसे एकान्त स्थानमें ओर सो भी रातमें कौन तेरी छाछ खरीदेगा ? उत्तरमें देवीने कहा—महाराज क्षमा कीजिये। मैं तो पगली नहीं हूँ; किन्तु मुझे आप ही पागल देख पड़ते हैं। नहीं तो ऐसे असमयमें, जिसमें पठन-पाठनकी मना है, आप क्यों शास्त्राभ्यास करते ? देवीका उत्तर सुनकर मुनिजीकी आँखें खुलीं। उन्होंने आकाशकी ओर नजर उठाकर देखा तो उन्हें तारे चमकते हुए देख पड़े उन्हे मालूम हुआ कि अभी बहुत रात है। तब वे पढ़ना छोड़कर सो गये।

सबेरा होने पर वे अपने गुरु महाराजके पास गये और अपनी इस क्रियाकी आलोचना कर उनसे उन्होंने प्रायश्चित्त लिया। अबसे वे शास्त्राभ्यासका जो काल है उसीमें पठन-पाठन करने लगे। बडी भक्तिसे उसने उनकी पूजा की। सच है, गुणवानोंकी सभी पूजा करते हैं।

इस प्रकार दर्शन, ज्ञान और चारित्रका यथार्थ पालन कर वीरभद्र मुनिराज अन्त समयमें धर्म-ध्यानसे मृत्यु लाभ कर स्वर्गधाम सिधारे।

भव्यजनोंको भी उचित है कि वे जिन भगवान्के उपदेश किए, ससारको अपनी महत्तासे मुग्ध करनेवाले, स्वर्ग या मोक्षकी सर्वोच्च सम्पदाको देनेवाले, दु ख, शोक, कलंक आदि आत्मा पर लगे हुए कीचड़को धो-देनेवाले, संसारके पदार्थोंका ज्ञान करानेमें दीयेकी तरह काम देनवाले और सब प्रकारके

संसारिक सुखके आनुषंगिक कारण ऐसे पवित्र ज्ञानको भक्तिसे प्राप्त कर मोक्षका अविनाशी सुख लाभ करें ।

---

८८ अकालमें शास्त्राभ्यास करनेवालेकी कथा

संसार द्वारा पूजे जानेवाले और केवलज्ञान जिनका प्रकाशमान नेत्र है, ऐसे जिन भगवान्को नमस्कार कर असमयमें जो शास्त्राभ्यासके लिए योग्य नहीं है, शास्त्राभ्यास करनेसे जिन्हें उसका बुरा फल भोगना पड़ा, उनकी कथा लिखी जाती है। इसलिए कि विचारशीलोंको इस बातका ज्ञानहो कि असमयमें शास्त्राभ्यास करना अच्छा नहीं है, उसका बुरा फल होता है।

शिवनन्दी मुनिने अपने गुरु द्वारा यद्यपि यह जान रक्खा था कि स्वाध्यायका समय-काल श्रवण नक्षत्रका उदय होनेके बाद माना गया है, तथापि कर्मों के तीव्र उदयसे वे अकालमें ही शास्त्राभ्यास किया करते थे। फल इसका यह हुआ कि मिथ्या समाधिमरण द्वारा मरकर उन्होंने गंगामें एक बड़े भारी मच्छकी पर्याय धारण की। सो ठीक ही है जिन भगवान्की आज्ञाका उल्लंघन करनेसे इस जीवको दुर्गतिके दु:ख भोगने ही पड़ते हैं।

एक दिन नदी किनारे पर एक मुनि शास्त्राभ्यास कर रहे थे। इस मच्छने उनके पाठको सुन लिया। उससे उसे जातिस्मरण हो गया। तब उसने इस बातका बहुत पछतावा किया कि हाय ! मैं पढ़कर भी मूर्ख बना रहा , जो जैनधर्मसे विमुख होकर मैंने पापकर्म बाँधा। उसीका यह फल है, जो मुझे मच्छ-शरीर लेना पड़ा। इस प्रकार अपनी निन्दा और अपने पापकर्मकी आलोचना कर उसने भक्तिसे सम्यक्त्व ग्रहण किया, जो कि सब जीवोंका हित करनेवाला है। इसके बाद वह जिन भगवान्की आराधना कर पुण्यके उदयसे स्वर्ग महर्द्धिक देव हुआ। सच है, मनुष्य धर्मकी आराधना कर स्वर्ग जाता है और पापी धर्मसे उलटा चलकर दुर्गतिमें जाता है। पहला सुख भोगता है और दूसरा दु:ख उठाता है। यह जानकर बुद्धिवानोंको उचित है, उनका कर्त्तव्य है कि वे जिनेन्द्र भगवान्के उपदेश किये धर्मकी भक्तिसे अपनी शक्तिके अनुसार आराधना करें, जो कि सब सुखों का देनेवाला है।

सम्यग्ज्ञान जिसने प्राप्त कर लिया उसकी सारे संसारमें कीर्ती होती है, सब प्रकारकी उत्तम-उत्तम सम्पदाएँ उसे प्राप्त होती हैं, शान्ति मिलती है और वह पवित्रताकी साक्षात्प्रतिमा बन जाता है। इसलिए भव्यजनोंको उचित

है कि वे जिन भगवान्‌के पवित्र ज्ञानको, जो कि देवों और विद्याधरों द्वारा पूजा-माना जाता है, प्राप्त करनेका यत्न करें ।

---

८९. विनयी पुरुषकी कथा

इन्द्र, धरणेन्द्र, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों द्वारा पूजे जानेवाले जिन भगवान्‌को नमस्कार कर विनयधर्मके पालनेवाले मनुष्यकी पवित्र कथा लिखी जाती है।

वत्सदेशमें सुप्रसिद्ध कौशाम्बीके राजा धनसेन वैष्णव धर्म के माननेवाले थे। उनकी रानी धनश्री, जो बहुत सुन्दरी और विदुषी थी, जिनधर्म पालती थी। उसने श्रावकोंके व्रत ले रक्खे थे। यहाँ सुप्रतिष्ठ नामका एक वैष्णव साधु रहता था। राजा इसका बड़ा आदर-सत्कार करते थे और यही कारण था कि राजा इसे स्वयं ऊँचे आसन बैठाकर भोजन कराते थे। इसके पास एक जलस्तंभिनी नामकी विद्या थी। उसके यह बीच यमुनामें खड़ा रहकर ईश्वराधना किया करता था, पर डूबता न था। इसके ऐसे प्रभावको देखकर मूढ़ लोग बड़े चकित होते थे। सो ठीक ही है मूर्खोंको ऐसी मूर्खताकी क्रियाएँ पसन्द हुआ ही करती है।

विजयार्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमे बसे हुए रथनूपुरके राजा विद्युत्प्रभ तो जैनी थे, श्रावकों के व्रतोंके पालनेवाले थे और उनकी रानी विद्युद्वेगा वैष्णव धर्मकी माननेवाली थी। सो एक दिन ये राजा-रानी प्रकृतिकी सुन्दरता देखने और अपने मनको बहलाते कौशाम्बीकी ओर आ गये। नदी-किनारे पहुँच कर इन्होंने देखा कि एक साधु बीच यमुनामें खड़ा रहकर तपस्या कर रहा है। विद्युत्प्रभने जान लिया कि यह मिथ्यादृष्टि है। पर उनकी रानी विद्युत्प्रभने रानीसे कहा—अच्छी बात है, प्रिये, आओ तो मैं तुम्हें जरा इसकी मूर्खता बतलाता हूँ। इसके बाद ये दोनों चाण्डालका वेष बना ऊपर किनारेकी ओर गये और मरे ढोरोंका चमड़ा नदीमें धोने लगे। अपने इस निन्द्यकर्म द्वारा इन्होंने साधुको अपवित्र कर दिया। उस साधुको यह बुरा लगा। सो वह इन्हें कुछ कहे सुनकर ऊपरकी ओर चला गया। वहाँ उसने फिर नहाया धोया। सच है मूर्खताके वश लोग कौन काम नहीं करते। साधुकी यह मूर्खता देखकर ये भी फिर ओर आगे जाकर चमड़ा धोने लगे। इनकी बार-बार यह शैतानी देखकर साधुको बड़ा गुस्सा आया। तब वह और आगे चला गया।

इसके पीछे हो ये दोनों भी जाकर फिर अपना काम करने लगे। गर्ज यह कि इन्होंने उस साधुको बहुत ही कष्ट दिया। तब हार खाकर बेचारेको अपना जप-तप, नाम-धन ही छोड़ देना पड़ा। इसके बाद उस साधुको इन्होंने अपनी विद्याके बलसे वनमें एक बड़ा भारी महल खड़ा कर देना, झूला बनाकर उस पर झूलना आदि अनेक अचम्भे डालनेवाली बातें बतलाई। उन्हें देखकर सुप्रतिष्ठ साधु बड़ा चकित हुआ। वह मनमें सोचने लगा कि जैसी विद्या इन चाण्डालोंके पास है ऐसी तो अच्छे-अच्छे विद्याधरों या देवोंके पास भी न होगी। यदि यही विद्या मेरे पास भी होती तो मैं भी इनकी तरह बड़ी मौज मारता। अस्तु, देखें, इनके पास जाकर मैं कहूँकि ये अपनी विद्या मुझे भी दे दे। इसके बाद वह इनके पास आया और उनसे बोला—आप लोग कहाँसे आ रहे हैं? आपके पास तो लोगोंको चकित करनेवाली बड़ी-बड़ी करामातें है। आपका वह विनोद देखकर मुझे बड़ी प्रसन्नता हुई। उत्तरमें विद्युत्प्रभ विद्याधरने कहा—योगीजी, आप मुझे नहीं जानते कि मैं चाण्डाल हूँ! मैं तो अपने गुरु महाराजके दर्शनके लिए यहाँ आया हुआ था। गुरुजीने खुश होकर मुझे जो विद्या दी है, उसीके प्रभावसे यह सब कुछ मैं करता हूँ। अब तो साधुजीके मुँहमें भी विद्यालाभके लिए पानी आ गया। उन्होंने तब उस चाण्डाल रूपधारी विद्याधरसे कहा—तो क्या कृपा करके आप मुझे भी यह विद्या दे सकते हैं, जिससे कि मैं भी फिर आपकी तरह खुशी मनाया करूँ। उत्तरमें विद्याधरने कहा—भाई, विद्याके देनेमे तो मुझे कोई हर्ज मालूम नहीं देता, पर बात यह है कि मैं ठहरा चाण्डाल और आप वेदवेदांगके पढ़े हुए एक उत्तम कुलके मनुष्य, तब आपका मेरा गुरु-शिष्य भाव नहीं बन सकता। और ऐसी हालतमें आपसे मेरा विनय भी न हो सकेगा और बिना विनयके विद्या आ नहीं सकती। हाँ यदि आप यह स्वीकार करें कि जहाँ मुझे देख पावें वहाँ मेरे पाँवोंमें पड़कर बड़ी भक्तिके साथ यह कहें कि प्रभो, आप हीकी चरणकृपासे मैं जीता हूँ! तब तो मैं आपको विद्या दे सकता हूँ और तभी विद्या सिद्ध हो सकती है। बिना ऐसा किये सिद्ध हुई विद्या भी नष्ट हो जाती है। उसने यह सब बातें स्वीकार कर लीं। तब विद्युत्प्रभ विद्याधर इसे विद्या देकर अपने घर चला गया।

इधर सुप्रतिष्ठ साधुको जैसे ही विद्या सिद्ध हुई, उसने उन सब लीलाओंको करना शुरू किया जिन्हें कि विद्याधरने किया था। सब बातें वैसी ही हुई देखकर सुप्रतिष्ठ बड़ा खुश हुआ। उसे विश्वास हो गया कि अब मुझे विद्या सिद्ध हो गई। इसके बाद वह भोजनके लिए राजमहल आया। उसे देरसे आया हुआ देखकर राजाने पूछा—भगवन्, आज आपको बड़ी देर लगी? मैं बड़ी देरसे आपका रास्ता देख रहा हूँ। उत्तरमें सुप्रतिष्ठने मायाचारी से झूठ-मूठ ही कह दिया कि राजन्, आज मेरी तपस्याके प्रभावसे ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि सब देव आये थे। ये बड़ी भक्तिसे मेरी पूजा करके अभी गये हैं। यही कारण मुझे देरी लग जानेका है। और राजन् एक बात नई यह हुई कि मैं अब आकाशमें ही चलने-फिरने लग गया। सुनकर राजाको बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही में यह सब कौतुक देखनेकी उसकी मंशा हुई। उसने तब सुप्रतिष्ठसे कहा—अच्छा तो महाराज, अब आप आइए और भोजन कीजिए। क्योंकि बहुत देर हो चुकी है। आप वह सब कौतुक मुझे बतलाइगा। सुप्रतिष्ठ 'अच्छी बात है' कहकर भोजनके लिए चला आया।

दूसरे दिन सवेरा होते ही राजा और उसके अमीर-उमराव वगैरह सभी सुप्रतिष्ठ साधुके मठमें उपस्थित हुए। दर्शकोंका भी ठाठ लग गया। सबकी आँखें और मन साधुकी ओर जा लगे कि वह अपना नया चमत्कार बतलावें। सुप्रतिष्ठ साधु भी अपनी करामात बतलानेको आरंभ करनेवाला ही था कि इतनेमें वह विद्युत्प्रभ विद्याधर और उसकी स्त्री उसी चाण्डाल वेषमें वहीं आ धमके। सुप्रतिष्ठके देवता उन्हें देखते ही कूँच कर गये। ऐसे समय उनके आ जानेसे इसे उनपर बड़ी घृणा हुई। उसने मन ही मन घृणाके साथ कहा—ये दुष्ट इस समय क्यों चले आये! उसका यह कहना था कि उसकी विद्या नष्ट हो गई। वह राजा वगैरहको अब कुछ भी चमत्कार न बतला सका और बड़ा शर्मिन्दा हुआ। तब राजाने 'ऐसा एक साथ क्यों हुआ' इसका सब कारण सुप्रतिष्ठसे पूछा। झख मारकर फिर उसे सब बातें राजासे कह देनी पड़ीं। सुनकर राजाने उन चाण्डालोंको बड़ी भक्तिसे प्रणाम किया। राजा की यह भक्ति देखकर उन्होंने वह विद्या राजाको दे दी। राजा उसकी

परीक्षा कर बड़ी प्रसन्नतासे अपने महल लौट गया । सो ठीक ही है विद्याका लाभ सभीको सुख देनेवाला होता है ।

राजाकी भी परीक्षाका समय आया । विद्याप्राप्तिके कुछ दिनों बाद एक दिन राजा राज-दरबारमें सिंहासन पर बैठा हुआ था । राजसभा सब अमीर-उमरावोंसे ठसा-ठस भरी हुई थी । इसी समय राजगुरु चाण्डाल वहाँ आया, जिसने कि राजाको विद्या दी थी । राजा उसे देखते ही बड़ी भक्तिसे सिंहासन परसे उठा और उसके सत्कारके लिए कुछ आगे बढ़कर उसने उसे नमस्कार किया और कहा—प्रभो, आप हीके चरणोंकी कृपासे मैं जीता हूँ । राजाकी ऐसी भक्ति और विनयशीलता देखकर विद्युत्प्रभ बड़ा खुश हुआ । उसने तब अपना खास रूप प्रगट किया और राजाको और भी कई विद्याएँ देकर वह अपने घर चला गया । सच है, गुरुओंके विनयसे लोगोंको सभी सुन्दर-सुन्दर वस्तुएँ प्राप्त होती हैं ।

इस आश्चर्यको देखकर धनसेन, विद्युद्वेगा तथा और भी बहुतसे लोगोंने श्रावक-व्रत स्वीकार किये । विनयका इस प्रकार फल देखकर अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे गुरुओंका विनय, भक्ति निर्मल भावोंसे करें ।

जो गुरुभक्ति क्षणमात्रमें कठिनसे कठिन कामको पूरा कर देती है वही भक्ति मेरी सब क्रियाओंकी भूषण बने । मैं उन गुरुओंको नमस्कार करता हूँ कि जो संसार-समुद्रसे स्वयं तैरकर पार होते हैं और साथ ही और-और भव्यजानोंको पार करते हैं ।

जिनके चरणोंकी पूजा देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि बड़े-बड़े महापुरुष करते है उन जिन भगवान्का, उनके रचे पवित्र शास्त्रोंका और उनके बताये मार्ग पर चलनेवाले मुनिराजोंका जो हृदयसे विनय करते हैं, उनकी भक्ति करते है उनके पास कीर्ति, सुन्दरता, उदारता, सुख-सम्पत्ति और ज्ञान-आदि पवित्र गुण अत्यन्त पड़ोसी होकर रहते हैं । अर्थात् विनयके फलसे उन्हें सब गुण होते हैं ।

—

१०. अवग्रह-नियम लेनेवालेकी कथा

पुण्य कारण जिन भगवान् चरणोंको नमस्कर कर उपाधानअवग्रहकी अर्थात् यह काम जबतक न होगा तबतक मैं ऐसी प्रतिज्ञाकरता हूँ, इस प्रकारका नियम कर जिसने फल प्राप्त किया, उसकी कथा लिखी जाती है, जो सुख की देनेवाली है।

अहिछत्रपुरके राजा वसुपाल बड़े बुद्धिमान् थे। जैनधर्म पर उनकी बड़ी श्रद्धा थी। उनकी रानीका नाम वसुमती था। वसुमती भी अपने स्वामीके अनुरूप बुद्धिमती और धर्म पर प्रेम करनेवाली थी। वसुपालने एक बड़ा ही विशाल और सुन्दर 'सहस्रकूट' नामका जिनमन्दिर बनवाया। उसमें उन्होंने श्रीपार्श्वनाथ भगवान्की प्रतिमा विराजमान की। राजाने प्रतिमा पर लेप चढ़ानेको एक अच्छे होशियार लेपकारको बुलाया और प्रतिमा पर लेप चढ़ानेको उससे कहा। राजाज्ञा पाकर चित्रकारने प्रतिमा पर बहुत सुन्दरतासे लेप चढ़ाया। पर रात होने पर वह लेप प्रतिमा परसे गिर पड़ा। दूसरे दिन फिर ऐसा ही किया गया। रातमें वह लेप भी गिर पड़ा। गर्ज यह कि वह दिनमें लेप लगाता और रातमें वह लेप भी गिर पड़ता। इस नरह उसे कई दिन बीत गये। ऐसा क्यों होता है, इसका उसे कुछ भी कारण न जान पडा। उससे वह तथा राजा वगैरह बड़े दुखी हुए। बात असलमें यह थी कि वह लेपकार मास खाने वाला था। इसलिए उसकी अपवित्रतासे प्रतिमा पर लेप न ठहरता था। तब उसे लेपकारको एक मुनि द्वारा ज्ञान हुआ कि प्रतिमा अतिशयवाली है, कोई शासनदेवी या देव उसकी रक्षामें सदा नियुक्त रहते हैं। इसलिये जब तक यह कार्य पूरा हो तब तक तुझे मांसके न खानेका व्रत लेना चाहिए। लेपकारने वैसा ही किया। मुनिराजके पास उसने मांस न खाने का नियम लिया। इसके बाद जब उसने दूसरे दिन लेप किया तो अबकी बार वह ठहर गया। सच है, व्रती पुरुषोंके कार्यकी सिद्धि होती ही है। तब राजाने अच्छे-अच्छे वस्त्राभूषण देकर लेपकारका बड़ा आदर-सत्कार किया। जिस तरह इस लेपकारने अपने कार्यकी सिद्धिके लिए नियम किया उसी प्रकार और-और लोगोंको तथा मुनियोंको भी ज्ञानप्रचार, शासन-प्रभावना आदि कामोंमें अवग्रह या प्रतिज्ञा करना चाहिए।

वह जिनेन्द्र भगवान्का उपदेश किया ज्ञानरूपी समुद्र मुझे भी केवलज्ञानी—सर्वज्ञ बनावे, जो अत्यन्त पवित्र साधुओं द्वारा आत्म-सुखकी प्राप्तिके लिए सेवन किया जाता है और देव विद्याधर, चक्रवर्ती आदि बड़े-बडे महापुरुष जिसे भक्तिसे पूजते हैं ।

---

११. अभिमान करनेवालीकी कथा

निर्मल केवलज्ञान धारी जिन भगवान्‌को नमस्कार कर मान करनेसे बुरा फल प्राप्त करनेवालेकी कथा लिखी जाती है। इस कथाको सुनकर जो लोग मानके छोड़नेका यत्न करेंगे वे सुख लाभ करेंगे।

बनारसके राजा मोरध्वज प्रजाका हित चाहनेवाले और बड़े बुद्धिमान् थे। इनकी रानीका नाम वसुमती था। वसुमती बड़ी सुन्दरी थी। राजाका इस पर अत्यन्त प्रेम था।

गंगाके किनारे पर पलास नामका एक गाँव बसा हुआ था। इसमें अशोक नामका एक गुवाल रहता था। यह गुवाल राजाको गाँवके लगानमें कोई एक हजार घीके भरे घड़े दिया करता था। इसकी स्त्री नन्दा पर इसका प्रेम न था। इसलिये कि वह बाँझ थी। और यह सच है, सुन्दर या गुणवान स्त्री भी बिना पुत्रके शोभा नहीं पाती है और न उस पर पतिका पूरा प्रेम होता है। वह फल रहित लताकी तरह निष्फल समझी जाती है। अपनी पहली स्त्रीको नि सन्तान देखकर अशोक गुवालने एक और ब्याह कर लिया। इस नई स्त्रीका नाम सुनन्दा था। कुछ दिनों तक तो इन दोनों सौतोंमें लोक-लाजसे पटती रही, पर जब बहुत ही लड़ाई-झगड़ा होने लगा तब अशोकने इनसे तंग आकर अपनी जितनी धन-सम्पत्ति थी उसे दोनोंके लिये आधी-आधी बाँट दिया। नन्दाको अलग घरमें रहना पड़ा और सुनन्दा अशोकके पास ही रही। नन्दामें एक बात बड़ी अच्छी थीं वह एक तो समझदार थी। दूसरे, वह अपने दूध दुहनेके लिये बरतन वगैरहको बड़ा साफ रखती। उसे सफाई बड़ी पसन्द थी। इसके सिवा वह अपने नौकर गुवालों पर बडा प्रेम करती। उन्हें अपना नौकर न समझ अपने कुटुम्बकी तरह मानती। वह उनका बड़ा आदर-सत्कार करती। उन्हें हर एक त्यौहारोंके मौकों पर दान-मानादिसे बड़ा खुश रखती। इसलिए वे गुवाल लोग भी उसे बहुत चाहते थे और उसके कामोंको अपना ही समझ कर किया करते थे। जब वर्ष पूरा होता तो नन्दा राज लगानके हजार घीके घड़ोंमेंसे अपना आधा हिस्सा पाँचसौ घड़े अपने स्वामीको प्रतिवर्ष दे दिया करती थी। पर सुनन्दामें ये सब बातें न थीं। उसे अपनी सुन्दरताका बड़ा

अभिमान था । इसके सिवा यह बड़ी शौकीन थी । साज-सिंगारमें ही उसका सब समय चला जाता था । वह अपने हाथोंसे कोई काम करना पसन्द न करती थी । सब नौकर-चाकरों द्वारा ही होता था । इस पर भी उसका अपने नौकरोंके साथ अच्छा बरताव न था । सदा उनके साथ वह माथा-फोड़ी किया करती थी । किसीका अपमान करती, किसीको गालियाँ देती और किसीको भला-बुरा कहकर झिटकारती । न वह उन्हें कभी त्यौहारों पर कुछ देकर प्रसन्न करती । गर्ज यह कि सब नौकर-चाकर उससे प्रसन्न न थे । जहाँ तक उनका बस चलता वे भी सुनन्दाको हानि पहुँचानेका यत्न करते थे । यहाँ तक कि वे जो गायोंको चराने जगलमें ले जाते, वहाँ उनका दूध तक दुह कर पी लिया करते थे । इससे सुनन्दाके यहाँ पहले ही वर्षमें ही घी बहुत थोडा हुआ । वह राजलगानका अपना आधा हिस्सा भी न दे सकी । उसके इस आधे हिस्सेको भी बेचारी नन्दाने ही चुकाया । सुनन्दा की यह दशा देख कर अशोकने घरसे निकाल बाहर की । नन्दाको अपना गया अधिकार पीछा प्राप्त हुआ । पुण्यसे वह पीछा अशोक की प्रेमपात्र हुई । घर बार, धन-दौलतकी वह मालकिन हुई । जिस प्रकार नन्दा अपने घरगृहस्थीके कामको अच्छी तरह चलानेके लिये सदा दान-मानादि किया करती उसी प्रकार अनेक पारमार्थिक कामोके लिये भव्यजनोंको भी अभिमान रहित होकर जैनधर्मकी उन्नतिके कार्योंमें दान-मानादि करते रहना चाहिए । उससे वे सुखी होंगे और सम्यग्ज्ञान लाभ करेंगे ।

जो स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाले जिन भगवान्को बड़ी भक्तिसे पूजा-प्रभावना करते है, भगवान्के उपदेश किये शास्त्रोंके अनुसार चल उनका सत्कार करते हैं, पवित्र जैनधर्म पर श्रद्धा-विश्वास करते हैं और सज्जन धर्मात्माओंका आदर सत्कार करते हैं वे ससार में सर्वोच्च यश लाभ करते हैं ओर अन्तमें कर्मोंका नाश कर परम पवित्र केवलज्ञान—कभी नाश न होनेवाला सुख प्राप्त करते हैं ।

---

१२. निह्नव-असल बातको छुपानेवालेकी कथा

जिनके सर्व-श्रेष्ठ ज्ञानमें यह सारा संसार परमाणुके समान देख पड़ता है, उन सर्वज्ञ भगवान्‌को नमस्कार कर निह्नव—जिस प्रकार जो बात हो उसे उसी प्रकार न कहना, उसे छुपाना, इस सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है।

उज्जैन के राजा धृतिषेणकी रानी मलयावतीके चण्डप्रद्योत नामका एक पुत्र था। वह जैसा सुन्दर था वैसा ही गुणवान भी था। पुण्यके उदयसे उसे सभी सुख सामग्री प्राप्त थी।

एक बार दक्षिण देशके वेनातट नगरमें रहनेवाले सोमशर्मा ब्राह्मणका कालसंदीव नामका विद्वान् पुत्र उज्जैनमें आया। वह कई भाषाओंका जाननेवाला था। इसलिये धृतिषेणने चण्डप्रद्योतको पढानेके लिये उसे रख लिया। कालसंदीवने चण्डप्रद्योतको कई भाषाओंका ज्ञान कराये बाद एक म्लेच्छ-अनार्यभाषाको पढ़ाना शुरू किया। इस भाषाका उच्चारण बड़ा ही कठिन था। राजकुमारको उसके पढ़नेमें बहुत दिक्कत पड़ा करती थी। एक दिन कोई ऐसा ही पाठ आया, जिसका उच्चारण बहुत क्लिष्ट था। राजकुमारसे उसका ठीक ठीक उच्चारण न बन सकता। कालसन्दीवने उसे शुद्ध उच्चारण करानेकी बहुत कोशिश की, पर उसे सफलता प्राप्त न हुई। इससे कालसन्दीवको कुछ गुस्सा आ गया। गुस्सेमें आकर उसने राजकुमारके एक लात मार दी। चण्डप्रद्योत था तो राजकुमार ही सो उसका भी कुछ मिजाज बिगड गया। उसने अपने गुरु महाराजसे तब कहा—अच्छा महाराज, आपने जो मुझे मारा है, मैं भी इसका बदला लिये बिना न छोड़ूँगा। मुझे आप राजा होने दीजिये, फिर देखिएगा कि मैं भी आपके इसी पाँवको काटकर ही रहूँगा। सच है, बालक कम-बुद्धि हुआ ही करते हैं। कालसन्दीव कुछ दिनोंतक और यहाँ रहा, फिर वह यहाँसे दक्षिणकी ओर चला गया। उधर कालसन्दीवको एक दिन किसी मुनिका उपदेश सुननेका मौका मिला। उपदेश सुनकर उसे बड़ा वैराग्य हुआ। वह मुनि हो गया।

इधर धृतिषेण राजा भी चण्डप्रद्योतको सब राज-काज सौंपकर साधु बन गया। राज्यकी बागडोर चण्डप्रद्योतके हाथमें आई। इसमें कोई सन्देह

नहीं कि चण्डप्रद्योतने भी राज्यशासन बड़ी नीतिके साथ चलाया । प्रजाके हितके लिये उसने कोई बात उठा न रखी ।

एक दिन चण्डप्रद्योत पर एक यवनराजका पत्र आया । भाषा उसकी अनार्य थी । उस पत्रको कोई राजकर्मचारी न बाँच सका । तब राजाने उसे देखा तो वह उससे बँच गया । पत्र पढ़कर राजाकी अपने गुरु कालसन्दीव पर बड़ी भक्ति हो गई । उसने बचपनकी अपनी प्रतिज्ञाको उसी समय भुला दिया । इसके बाद राजाने कालसन्दीवका पता-लगाकर उन्हें अपने शहर बुलाया और बडी भक्तिसे उनके चरणोंकी पूजा की । सच है, गुरुओंके वचन भव्यजनोंको उसी तरह सुख देनेवाले होते हैं जैसे रोगी को औषधि ।

कालसन्दीव मुनि यहाँ श्वेतसन्दीव नामके किसी एक भव्यको दीक्षा देकर फिर विहार कर गये । मार्गमें पड़नेवाले शहरों और गाँवोंमें उपदेश करते हुए वे विपुलाचल पर महावीर भगवानके समवशरणमें गये, जो कि बडी शान्ति देनेवाला था । भगवानके दर्शन कर उन्हें बहुत शान्ति मिली । वन्दना कर भगवानका उपदेश सुननेके लिये वे वहीं बैठ गये ।

श्वेतसन्दीव मुनि भी इन्हींके साथ थे । वे आकर समवशरणके बाहर आतापन योग द्वारा तप करने लगे । भगवानके दर्शन कर जब महामण्डलेश्वर श्रेणिक जाने लगे तब उन्होंने श्वेतसन्दीव मुनिको देखकर पूछा—आपके गुरु कौन हैं, किनसे आपने यह दीक्षा ग्रहण की ? उत्तरमें श्वेतसंदीव मुनिने कहा—राजन्, मेरे गुरु श्रीवर्द्धमान भगवान् है । इतना कहना था कि उनका सारा शरीर काला पड़ गया । यह देख श्रेणिकको बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होने पीछे जाकर गणधर भगवान्से इसका कारण पूछा । उन्होंने कहा—श्वेतसन्दीवके असल गुरु हैं कालसंदीव, जो कि यहीं बैठे हुए हैं । उनका इन्होंने निह्नव किया—सच्ची बात न बतलाई । इसलिये उनका शरीर काला पड़ गया है । तब श्रेणिकने श्वेतसदीवको समझा कर उनकी गलती उन्हें सुझाई और कहा—महाराज,आपकी अवस्थाके योग्य ऐसी बातें नहीं हैं । ऐसी बातोंसे पाप-बन्ध होता है । इसलिये आगेसे आप कभी ऐसा न करेंगे, यह मेरी आपसे प्रार्थना है । श्रेणिककी इस शिक्षाका श्वेतसंदीव मुनिके चित्त पर बड़ा गहरा असर पड़ा । वे अपनी भूल पर बहुत पछताये । इस

आलोचनासे उनके परिणाम बहुत उन्नत हुए। यहाँ तक कि उसी समय शुक्लध्यान द्वार कर्मोंका नाश कर लोकालोकका प्रकाशक केवलज्ञान उन्होंने प्राप्त कर लिया। वे सारे संसार द्वारा अब पूजे जाने लगे। अन्त में अघातिया कर्मोंको नष्ट कर उन्होंने मोक्षका अनन्तसुख लाभ किया। श्वेतसंदीव मुनिके इस वृत्तान्त से भव्यजनोंको शिक्षा लेनी चाहिये कि वे अपने गुरु आदिका निह्नव न देनेवाले हैं, इसलिये सेवा करने योग्य हैं।

वे श्रीश्वेतसंदीव मुनि मेरे बढ़ते हुए संसारकी-भव भ्रमण की शान्ति कर-मेरा संसारका भटकना मिटाकर मुझे कभी नाश न होनेवाला और अनन्त मोक्ष-सुख दें, जो केवलज्ञानरूपी अपूर्व नेत्रके धारक हैं, भव्यजनोंको हितकी ओर लगानेवाले हैं, देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषों द्वारा पूज्य हैं, और अनन्तचतुष्टय-अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्तवीर्यसे युक्त हैं तथा और भी अनन्त गुणोंके समुद्र हैं।

---

१३. अक्षरहीन अर्थकी कथा

जिन भगवान्‌के चरणोंको नमस्कार कर अक्षरहीन अर्थकी कथा लिखी जाती है।

मगधदेशकी राजधानी राजगृहके राजा जब वीरसेन थे, उस समयकी यह कथा है। वीरसेनकी रानीका नाम वीरसेना था। इनके एक पुत्र हुआ, उसका नाम रक्खा गया सिंह। सिंहको पढ़ानेके लिए वीरसेन महाराजने सोमशर्मा ब्राह्मणको रक्खा। सोमशर्मा सब विषयोंका अच्छा विद्वान् था।

पोदनपुरके राजा सिंहरथके साथ वीरसेनकी बहुत दिनोंसे शत्रुता चली आती थी। सो मौका पाकर वीरसेनने उस पर चढ़ाई कर दी। वहाँसे वीरसेन अपने यहाँ एक राज्य-व्यवस्थाकी बाबत पत्र लिखा। और-और समाचारोंके सिवा पत्रमें वीरसेनने एक यह भी समाचार लिख दिया था कि राजकुमार सिंहके पठन-पाठनकी व्यवस्था अच्छी तरह करना। इसके लिए उन्होंने यह वाक्य लिखा था कि "सिंहो ध्यापयितव्य·"। जब यह पत्र पहुँचा तो इसे एक अर्धदग्धने बाँचकर सोचा—'ध्यै' धातु का अर्थ है स्मृति या चिन्ता करना। इसलिए अर्थ हुआ कि 'राजकुमार पर अब राज्य- चिन्ताका भार डाला जाय'। उसे अब पढ़ाना उचित नहीं। बात यह थी कि उक्त वाक्यके पृथक् पद करनेसे—'सिंह· अध्यापयितव्यः' ऐसे पद होते हैं और इनका अर्थ होता है—सिंहको पढ़ाना, पर उस बाँचनेवाले अर्धग्धने इस वाक्यके—'सिंहः ध्यापयितव्य" ऐसे पद समझकर इसके सन्धिस्थ अकार पर ध्यान न दिया और केवल 'ध्यै' धातुसे बने हुए 'ध्यापयितव्यः' का चिन्ता अर्थ करके राजकुमारका लिखना-पढ़ना छुड़ा दिया। व्याकरणके अनुसार तो उक्त वाक्यके दोनों ही तरह पद होते हैं और दोनों ही शुद्ध हैं, पर यहाँ केवल व्याकरणकी ही दरकार न थी। कुछ अनुभव भी होना चाहिए था। पत्र बाँचनेवालेमें इस अनुभवकी कमी होनेसे उसने राजकुमारका पठन-पाठन छुड़ा दिया। इसका फल यह हुआ कि जब राजा आये और अपने कुमारका पठन-पाठन छूटा हुआ देखा तो उन्होंने उसके कारण की तलाश की। यथार्थ बात मालूम हो जाने पर उन्हें उस अर्धदग्ध—मूर्ख पत्र बाँचनेवाले पर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने इस

मूर्खताकी उसे बड़ी कड़ी सजा दी । इस कथासे भव्यजनोंको यह शिक्षा लेनी चाहिए कि वे कभी ऐसा प्रमाद न करें, जिससे कि अपने कार्यको किसी भी तरहकी हानि पहुँचे ।

जिस प्रकार गुणहीन औषधिसे कोई लाभ नहीं होता, वह शरीरके किसी रोगको नहीं मिटा सकती, उसी तरह अक्षर रहित शास्त्र या मन्त्र वगैरह भी लाभ नहीं पहुँचा सकते । इसलिए बुद्धिमानोंको उचित है कि वे सदा शुद्ध रीतिसे शास्त्राभ्यास करें—उसमें किसी तरहका प्रमाद न करें, जिससे कि हानि होनेकी संभावना है ।

☆ शरीर एक शास्त्रवत् है, अगर सही स्वाध्याय करने की कला हो तो ।

☆ जो व्यक्ति हित के पथ पर नहीं चलता, वह दूसरों का हित नहीं कर सकता, मात्र हित की बात कर सकता है, हित से मुलाकात नहीं करा सकता । हित की बात करना अलग है, और हित से मुलाकात करना अलग बात है । मुलाकात में हित का साक्षात्कार है, बात में नहीं ।

१४. अर्थहीन वाक्यकी कथा

गर्भ, जन्म तप, ज्ञान और निर्वाण ऐसे पाँच कल्याणोंमें स्वर्गके देवोंने आकर जिनकी बड़ी भक्तिसे पूजा की, उन जिन-भगवान्को नमस्कार कर अर्थहीन अर्थात् उलटा अर्थ करनेके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है।

वसुपाल अयोध्याके राजा थे। उनकी रानीका नाम वसुमती था। इनके वसुमित्र नामका एक बुद्धिमान पुत्र था। वसुपालने अपने पुत्रके लिखने-पढ़नेका भार एक गर्ग नामके विद्वान पंडितको सौंपकर उज्जैनके राजा वीरदत्त पर चढ़ाई कर दी। कारण वीरदत्त हर समय वसुपालका मानभंग किया करता था। और उनकी प्रजाको भी कष्ट दिया करता था। वसुपाल उज्जैन आकर कुछ दिनों तक शहरका घेरा डाले रहे। इस समय उन्होंने अपनी राज्य-व्यवस्थाके सम्बन्धका एक पत्र अयोध्या भेजा। उसीमें अपने पुत्रके बाबत उन्होंने लिखा—

> ''**पुत्रोध्यापयितव्योसौ वसुमित्रोति सादरम्।**
> **शालिभक्तं मसिस्पृक्तं सर्पियुक्तं दिनं प्रति॥**
> **गर्गोध्यायकस्योच्चैर्दीयते भोजनाय च।**''

इसका भाव यह है—वसुमित्रके पढ़ाने-लिखानेका प्रबन्ध अच्छा करना, कोई त्रुटि न करना और उसके पढ़ानेवाले पंडितजीको खाने-पीनेकी कोई तकलीफ न हो—उन्हें घी, चावल, दूध-भात, वगैरह खानेको दिया करना।" पत्र पहुँचा। बाँचनेवालने उसे ऐसा ही बाँचा। पर श्लोकमें 'मसस्पृिक्त एक शब्द है। इसका अर्थ करनेमें वह गल्ती कर गया। उसने इसे 'शालिभक्त' का विशेषण समझ यह अर्थ किया कि घी, दूध और मसि' मिले चावल पंडितजीको खानेको देना। ऐसा ही हुआ।

१ श्लोकमें 'मसिस्पृक्तं' शब्द है. उससे ग्रन्थकारका क्या मतलब है यह समझमें नहीं आता। पर वह ऐसी जगह प्रयोग किया गया है कि उसे "शालिभक्त" का विशेषण न किये गति ही नहीं है। आराधना कथाकोशकी छन्दोबन्ध भाषा बनानेवाले पंडित वख्तावरमल उक्त श्लोकोंकी भाषा यों करते हैं—

"सुत वसुमित्र पढ़ाइयो नित्त, सर्वनाम पाठक जो पवित्त ।

ताकि भोजना तंदुल घीव, लिखन हेत मसि देव सदीव ॥"

पंडित बखावरमलजीने 'मसिस्पृक्त" शब्दका अर्थ किया है—उपाध्यायको लिखनेको स्याही देना । यह उन्होंने कैसे ही किया हो, पर उस शब्दमें ऐसी कोई शक्ति नहीं जिससे कि यह अर्थ किया जा सके । और यदि ग्रन्थकारका भी इसी अर्थसे मतलब हो तो कहना पड़ेगा कि उनकी रचना शक्ति बड़ी ही शिथिल थी । हमारा यह विश्वास केवल इसी डेढ़ श्लोकसे ही ऐसा नहीं हुआ, किन्तु इतने बड़े ग्रन्थमें जगह-जगह, श्लोक-श्लोकमें ऐसी ही शिथिलता देख पड़ती है । हाँ यह कहा जा सकता है कि ग्रन्थकारने इतना बड़ा ग्रंथ बना जरूर लिया, पर हमारे विश्वासके अनुसार उन्हें ग्रंथकी साहित्यसुन्दरता, रचना सुन्दरता आदि बातोंमें बहुत थोड़ी भी सफलता शायद ही प्राप्त हुई हो ! इस विषयका एक पृथक लेख लिखकर हम पाठकोंकी सेवामें उपस्थित करेंगे, जिससे वे हमारे कथनमें कितना तथ्य है, इसका ठीक-ठीक पता पा सकेंगे ।

२. 'मसि' का अर्थ स्याही प्रसिद्ध है । पं० बख्तावरमलजीने भी स्याही अर्थ किया है । पर ग्रंथकार इसका अर्थ करते हैं—कोयला' ।

देखिए—

मसिर्घृतं सुभक्तं च दीयते भोजनालक्षणे ।

चूर्णीकृत्य ततोऽङ्गारं घृतभक्तेन मिश्रितम् ॥ दत्तं तस्मै इति ।

स्याही काली होती है और कोयला भी काला, शायद इसी रंगकी समानतासे ग्रन्थकारने कोयलेकी जगह मसिका प्रयोग कर दिया होगा ? पर है आश्चर्य ! ग्रन्थकारने इस श्लोकमें मसि शब्दको अलग लिखा है, पर ऊपरके श्लोकमें आये हुए 'मसिस्पृक्तं' शब्दका ऐस जुदा अर्थ किसी तरह नहीं किया जा सकता । ग्रन्थकारकी कमजोरीकी हद है, जो उनकी रचना इतनी शिथिल देख पड़ती है ।

जब बेचारे पडितजी भोजन करनेको बैठते तब चावलोंमें घी वगैरहके साथ थोड़ा कोयला भी पीसकर मिला दिया जाया करता था ।

जब राजा विजय प्राप्त कर लौटे तब उन्होंने पंडितजीसे कुशल समाचार उत्तरमें पूछा । उत्तरमें पंडितजीने कहा—राजाधिराज, आपके पुण्य प्रसादसे मैं हूँ तो अच्छी तरह, पर खेद है कि आपके कुल परम्पराकी रीतिके अनुसार मुझसे मसि-कोयला नहीं खाया जा सकता । इसलिए अब क्षमा कर आज्ञा दें तो बड़ी कृपा हो । राजाको पंडितजीकी बातका बड़ा अचम्भा हुआ । उनकी समझमें न आया कि बात क्या है । उन्होंने फिर उसका खुलासा पूछा । जब सब बातें उन्हे जान पड़ीं तब उन्होंने रानीसे पूछा—मैंने तो अपने पत्रमें ऐसी कोई बात न लिखी थी, फिर पंडितजीको ऐसा खानेको दिया जाकर क्यों तंग किया जाता था ? रानीने राजाके हाथमें उनका लिखा हुआ पत्र देकर कहा—आपके बाँचनेवाले ने हमें यही मतलब समझाया था । इसलिए यह समझकर, कि ऐसा करनेसे राजा साहबका कोई विशेष मतलब होगा, मैंने ऐसी व्यवस्था की थी । सुनकर राजाको बड़ा गुस्सा आया । उन्होंने पत्र बाँचनेवालेको उसी समय देश निकाले की सजा देकर उसे अपने शहर बाहर करवा दिया । इसलिए बुद्धिवानोंको उचित है कि वे लिखने-बाँचनेमें ऐसा प्रमाद का अर्थ कर अनर्थ न करें ।

यह विचार कर जो पवित्र आचरणके धारी और ज्ञान जिनका धन है ऐसे सत्पुरुष भगवान्के उपदेश किये हुए, पुण्यके कारण और यश तथा आनन्दको देनेवाले ज्ञान—सम्यग्ज्ञानके प्राप्त करनेका भक्तिपूर्वक यत्न करेंगे वे अनन्तज्ञानरूपी लक्ष्मीका सर्वोच्च सुख लाभ करेंगे ।

---

१५. व्यंजनहीन अर्थकी कथा

निर्मल केवलज्ञानके धारक श्रीजिनेन्द्र भगवान्को नमस्कार कर व्यंजनहीन अर्थ करनेवालेकी कथा लिखी जाती है ।

कुरुजांगल देशकी राजधानी हस्तिनापुरके राजा महापद्म थे । ये बड़े धर्मात्मा और जिन भगवान्के सच्चे भक्त थे । इनकी रानीका नाम पद्मश्री था । पद्मश्री सरल स्वभाववाली थी, सुन्दरी थी और कर्मोंके नाश करनेवाले जिनपूजा, दान, व्रत उपवास आदि पुण्यकर्म निरन्तर किया करती थी । मतलब यह कि जिनधर्म पर उसकी बड़ी श्रद्धा थी ।

सुरम्य देशके पोदनापुरका राजा सिंहनाद और महापद्ममे कई दिनोंकीशत्रुता चली आ रही थी । इसलिए मौका पाकर महापद्मने उस पर चढ़ाई कर दी । पोदनापुरमें महापद्मनेंएक 'सहस्रकूट' नामसे प्रसिद्ध जिनमन्दिर देखा । मन्दिरकी हजार खम्भोंवाली भव्य और विशाल इमारत देखकर माहपद्म बड़े खुश हुए । इनके हृदयमें भी धर्मप्रेमका प्रवाह बहा । अपने शहरमें भी एक ऐसे ही सुन्दर मन्दिरके बनवानेकी इनकी भी इच्छा हुई । तब उसी समय इन्होंने अपनी राजधानीमें पत्र लिखा । उसमें इन्होंने लिखा—

"महास्तंभसहस्रस्य कर्त्तव्य· संग्रहो ध्रुवम् ।"

अर्थात्—बहुत जल्दी बड़े-बड़े एक हजार खम्भे इकट्ठे करना ।" पत्र बाँचनेवालेने इस भ्रममे पड़ा—

"महास्तंभमहसस्य कर्त्तव्य· संग्रही ध्रुवम् । 'स्तभ' शब्दको 'स्तभ' समझकर उसने खम्भेकी जगह एक हजार बकरोंको इकट्ठा करनेको कहा । ऐसा ही किया गया । तत्काल एक हजार बकरे मँगवाये जाकर वे अच्छे खाने पिलाने द्वारा पाले जाने लगे ।

जब महाराज लौटकर वापिस आये तो उन्होंने अपने कर्मचारियोंसे पूछा कि मैंने जो आज्ञा की थी, उसकी तामील की गई ? उत्तरमें उन्होंने 'जी हाँ' कहकर उन बकरोंको महाराजाको दिखलाया । महापद्म देखकर सिरसे पैर तक जल उठे । उन्होंने गुस्सा होकर कहा—मैंने तो तुम्हें एक हजार खम्भों

को इकट्ठा करनेको लिखा था, तुमने वह क्या किया ? तुम्हारे इस विचारकी सजा मैं तुम्हें जीवनदण्ड देता हूँ। महापद्मकी ऐसी कठोर सजा सुनकर वे बेचारे बड़े घबराये ! उन्होंने हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि महाराज, इसमें हमारा तो कुछ दोष नहीं है। हमें तो जैसा पत्र बाँचनेवालेने कहा, वैसा ही हमने किया। महाराजने तब उसी समय पत्र बाँचनेवालेको बुलाकर उसके इस गुरुत्तर अपराधको जैसी चाहिए वैसी सजा की। इसलिए बुद्धिमानोंको उचित है कि वे ज्ञान, ध्यान आदि कामोंमें कभी ऐसा प्रमाद न करें। क्योंकि प्रमाद कभी सुखके लिए नहीं होता।

जो सत्पुरुष भगवान्के उपदेश किये पवित्र और पुण्यमय ज्ञानका अभ्यास करेंगे वे फिर मोह उत्पन्न करनेवाले प्रमादको न कर सुख देनेवाले जिनपूजा, दान, व्रत, उपवासादि धार्मिक कामोंमें अपनी बुद्धिको लगाकर केवलज्ञानका अनन्तसुख प्राप्त करेंगे।

---

१६. धरसेनाचार्यकी कथा

उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर, जिनका कि केवलज्ञान एक सर्वोच्च नेत्रकी उपमा धारण करनेवाला है, न्यूनाधिक अक्षरोंसे सम्बन्ध रखनेवाली धरसेनाचार्यकी कथा लिखी जाती है।

गिरनार पर्वतकी एक गुफामें श्रीधरसेनाचार्य, जो कि जैनधर्मरूप समुद्रके लिये चन्द्रमाकी उपमा धारण करनेवाले हैं, निवास करते थे। उन्हें निमित्तज्ञानसे जान पड़ा कि उनकी उमर बहुत थोड़ी रह गई है। तब उन्हें दो ऐसे विद्यार्थियोंकी आवश्यकता पड़ी कि जिन्हें वे शास्त्रज्ञानकी रक्षाके लिए कुछ अंगादिका ज्ञान करा दें। आचार्यने तब तीर्थयात्राके लिए आन्ध्रदेशके वेनातट नगरमें आये हुए संघाधिपति महासेनाचार्यको एक पत्र लिखा। उसमें उन्होंने लिखा—

"भगवान् महावीरका शासन अचल रहे, उसका सब देशोंमें प्रचार हो। लिखनेका कारण यह है कि इस कलियुगमें अंगादिका ज्ञान यद्यपि न रहेगा तथापि शास्त्रज्ञानकी रक्षा हो, इसलिये कृपाकर आप दो ऐसे बुद्धिमान् विद्यार्थियोंको मेरे पास भेजिये, जो बुद्धिके बड़े तीक्ष्ण हों, स्थिर हों, सहनशील हों और जैनसिद्धान्तका उद्धार कर सकें।

आचार्य ने पत्र देकर एक ब्रह्मचारीको महासेनाचार्यके पास भेजा। महासेनाचार्य उस पत्रको पढ़कर बहुत खुश हुए। उन्होंने तब अपने सघमें से पुष्पदत्त और भूतबलि ऐसे दो धर्मप्रेमी और सिद्धान्तके उद्धार करनेमे समर्थ मुनियोंको बड़े प्रेमके साथ धरसेनाचार्यके पास भेजा। ये दोनों मुनि जिस दिन आचार्यके पास पहुँचने वाले थे, उसकी पिछली रातको धरसेनाचार्यको एक स्वप्न देख पड़ा। स्वप्नमें उन्होंने दो हृष्टपुष्ट, सुडौल और सफेद बैलोंको बड़ी भक्तिसे अपने पाँवोंमें पड़ते देखा। इस उत्तम स्वप्नको देखकर आचार्यको जो प्रसन्नता हुई वह लिखी नहीं जा सकती। वे ऐसा कहते हुए, कि सब सन्देहोंके नाश करनेवाली श्रुतदेवी—जिनवाणी सदा काल इस संसारमें जल लाभ करे, उठ बैठे। स्वप्नका फल उनके विचारनुसार ठीक निकला। सबेरा होते ही दो मुनियोंने जिनकी कि उन्हें चाह थी, आकर आचार्यके

पाँवोंमें बड़ी भक्तिके के साथ अपना सिर झुकाया और आचार्यकी स्तुति की। आचार्यने तब उन्हें आशीर्वाद दिया—तुम चिरकाल जीकर महावीर भगवान्के पवित्र शासनकी सेवा करो। अज्ञान और विषयोंके दास बने संसारी जीवोंको ज्ञान देकर उन्हें कर्त्तव्यकी ओर लगाओ। उन्हें सुझाओ कि अपने धर्म और अपने भाइयोंके प्रति जो उनका कर्त्तव्य है उसे पूरा करें।

इसके बाद आचार्यने इन दोनों मुनियोंको दो तीन दिन तक अपने पास रक्खा और उनकी बुद्धि, शक्ति, सहनशीलता, कर्तव्य बुद्धिका परिचय प्राप्त कर दोनोंको दो विद्याएँ सिद्ध करनेको दीं। आचार्यने इनकी परीक्षाके लिये विद्या साधनेके मन्त्रोंके अक्षरोंको कुछ न्यूनाधिक कर दिया था। आचार्यकी आज्ञानुसार ये दोनों इसी गिरनार पर्वतके एक पवित्र और एकान्त भागमें भगवान् नेमिनाथकी निर्वाण शिला पर पवित्र मनसे विद्या सिद्ध करनेको बैठे। मंत्र साधनकी अवधि जब पूरी होनेको आई तब दो देवियाँ इनके पास आई। इन देवियोंमें एक देवी तो आँखोंसे अन्धी थी। और दूसरी के दाँत बडे और बाहर निकले हुए थे। देवियोंके ऐसे असुन्दर रूप को देखकर इन्हें बड़ा आश्चर्य हुआ। इन्होंने सोचा देवोंका तो ऐसा रूप होता नहीं, फिर यह क्यों ? तब इन्होंने मत्रोंकी जाँच की, मंत्रों को व्याकरणसे उन्होंने मिलाया कि कहीं उनमें तो गल्ती न रह गई हो ? इनका अनुमान सच हुआ। मंत्रोंकी गल्ती इन्हें भास गई। फिर इन्होंने उन्हें शुद्ध कर जपा। अबकी बार दो देवियाँ सुन्दर वेष में इन्हें देख पड़ीं। गुरुके पास आकर तब इन्होंने अपना सब हाल कहा। धरसेनाचार्य इनका वृत्तान्त सुनकर बड़े प्रसन्न हुए। आचार्यने इन्हें सब तरह योग्य पा फिर खूब शास्त्राभ्यास कराया। आगे चलकर यही दो मुनिराज गुरुसेवाके प्रसादसे जैनधर्मके धुरन्धर विद्वान् बनकर सिद्धान्तके उद्धारकर्त्ता हुए। जिस प्रकार इन मुनियों ने शास्त्रोंका उद्धार किया उसी प्रकार अन्य धर्मप्रेमियोंको भी शास्त्रोद्धार या शास्त्रप्रचार करना उचित है।

श्रीमान् धरसेनाचार्य और जैनसिद्धान्तके समुद्र श्री पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्य मेरी बुद्धिको स्वर्गमोक्षका सुख देनेवाले पवित्र जैनधर्ममें लगावें; जो जीव मात्रका हित करनेवाले और देवों द्वारा पूजा किये जाते हैं।

---

१७. सुव्रत मुनिराजकी कथा

देवों द्वारा जिनके पाँव पूजे जाते हैं, उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर सुव्रत मुनिराजकी कथा लिखी जाती है ।

सौराष्ट्र देशकी सुन्दर नगरी द्वारकामें अन्तिम नारायण श्रीकृष्णका जन्म हुआ । श्रीकृष्णकी कई स्त्रियाँ थीं, पर उन सबमें सत्यभामा बड़ी भाग्यवती थी । श्रीकृष्णका सबसे अधिक प्रेम इसी पर था । श्रीकृष्ण अर्धचक्री थे, तीन खण्डके मालिक थे । हजारों राजे महाराजे इनकी सेवामें सदा उपस्थित रहा करते थे ।

एक दिन श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान्‌के दर्शनार्थ समवशरण में जा रहे थे । रास्तेमें इन्होंने तपस्वी श्रीसुव्रत मुनिराजको सरोग दशामें देखा । सारा शरीर उनका रोगसे कृष्ट पा रहा था । उनकी यह दशा श्रीकृष्णसे न देखी गई । धर्मप्रेमसे उनका हृदय अस्थिर हो गया । उन्होंने उसी समय एक जीवक नामके प्रसिद्ध वैद्यको बुलाया और मुनिको दिखलाकर औषधिके लिये पूछा । वैद्यके कहे अनुसार सब श्रावकोंके घरोंमें उन्होंने औषधि-मिश्रित लड्डुओंके बनवानेकी सूचना करवा दी । थोड़े ही दिनोंमें इस व्यवस्थासे मुनिको आराम हो गया, सारा शरीर फिर पहले सा सुन्दर हो गया । इस औषधिदानके प्रभावसे श्रीकृष्णके तीर्थंकर प्रकृतिका बन्ध हुआ । सच है, सुखके कारण सुपात्रदानसे ससारमें सत्पुरुषोंको सभी कुछ प्राप्त होता है ।

निरोग अवस्था में सुव्रत मुनिराजको एक दिन देखकर श्रीकृष्ण बडे खुश हुए । इसलिये कि उन्हें अपने काममें सफलता प्राप्त हुई । उनसे उन्होंने पूछा—भगवन्, अब अच्छे तो हैं ? उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन्, शरीर स्वभाव हीसे अपवित्र, नाश होनेवाला और क्षण-क्षणमें अनेक अवस्थाओंको बदलनेवाला है, इसमें अच्छा और बुरापन क्या है ? पदार्थोंका जैसा परिवर्तन स्वभाव है उसी प्रकार यह कभी निरोग और कभी सरोग हो जाया करता है । हो, मुझे न इसके रोगी होनेमें खेद है और न निरोग होनेमें हर्ष ! मुझे तो अपने आत्माके काम, जिसे कि मैं प्राप्त करनेमें लगा हुआ हूँ और जो मेरा परम कर्त्तव्य है। सुव्रत योगिराजकी शरीरसे इस प्रकार निस्पृहता देखकर

श्रीकृष्णको बड़ा आनन्द हुआ । उन्होंने मुनिको नमस्कार कर उनकी बड़ी प्रशंसा की ।

पर जब मुनिकी यह निस्पृहता जीवक वैद्यके कानोंमें पहुँची तो उन्हें इस बातका बड़ा दु:ख हुआ, बल्कि मुनि पर उन्हें अत्यन्त घृणा हुई, कि मुनिका मैंने इतना उपकार किया तब भी उन्होंने मेरे सम्बन्धमें तारीफका एक शब्द भी न कहा ! इससे उन्होंने मुनिको बड़ा कृतघ्न समझ उनकी बहुत निन्दा की, बुराई की । इस मुनिनिन्दासे उन्हें बहुत पापका बन्ध हुआ । अन्तमें जब उनकी मृत्यु हुई तब वे इस पापके फलसे नर्मदा के किनारे पर एक बन्दर हुए । सच है, अज्ञानियोंको साधुओंके आचार-विचार, व्रतनियमादिका कुछ ज्ञान तो होता नहीं है । व्यर्थ उनकी निन्दा-बुराई कर वे पापकर्म बाँध लेते हैं । इससे उन्हें दु:ख उठाना पड़ता है ।

एक दिनकी बात है कि यह जीवक वैद्यका जीव बन्दर जिस वृक्ष पर बैठा हुआ था, उससे नीचे यही सुव्रत मुनिराज ध्यान कर रहे थे । इस समय उस वृक्षकी एक टहनी टूट कर मुनि पर गिरी । उसकी तीखी नोंक जाकर मुनिके पेटमें घुस गई । पेटका कुछ हिस्सा चिरकर उससे खून बहने लगा । मुनि पर जैसे ही उस बन्दरकी नजर पड़ी उसे जातिस्मरण हो गया । वह पूर्व जन्मकी शत्रुता भूलकर उसी समय दौड़ा गया और थोड़ी ही देरमें बहुत से बन्दरोंको बुला लाया । उन सबने मिलकर उस डालीको बड़ी सावधनीसे खींचकर निकाल लिया । और वैद्यके जीवने पूर्व जन्मके संस्कारसे जंगलसे जड़ी-बूटी लाकर उसका उस मुनिके घाव पर निचोड़ दिया । उससे मुनिको शान्ति मिली । इस बन्दरने भी इस धर्मप्रेमसे बहुत पुण्यबंध किया । सच है, पूर्व जन्मोंमें जैसा अभ्यास किया जाता है, जैसा पूर्व जन्मका संस्कार होता है दूसरे जन्मोंमें भी उसका संस्कार बना रहता है और प्राय: जीव वैसा ही कार्य करने लगता है । बन्दरमें—एक पशुमें इस प्रकार दयाशीलता देखकर मुनिराजने अवधिज्ञान द्वारा तो उन्हें वैद्यके जीवके जन्मका सब हाल ज्ञात हो गया । उन्होंने तब उसे भव्य समझकर उसके पूर्वजन्मकी सब कथा उसे सुनाई और धर्मका उपदेश किया । मुनिकी कृपासे धर्मका पवित्र उपदेश सुनकर धर्म पर उसकी बड़ी श्रद्धा हो गई । उसने भक्तिसे सम्यक्त्व-व्रत पूर्व अणुव्रतोंको

ग्रहण किया । उन्हें उसने बड़ी अच्छी तरह पाला भी । अन्तमें वह सात दिनका संन्यास ले मरा । इस धर्मके प्रभावसे वह सौधर्मस्वर्गमें जाकर देव हुआ । सच है, जैनधर्मसे प्रेम करनेवालोंको क्या प्राप्त नहीं होता । देखिए, यह धर्मका ही तो प्रभाव था जिससे कि एक बन्दर—पशु देव हो गया ! इसलिये धर्म या गुरुसे बढ़कर संसारमें कोई सुखका कारण नहीं है ।

वह जैनधर्म जयलाभ करे, संसारमें निरन्तर चमकता रहे, जिसके प्रसादसे एक तुच्छ प्राणी भी देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषोंकी सम्पत्ति लाभ कर-उसका सुख भोगकर अन्तमें मोक्षश्रीका अनन्त, अविनाशी सुख प्राप्त करता है । इसलिये आत्महित चाहनेवाले बुद्धिमानोंको उचित है , उनका कर्त्तव्य है कि वे मोक्षसुखके लिये परम पवित्र जैनधर्मके प्राप्त करनेका ओर प्राप्त कर उसके पालनेका सदा यत्न करें ।

१८. हरिषेण चक्रवर्तीकी कथा

केवलज्ञान जिनका नेत्र है ऐसे जिन भगवान्को नमस्कार कर हरिषेण चक्रवर्तीकी कथा लिखी जाती है ।

अगदेशके सुप्रसिद्ध कांपिल्य नगरके राजा सिंहध्वज थे । इनकी रानीका नाम विप्रा था । कथानायक हरिषेण इन्हींका पुत्र था । हरिषेण बुद्धिमान् था, शूरवीर था, सुन्दर था, दानी था और बड़ा तेजस्वी था । सब उसका बड़ा मान—आदर करते थे ।

हरिषेणकी माता धर्मात्मा थी । भगवान् पर उसकी अचल भक्ति थी । यही कारण था कि वह अठाईके पर्वमें सदा जिन भगवानका रथ निकलवाया करती और उत्सव मनाती । सिंहध्वजकी दूसरी रानी लक्ष्मीमतीको जैनधर्म पर विश्वास न था । वह सदा उसकी निन्दा करती थी । एक बार उसने अपने स्वामीसे कहा—प्राणनाथ, आज पहले मेरा ब्रह्माजीका रथ शहरमें घूमे, इस पर कुछ विचार न कर लक्ष्मीमतीका कहा मान लिया । पर जब धर्मवत्सल विप्रा रानीको इस बातकी खबर मिली तो उसे बड़ा दु:ख हुआ । उसने उसी समय प्रतिज्ञा की कि मैं खाना-पीना तभी करूँगी जब कि मेरा रथ पहले निकलेगा । सच है, सत्पुरुषोंको धर्म ही शरण होता है, उनकी धर्म तक ही दौड़ होती है ।

हरिषेण इतनेमें भोजन करनेको आया । उसने सदा की भाँति आज अपनी माताको हँस-मुख न देखकर उदास मन देखा । इससे उसे बड़ा खेद हुआ । माता क्यों दुखी है, इसका कारण जब उसे जान पड़ा तब वह एक पलभर भी फिर वहाँ न ठहर कर घरसे निकल पड़ा । यहाँसे चलकर वह एक चोरोंके गाँवमें पहुँचा । इसे देखकर एक तोता अपने मालिकोंसे बोला—जो कि चोरोंका सिखाया-पढ़ाया था, देखिये, यह राजकुमार जा रहा है, इसे पकड़ो । तुम्हें लाभ होगा । तोतेके इस कहने पर किसी चोरका ध्यान न गया । इसलिये हरिषेण बिना किसी आफतके आये यहाँसे निकल गया । सच है, दुष्टोंकी संगति पाकर दुष्टता आती ही है । फिर ऐसे जीवोंसे कभी किसीका हित नहीं होता ।

यहाँसे निकल कर हरिषेण फिर एक शतमन्यु नामके तापसीके आश्रममें

पहुँचा। वहाँ भी एक तोता था। परन्तु यह पहले तोते सा दुष्ट न था। इसलिये इसने हरिषेणको देखकर मनमें सोचा कि जिसके मुँह पर तेजस्विता और सुन्दरता होती है उसमें गुण अवश्य ही होते हैं। यह जानेवाला भी कोई ऐसा ही पुरुष होना चाहिये। इसके बाद ही उसने अपने मालिक तापसियोंसे कहा—वह राजकुमार जा रहा है। इसका आप लोग आदर करें। राजकुमारको बड़ा अचम्भा हुआ। उसने पहलेका हाल कह कर इस तोतेसे पूछा—तेरे भाईने तो अपने मालिकोंसे मेरे पकड़नेको कहा था और तू अपने मालिकोंसे मेरा मान-आदर करनेको कह रहा है, इसका कारण क्या है? तोता बोला—अच्छा राजकुमार, सुनो मैं तुम्हें इसका कारण बतलाता हूँ। उस तोतेकी और मेरी माता एक ही है, हम दोनों भाई-भाई हैं। इस हालतमें मुझमें और उसमें विशेषता होनेका कारण यह है कि मैं इन तपस्वियोंके हाथ पड़ा और वह चोरोंके। मैं रोज-रोज इन महात्माओंकी अच्छी-अच्छी बातें सुना करता हूँ और वह उन चोरोंकी बुरी-बुरी बातें सुनता है। इसलिये मुझमें और उसमें इतना अन्तर है। सो आपने अपनी आँखों देख ही लिया कि दोष और गुण ये संगतिके फल हैं। अच्छोंकी संगतिसे गुण प्राप्त होते हैं और बुरोंकी संगतिसे दुर्गुण।

इस आश्रमके स्वामी तापसी शतमन्यु पहले चम्पापुरीके राजा थे। इनकी रानीका नाम नागवती है। इनके जनमेजय नामका एक पुत्र और मदनावती नामकी एक कन्या है। शतमन्यु अपने पुत्रको राज्य देकर तापसी हो गये। राज्य अब जनमेजय करने लगा। एक दिन जनमेजयसे मदनावतीके सम्बन्धमें एक ज्योतिषीने कहा कि यह कन्या चक्रवर्तीका सर्वोच्च स्त्रीरत्न होगा। और यह सच है कि ज्ञानियोंका कहा कभी झूठा नहीं होता।

जब मदनावतीकी इस भविष्यवाणी की सब ओर खबर पहुँची तो अनेकों राजे लोग उसे चाहने लगे। इन्हींमें उड्डदेशका राजा कलकल भी था। उसने मदनावतीके लिये उसके भाईसे मँगनी की। उसकी वह मँगनी जनमेजयने नहीं स्वीकारी। इससे कलकलको बड़ा ना-गवार गुजेरा। उसने रुष्ट होकर जनमेजय पर चढ़ाई कर दी और चम्पापुरीके चारों ओर घेरा डाल दिया सच है, कामसे अन्धे हुए मनुष्य कौन काम नहीं कर डालते। जनमेजय भी ऐसा

डरपोक राजा न था । उसने फौरन ही युद्धस्थलमें आ-डटनेकी अपनी सेनाको आज्ञा दी । दोनों ओरके वीर योद्धाओंकी मुठभेड़ हो गई । खूब घमासान युद्ध आरम्भ हुआ । इधर युद्ध छिड़ा और उधर नागवती अपनी लड़की मदनावतीको साथ ले सुरंगके रास्तेसे निकल भागी । वह इसी शतमन्युने तब नागवती और मदनावतीको अपने आश्रममें ही रख लिया ।

हरिषेण राजकुमारका ऊपर जिकर आया है । इसका मदनावती पर पहलेसे ही प्रेम था । हरिषेण उसे बहुत चाहता था । यह बात आश्रमवासी तापसियोंको मालूम पड़ जानेसे उन्होंने हरिषेणको आश्रमसे निकाल बाहर कर दिया । हरिषेण को इससे बुरा तो बहुत लगा, पर वह कुछ कर-धर नहीं सकता था । इसलिये लाचार होकर उसे चला जाना ही पड़ा । इसने चलते समय प्रतिज्ञा की कि यदि मेरा इस पवित्र राजकुमारीके साथ ब्याह होगा तो मैं अपने सारे देशमें चार-चार कोस दूरी पर अच्छे-अच्छे सुन्दर और विशाल जिनमन्दिर बनवाऊँगा, जो पृथ्वीको पवित्र करनेवाले कहलायेंगे । सच है, उन लोगोंके हृदयमें जिनेन्द्र भगवान्की भक्ति सदा रहा करती है जो स्वर्ग या मोक्षका सुख प्राप्त करनेवाले होते हैं ।

प्रसिद्ध सिन्धुदेशके सिन्धुतट शहरके राजा सिन्धुनद और रानी सिन्धुमतीके कोई सौ लड़कियाँ थीं । ये सब ही बड़ी सुन्दर थीं । इसने लड़कियोंके सम्बन्धमें नैमित्तिकने कहा था कि—ये सब राजकुमारियाँ चक्रवर्ती हरिषेणकी स्त्रियाँ होंगी । से सिन्धुनदी पर स्नान करनेके लिये जायेंगी । इसी समय हरिषेण भी यहीं आ जायगा । तब परस्परकी चार आँखें होते ही दोनों ओरसे प्रेमका बीज अंकुरित हो उठेगा ।

नैमित्तिकका कहना ठीक हुआ । हरिषेण दूसरे राजाओं पर विजय करता हुआ इसी सिन्धुनदीके किनारे पर आकर ठहरा । इसी समय सिन्धुनदकी कुमारियाँ भी यहाँ स्नान करनेके लिए आई हुई थीं । प्रथम ही दर्शनमें दोनोंके हृदयमें प्रेमका अंकुर फूटा और फिर वह क्रमसे बढ़ता ही गया । सिन्धुनदसे यह बात छिपी न रही । उसने प्रसन्न होकर हरिषेणके साथ अपनी लड़कियोंका ब्याह कर दिया ।

रातको हरिषेण चित्रशाला नामके एक खास महलमें सोया हुआ था। इसी समय एक वेगवती नामकी विद्याधरी आकर हरिषेणको सोता हुआ ही उठा ले चली। रास्तेमें हरिषेण जग उठा। अपनेको एक स्त्री कहीं लिये जा रही है, इस बातकी मालूम होते ही उसे बड़ा गुस्सा आया। उसने तब उसे विद्याधरीको मारनेके लिये घूँसा उठाया। उसे गुस्सा हुआ देख विद्याधरी डरी और हाथ जोड़ कर बोली—महाराज, क्षमा कीजिए। मेरी एक प्रार्थना सुनिए। विजयार्द्ध पर्वत पर बसे हुए सूर्योदर शहरके राजा इन्द्रधन और रानी बुद्धमतीकी एक कन्या है। उसका नाम जयचन्द्रा है। वह सुन्दर है, बुद्धिमती है और बड़ी चतुर है। पर उसमें एक ऐब है और वह महा ऐब है। वह यह कि उसे पुरुषोंसे बड़ा द्वेष है, पुरुषोंको वह आँखोंसे देखना तक पसन्द नहीं करती। नैमित्तिकने उसके सम्बन्धमें कहा है कि जो सिन्धुनदकी सौ राजकुमारियोंका पति होगा, वही इसका भी होगा। तब मैंने आपका चित्र ले जाकर उसे बतलाया। वह उसे देखकर बड़ी प्रसन्न हुई। उसका सब कुछ आप पर न्योछावर हो चुका है। वह आपके सम्बन्धकी तरह-तरहकी बातें पूछा करती है और बडे चावसे उन्हें सुनतीहै। आपका जिकर छिड़ते ही वह बड़े ध्यानसे उसे सुनने लगती है। उसकी इन सब चेष्टाओंसे जान पड़ता है कि उसका आप पर अत्यन्त प्रेम है। यही कारण है कि मैं उसी आज्ञासे आपको उसके पास लिये जा रही हूँ। सुनकर हरिषेण बहुत खुश हुआ और फिर वह कुछ भी न बोलकर जहाँ उसे विद्याधरी लिवा गई, चला गया। वेगवतीने हरिषेणको इन्द्रधनके महल पर ला रक्खा। हरिषेणके रूप ओर गुणोंको देख कर सभीको बड़ी प्रसन्नता हुई। जयचन्द्राके माता-पिताने उसे ब्याहका भी दिन निश्चित कर दिया। जो दिन ब्याहका था उस दिन राजकुमारी जयचन्द्राके मामाके लड़के गंगाधर और महीधर ये दोनों हरिषेण पर चढ़ आये। इसलिये कि वह जयचन्द्राको स्वयं ब्याहना चाहते थे। हरिषेणने इनके साथ बड़ी वीरतासे युद्ध कर इन्हें हराया। इस युद्ध में हरिषेणके हाथ जवाहिरात और बहुत धन-दौलत लगी। यह चक्रवर्ती होकर अपने घर लौटा। रास्तेमें इसने अपनी प्रेमिणी मदनावतीसे भी ब्याह किया। घर आकर फिर इसने अपनी माताकी इच्छा पूरी की। पहले उसीका रथ चला। इसके बाद हरिषेणने अपने

देशभरमें जिन मन्दिर बनवा कर अपनी प्रतिष्ठाको भी निभाला। सच है, पुण्यवानोंके लिये कोई काम कठिन नहीं।

वे जिनेन्द्र भगवान् सदा जय लाभ करें, जो देवासियों द्वारा पूजा किये जाते हैं, गुणरूपी रत्नों की खान हैं, स्वर्ग-मोक्षके देनेवाले हैं, संसारके प्रकाशित करनेवाले निर्मल चन्द्रमा हैं केवलज्ञानी, सर्वज्ञ हैं और जिनके पवित्र धर्मका पालन कर भव्यजन सुख लाभ करते हैं।

—

११. दूसरोंके गुण ग्रहण करनेकी कथा

जिन्हें स्वर्गके देव पूजते हैं उन जिन भगवान्‌को नमस्कार कर दूसरोंके दोषोंको न देखकर गुण ग्रहण करनेवालेकी कथा लिखी जाती है।

एक दिन सौधर्म स्वर्गका इन्द्र धर्म-प्रेमके वश हो गुणवान् पुरुषोंकी अपने सभामें प्रशंसा कर रहा था। उस समय उसने कहा—जिस पुरुषका—जिस महात्माका हृदय इतना उदार है कि वह दूसरोंके बहुतसे औगुणों पर बिलकुल ध्यान न देकर उसमें रहनेवाले गुणोंके थोड़े भी हिस्सेको खूब बढ़ानेका यत्न करता है, जिसका ध्यान सिर्फ गुणोंके ग्रहण करनेकी ओर है वह पुरुष, वह महात्मा संसारमें सबसे श्रेष्ठ है, उसीका जन्म भी सफल है। इन्द्रके मुँहसे इस प्रकार दूसरोंकी प्रशंसा सुन एक मौजीले देवने उससे पूछा—देवराज, जैसा इस समय आपने गुणग्राहक पुरुषकी प्रशंसा की है, क्या ऐसा कोई बड़भागी पृथ्वी पर है भी। इन्द्रने उत्तरमें कहा—हाँ है और वे अन्तिम वासुदेव द्वारकाके स्वामी श्रीकृष्ण। सुनकर वह देव उसी समय पृथ्वी पर आया। इस समय श्रीकृष्ण नेमिनाथ भगवान् के दर्शनार्थ जा रहे थे। इनकी परीक्षाके लिये यह मरे कुत्तेका रूप ले रास्तेमें पड़ गया। इसके शरीरसे बड़ी ही दुर्गन्ध भभक रही थी। आने-जाने वालोंके लिये इधर-उधर होकर आना-जाना मुश्किल हो गया था। इसकी इस असह दुर्गन्धके मारे श्रीकृष्णके साथी सब भाग खड़े हुए। इसी समय वह देव एक दूसरे ब्राह्मणका रूप लेकर श्रीकृष्णके पास आया और उस कुत्तेकी बुराई करने लगा, उसके दोष दिखाने लगा। श्रीकृष्णने उसकी सब बाते सुन-सुनाकर कहा—अहा! देखिये, इस कुत्तेके दाँतोंकी, श्रेणी स्फटिकके समान कितनी निर्मल और सुन्दर है। श्रीकृष्णने कुत्तेके और दोषों पर उसकी दुर्गन्ध आदि पर कुछ ध्यान न देकर उसके दाँतोंकी, उसमें रहनेवाले थोड़ेसे भी अच्छे भागकी उल्टी प्रशंसा ही की। श्रीकृष्णकी पशुके लिये इतनी उदार बुद्धि देखकर वह देव बहुत खुश हुआ। उसने फिर प्रत्यक्ष होकर सब हाल श्रीकृष्णसे कहा और उचित आदरमान करके आप अपने स्थान चला गया।

इसी तरह अन्य जिन भगवान्‌के भक्त भव्यजनोंको भी उचित है कि

वे दूसरोंके दोषोंको छोड़कर सुखकी प्राप्तिके लिये प्रेमके साथ उनके गुणोंको ग्रहण करनेका यत्न करें। इसीसे वे गुणज्ञ और प्रशंसाके पात्र कहे जा सकेंगे।

---

१००. मनुष्य-जन्मकी दुर्लभताके दस दृष्टान्त

अतिशय निर्मल केवलज्ञानके धारक जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर मनुष्य जन्मका मिलना कितना कठिन है, इस बातको दस दृष्टान्तों-उदाहरणों द्वारा खुलासा समझाया जाता है ।

१ चोल्लक, २ पासा, ३ धान्य, ४ जुआ, ५ रत्न, ६. स्वप्न, ७. चक्र, ८. कछुआ, ९. युग और १० परमाणु ।

अब पहले ही चोल्लक दृष्टान्त लिखा जाता है, उसे आप ध्यान से सुनें ।

१. चौल्लक

संसारके हितकर्ता नेमिनाथ भगवान्‌को निर्वाण गये बाद अयोध्यामें ब्रह्मदत्त बारहवें चक्रवर्ती हुए । उनके एक वीर सामन्तका नाम सहस्रमह था । सहस्रमहकी स्त्री सुमित्राके सन्तानमें एक लड़का था । इसका नाम वासुदेव था । वासुदेव न तो कुछ पढ़ा-लिखा था और न राज-सेवा वगैरहकी उसमें योग्यता थी । इसलिये अपने पिताकी मृत्युके बाद उनकी जगह इसे न मिल सकी, जो कि एक अच्छी प्रतिष्ठित जगह थी । और यह सच है कि बिना कुछ योग्यता प्राप्त किये राज-सेवा आदिमें आदर-मानकी जगह मिल भी नहीं सकती । इसकी इस दशा पर माताको बड़ा दु:ख हुआ । पर बेचारी कुछ करने-धरनेको लाचार थी । वह अपनी गरीबीके मारे एक पुरानी गिरी-पड़ी झौंपड़ीमें रहने लगी और जिस किसी प्रकार अपना गुजारा चलाने लगी । उसने भावी आशासे वासुदेवसे कुछ काम लेना शुरू किया । वह लड्डू, पेड़ा, पान आदि वस्तुएँ एक खोमचेमें रखकर उसे आस-पासके गाँवोंमें भेजने लगी, इसलिये कि वासुदेवको कुछ परिश्रम करना आ जाय, वह कुछ हुशियार हो जाय । ऐसा करनेसे सुमित्राको सफलता प्राप्त हुई और वासुदेव कुछ सीख भी गया । उसे पहलेकी तरह अब निकम्मा बैठे रहना अच्छा न लगने लगा । सुमित्राने तब कुछ वसीला लगाकर वासुदेवको राजाका अंगरक्षक नियत करा दिया ।

एक दिन चक्रवर्ती हवा-खोरीके लिये घोड़े पर सवार हो शहर बाहर

हुए । जिस घोड़े पर वे बैठे थे वह बड़े दुष्ट स्वभावको लिए था । सो जरा ही पाँवकी ऐड़ी लगाने पर वह चक्रवर्तीको लेकर हवा हो गया । बड़ी दूर जाकर उसने उन्हें एक बड़ी भयावनी वनमें ला गिराया । इस समय चक्रवर्ती बड़े कष्टमें थे । भूख-प्याससे उनके प्राण छटपटा रहे थे । पाठकोंको स्मरण है कि इनके अंगरक्षक वासुदेवको उसकी माँने चलने-फिरने और दौड़ने-दुड़ानेके काममें अच्छा हुशियार कर दिया था । यही कारण था कि जिस समय चक्रवर्तीको घोड़ा लेकर भागा, उस समय वसुदेव भी कुछ खाने-पीनेकी वस्तुयें लेकर उनके पीछे-पीछे बेतहाशा भागा गया । चक्रवर्तीको आध-पौन घंटा वनीमें बैठे हुआ होगा कि इतनेमें वासुदेव भी उनके पास जा पहुँचा । खाने-पीनेकी वस्तुएँ उसने महाराजको भेंट की । चक्रवर्ती उससे बहुत सन्तुष्ट हुए । सच है, योग्य समयमें थोड़ा भी दिया हुआ सुखका कारण होता है । जैसे बुझते हुए दीयेमें थोड़ा भी तेल डालनेसे वह झटसे तेज हो उठता है । चक्रवर्तीने खुश होकर उससे पूछा तू कौन है ? उत्तरमें वासुदेवने कहा—महाराज, सहस्रभट सामन्तका मैं पुत्र हूँ । चक्रवर्ती फिर विशेष कुछ पूछ-ताछ न करके चलते समय उसे एक रत्नमयी ककण देते गये ।

अयोध्यामें पहुँच कर ही उन्होंने कोतवालसे कहा—मेरा कड़ा खो गया है, उसे ढूँढ़कर पता लगाइए । राजाज्ञा पाकर कोतवाल उसे ढूँढ़नेको निकला । रास्तेमें एक जगह इसने वासुदेवको कुछ लोगोंके साथ कड़ेके सम्बन्धकी ही बात-चीत करते पाया । कोतवाल तब उसे पकड़ कर राजा के पास लिवा ले गया । चक्रवर्ती उसे देखकर बोले—मैं तुझ पर बहुत खुश हूँ । तुझे जो चाहिए वही माँग ले । वासुदेव बोला—महाराज, इस विषय में मैं कुछ नहीं जानता कि मैं आपसे क्या माँगूँ । यदि आप आज्ञा करें तो मैं मेरी माँको पूछ आकर चक्रवर्तीसे उसने प्रार्थना की—महाराज, आप मुझे चोल्लक भोजन कराइए । उससे मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी । तब चक्रवर्तीने उनसे पूछा—भाई, चोल्लक भोजन किसे कहते हैं ? हमने तो उसका नाम भी आज तक नहीं सुना । वासुदेवने कहा—सुनिए महाराज, पहले तो बड़े आदरके साथ आपके महलमें मुझे भोजन कराया जाय और खूब अच्छे-अच्छे सुन्दर कपड़े, गहने-दागीने दिये जाँय । इसके बाद इसकी तरह आपकी रानियोंके महलोंमें

क्रम-क्रमसे मेरा भोजन हो। फिर आपके परिवार तथा मण्डलेश्वर राजाओंके यहाँ मुझे इसी प्रकार भोजन कराया जाय। इतना सब हो चुकनेपर क्रम-क्रमसे फिर आपहीके यहाँ मेरा अन्तिम भोजन हो। महाराज, मुझे पूर्ण विश्वास है कि आपकी आज्ञासे मुझे यह सब प्राप्त हो सकेगा।

भव्यजनों, इस उदाहरणसे यह शिक्षा लेनेकी है कि यह चोल्लक भोजन वासुदेव सरीखे कंगालको शायद प्राप्त हो भी जाय तो भी इसमें आश्चर्य करनेकी कोई बात नहीं, पर एक बार प्रमादसे खो-दिया गया मनुष्य जन्म बेशक अत्यन्त दुर्लभ है। फिर लाख प्रयत्न करने पर भी वह सहसा नहीं मिल सकता। इसलिए बुद्धिवानोंको उचित है कि वे दुःखके कारण खोटे मार्गको छोड़कर जैनधर्मका शरण लें, जो कि मनुष्य जन्मकी प्राप्ति और मोक्षका प्रधान कारण है।

२. पाशेका दृष्टान्त

मगध देशमें शतद्वार नामका एक अच्छा शहर था। उसके राजाका नाम भी शतद्वार था। शतद्वारने अपने शहरमें एक ऐसा देखने योग्य दरवाजा बनवाया, कि जिसके कोई ग्यारह हजार खंभे थे। उन एक-एक खम्भेमें छयानवे ऐसे स्थान बने हुए थे जिनमें जुआरी लोग पाशे द्वारा सदा जुआ खेला करते थे। एक सोमशर्मा नामके ब्राह्मणने उन जुआरियोंसे प्रार्थना की—भाइयो, मैं बहुत ही गरीब हूँ, इसलिए यदि आप मेरा इतना उपकार करें, कि आप सब खेलनेवालोंका दांव यदि किसी समय एक ही सा पड़ जाय और वह सब धन-माल आप मुझे दे दें, तो बहुत अच्छा हो। जुआरियोंने सोमशर्माकी प्रार्थना स्वीकार कर ली। इसलिए कि उन्हें विश्वास था कि ऐसा होना नितान्त ही कठिन है, बल्कि असभव है। पर देवयोग ऐसा हुआ कि एक बार सबका दाव एक हीसा पड़ गया और उन्हें अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार सब धन सोमशर्माको दे देना पड़ा। वह उस धनको पाकर बहुत खुश हुआ। इस दृष्टान्तसे यह शिक्षा लेनी चाहिए। कि जैसा योग सोमशर्माको मिला था, वैसा योग मिलकर और कर्मयोगसे इतना धन भी प्राप्त हो जाय तो कोई बात नहीं, परन्तु जो मनुष्य-जन्म एक बार प्रमाद वश हो नष्ट कर दिया जाय तो

वह फिर सहजमें नहीं मिल सकता । इसलिए सत्पुरुषोंको निरन्तर ऐसे पवित्र कार्य करते रहना चाहिए, जो मनुष्य-जन्म या स्वर्ग मोक्षके प्राप्त करानेवाले है ऐसे कर्म हैं--जिनेन्द्र भगवान्‌की पूजा करना, दान देना, परोपकार करना, व्रतोंका पालना, ब्रह्मचर्यसे रहना और उपवास करना आदि ।

३. धान्य दृष्टान्त

जम्बूद्वीपके बराबर चौड़ा और एक हजार योजन अर्थात् दो हजार कोस या चार कोस गहरा एक बड़ा भारी गड्ढा खोदा जाकर वह सरसोंसे भर दिया जाय । उसमेंसे फिर रोज-रोज एक-एक सरसों निकाली जाया करे । ऐसा निरन्तर करते रहनेसे एक दिन ऐसा भी आयगा कि जिस दिन वह कुण्ड सरसोंसे खाली हो जायगा । पर यदि प्रमादसे यह जन्म नष्ट हो गया तो वह समय फिर आना एक तरह असम्भव सा ही हो जायगा, जिनमें कि मनुष्य-जन्म मिल सके । इसलिए बुद्धिमानोंको उचित है कि वे प्राप्त हुए मनुष्य जन्मको निष्फल न खोकर जिन-पूजा, व्रत, दान, परोपकारादि पवित्र कामोंमें लगावें । क्योंकि ये सब परम्परा मोक्षके साधन है ।

धान्यका दूसरा दृष्टान्त

अयोध्याके राजा प्रजापाल पर राजगृहके जितपाल राजाने एक बार चढाई की और सारी आयोध्याको सब ओरसे घेर लिया । तब राजाने अपनी प्रजासे कहा--जिसके यहाँ धानके जितने बोरे हों, उन सब बोरोंको लाकर और गिनती करके मेरे कोठोंमें सुरक्षित रख दें । मेरी इच्छा है कि शत्रुको एक अन्नका दाना भी यहाँसे प्राप्त न हो । ऐसी हालतमें उसे झख मार कर लौट जाना पड़ेगा । सारी प्रजाने राजाकी आज्ञानुसार ऐसा ही किया । जब अभिमानी शत्रुको अयोध्यासे अन्न न मिला तब थोड़े ही दिनोंमें उसकी अकल ठिकाने पर आ गई । उसकी सेना भूखके मारे मरने लगी । आखिर जितपालको लौट जाना ही पड़ा । जब शत्रु अयोध्या का घेरा उठा चल दिया तब प्रजाने राजासे अपने-अपने धानके ले-जाने की प्रार्थना की । राजाने कह दिया कि हाँ अपना-अपना धान पहचान कर सब लोग ले जायें । कभी कर्मयोगसे ऐसा हो

जाना भी सम्भव है, पर यदि मनुष्य जन्म एक बार व्यर्थ नष्ट हो गया तो उसका पुनः मिलना अत्यन्त ही कठिन है। इसलिए इसे व्यर्थ खोना उचित नहीं। इसे तो सदा शुभ कामोंमें ही लगाये रहना चाहिए।

४. जुआका दृष्टान्त

शतद्वारपुरमें पाँचसौ सुन्दर दरवाजे हैं। उन एक-एक दरवाजोंमें जुआ खेलनेके पाँच-पाँचसौ अड्डे हैं। उन एक-एक अड्डोंमें पाँच-पाँचसौ जुआरी लोग जुआ खेलते हैं। उनमें एक चयी नामका जुआरी है; ये सब जुआरी कौड़ियाँ जीत-जीत कर अपने अपने गाँवोंमें में चले गये। चयी वहीं रहा। भग्यसे इन सब जुआरियोंका और इस चयीका फिर भी कभी मुकाबिला होना सम्भव है, पर नष्ट हुए मनुष्य-जन्मका पुण्यहीन पुरुषोंको फिर सहसा मिलना दरअसल कठिन है।

जुआका दूसरा दृष्टान्त

इसी शतद्वारपुरमें निर्लक्षण नामका एक जुआरी था। उसके इतना भारी पापकर्मका उदय था कि वह स्वप्नमें भी कभी जीत नहीं पाता था। एक दिन कर्मयोगसे वह भी खूब धन जीता। जीतकर उस धनको उसने याचकोंको बाँट दिया। वे सब धन लेकर चारों दिशाओंमें जिसे जिधर जाना था उधर ही चले गये। ये सब लोग दैवयोगसे फिर भी कभी इकट्ठे हो सकते हैं, पर गया जन्म फिर हाथ आना दुष्कर है। इसलिए जबतक मोक्ष न मिले तबतक यह मनुष्य-जन्म प्राप्त होता रहे, इसके लिए धर्मकी शरण सदा लिये रहना चाहिए।

५. रत्न-दृष्टान्त

भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ, अरहनाथ, सुभौम, महापद्म, हरिषेण, जयसेन और ब्रह्मदत्त ये बारह चक्रवर्ती, इनके मुकुटोंमें जडे हुए मणि, जिन्हें स्वर्गोंके देव ले गये हैं, और वे चौदह रत्न, नौ निधि तथा वे सब देव, ये सब कभी इकट्ठे नहीं हो सकते; इसी तरह

खोया हुआ मनुष्य जीवन पुण्यहीन पुरुष कभी प्राप्त नहीं कर सकते । यह जानकर बुद्धिवानोंको उचित है, उनका कर्त्तव्य है कि वे मनुष्य जीवन प्राप्त करनेके कारण जैनधर्मको ग्रहण करें ।

६. स्वप्न-दृष्टान्त

उज्जैनमें एक लकड़हारा रहता था । वह जंगलमेंसे लकड़ी काट कर लाता और बाजारमें बेच दिया करता था । उसीसे उसका गुजारा चलता था । एक दिन वह लकड़ीका गट्ठा सिर पर लादे आ रहा था । ऊपरसे बहुत गरमी पड़ रही थी । सो वह एक वृक्षकी छायामें सिर परका गट्ठा उतार कर वहीं सो गया । ठंडी हवा बह रही थी । सो उसे नींद आ गई । उसने एक सपना देखा कि वह सारी पृथिवीका मालिक चक्रवर्ती हो गया । हजारों नौकर-चाकर उसके सामने हाथ जोड़े खड़े हैं । जो वह आज्ञा—हुक्म करता है वह सब उसी समय बजाया जाता है । यह सब कुछ हो रहा था इतनेमे उसकी स्त्रीने आकर उसे उठा दिया । बेचारेकी सब सपनेकी सम्पत्ति आँख खोलते ही नष्ट हो गई । उसे फिर वही लकड़ी का गट्ठा सिर पर लादना पड़ा । जिस तरह वह लकड़हारा स्वप्नमें चक्रवर्ती बन गया, पर जगने पर रहा लकड़हारा ही । उसके हाथ कुछ भी धन-दौलत न लगी । ठीक इसी तरह जिसने एक बार मनुष्यजन्म प्राप्त कर व्यर्थ गँवा दिया उस पुण्यहीन मनुष्यके लिए फिर यह मनुष्य-जन्म जाग्रद्दशामें लकड़हारेका न मिलनेवाली चक्रवर्तीकी सम्पत्ति की तरह असम्भव है ।

७. चक्र-दृष्टान्त

अब चक्रदृष्टान्त कहा जाता है । बाईस मजबूत खम्भें हैं । एक-एक खम्भे पर एक-एक चक्र लगा हुआ है एक-एक चक्रमें हजार-हजार आरे हैं उन आरों में एक-एक छेद है । चक्र सब उलटे घूम रहे हैं । पर जो वीर पुरुष हैं वे ऐसी हालतमें भी उन खम्भों परकी राधाको वेध देते हैं ।

काकन्दीके राजा द्रुपदकी कुमारीका नाम द्रौपदी था । वह बड़ी सुन्दरी थी । उसके स्वयंवरमें अर्जुनने ऐसी ही राधा वेध कर द्रौपदीको ब्याहा था । सो

ठीक ही है पुण्यके उदयसे प्राणियोंको सब कुछ प्राप्त हो सकता है ।

यह सब योग कठिन होने पर भी मिल सकता है, पर यदि प्रमादसे मनुष्य जन्म एक बार नष्ट कर दिया जाय तो उसका मिलना बेशक कठिन ही नहीं, किन्तु असम्भव है । वह प्राप्त होता है पुण्यसे, इसलिए पुण्यके प्राप्त करनेका यत्न करना अत्यन्त आवश्यक है ।

८. कछुए का दृष्टान्त

सबसे बड़े स्वयंभूरमण समुद्रको एक बड़े भारी चमड़ेमें छोटा-सा छेद करे उससे ढक दीजिए । समुद्रमें घूमते हुए एक कछुएने कोई एक हजार वर्ष बाद उस चमड़ेके छोटे से छेदमेंसे सूर्यको देखा । वह छेद उससे फिर छूट गया । भाग्यसे यदि फिर कभी ऐसा ही योग मिल जाय कि वह उस छिद्र पर फिर भी आ पहुँचे और सूर्यको देख ले, पर यदि मनुष्य-जन्म इसी तरह प्रमादसे नष्ट हो गया तो सचमुच ही उसका मिलना बहुत कठिन है ।

९. युगका दृष्टान्त

दो लाख योजन चौड़े पूर्वके लवणसमुद्र (धुरा) के छेदसे गिरी हुई क्या पश्चिम समुद्रमें बहुत हुए युग (धुरा) के छेदमें समय पाकर प्रवेश कर जाना सम्भव है, पर प्रमाद या विषयभोगों द्वारा गँवाया हुआ मनुष्य जीवन पुण्यहीन पुरुषोंके लिए फिर सहसा मिलना असम्भव है । इसलिए जिन्हें दु खोंसे छूटकर मोक्ष सुख प्राप्त करना है उन्हें तबतक ऐसे पुण्यकर्म करते रहना चाहिए कि जिनसे मोक्ष होने तक बराबर मनुष्य जीवन मिलता रहे ।

१०. परमाणु दृष्टान्त

चार हाथ लम्बे चक्रवर्तीके दण्डरत्नके परमाणु बिखर कर दूसरी अवस्थाको प्राप्त कर लें और फिर वे ही परमाणु दैवयोगसे फिर कभी दण्डरत्नके रूपमें आ जाएँ तो असम्भव नहीं, पर मनुष्य पर्याय यदि एक बार दुष्कर्मों द्वारा व्यर्थ खो दिया तो इसका फिर उन अभागे जीवोंको प्राप्त हो

जाना जरूर असम्भव है। इसलिए पण्डितोंको मनुष्य पर्यायकी प्राप्तिके लिए पुण्यकर्म करना कर्त्तव्य है।

इस प्रकार सर्वश्रेष्ठ मनुष्य जीवनको अत्यन्त दुर्लभ समझ कर बुद्धिमानोंको उचित है कि वे मोक्ष सुखके लिए संसारके जीवमात्र के हित करनेवाले पवित्र जैनधर्मको ग्रहण करें।

१०१. भावानुराग-कथा

सब प्रकार सुखके देनेवाले जिनभगवान्को नमस्कार कर धर्ममें प्रेम करनेवाले नागदत्तकी कथा लिखी जाती है।

उज्जैनके राजा धर्मपाल थे। उनकी रानीका नाम धर्मश्री था। धर्मश्री धर्मात्मा और बड़ी उदार प्रकृतिकी स्त्री थी। यहाँ एक सागरदत्त नामका सेठ रहता था। इसकी स्त्रीका नाम सुभद्रा था। सुभद्राके नागदत्त नामका एक लड़का था। नागदत्त भी अपनी माताकी तरह धर्मप्रेमी था। धर्म पर उसकी अचल श्रद्धा थी। इसका ब्याह समुद्रदत्त सेठकी सुन्दर कन्या प्रियंगुश्रीके साथ बड़े ठाटबाटसे हुआ। ब्याहमें खूब दान दिया गया। पूजा उत्सव किया गया। दीन-दुखियोंकी अच्छी सहायता की गई।

प्रियंगुश्रीको इसके मामाका लड़का नागसेन चाहता था और सागरदत्तने उसका ब्याह कर दिया नागदत्तके साथ। इससे नागसेनको बड़ा ना-गवार मालूम हुआ। सो उसने बेचारे नागदत्तके साथ शत्रुता बाँध ली और उसे कष्ट देनेका मौका ढूँढने लगा।

एक दिन उपासा नागदत्त धर्मप्रेमसे जिन मन्दिर कायोत्सर्ग ध्यान कर रहा था। उसे नागसेनने देख लिया। सो इस दुष्टने अपनी शत्रुताका बदला लेनेके लिये एक षड़यन्त्र रचा। गलेमें से अपना हार निकाल कर इसे इसने नागदत्तके पाँवोंके पास रख दिया और हल्ला कर दिया कि मेरा हार चुराकर लिये जा रहा था, सो मैंने इसके पीछे दौड़कर इसे पकड़ लिया। अब ढौंग बनाकर ध्यान करने लग गया, जिससे यह पकड़ा न जाय। नागसेनका हल्ला सुनकर आसपासके बहुतसे लोग इकट्ठे हो गए और पुलिस भी आ जमा गई नागदत्त पकड़ा जाकर राजदरबारमें उपस्थित किया गया। राजाने नागदत्तकी ओरसे कोई प्रमाण न पाकर उसे मारनेका हुक्म दे दिया। नागदत्त उसी समय बध्य-भूमिमें ले जाया गया। उसका सिर काटनेके लिये तलवारका जो बार उस पर किया गया, क्या आश्चर्य कि वह बार उसे ऐसा जान पड़ा मानों किसीने उस पर फूलोंकी माला फैंकी हो। उसे जरा भी चोट न पहुँची और इसी समय आकाशसे उस पर फूलोंकी वर्षा हुई। जय जय, धन्य धन्य,

शब्दोंसे आकाश गूँज उठा। यह आश्चर्य देखकर सब लोग दंग रह गए। सच है, धर्मानुरागसे सत्पुरुषोंका, सहनशील महात्माओंका कौन उपकार नहीं करता। इस प्रकार जैनधर्मका सुखमय प्रभाव देखकर नागदत्त और धर्मपाल राजा बहुत प्रसन्न हुए। वे अब मोक्षसुखकी इच्छासे संसारकी सब माया ममताको छोड़कर जिनदीक्षा ले साधु हो गए और बहुतसे लोगोंने—जो जैन नहीं थे, जैनधर्मको ग्रहण किया।

संसारके बड़े-बड़े महापुरुषोंसे पूजे जानेवाले, जिनेन्द्र भगवान्का उपदेश किया पवित्र धर्म, स्वर्गमोक्षके सुखका कारण है इसीके द्वारा भव्यजन उत्तमसे उत्तम सुख प्राप्त करते हैं। वही पवित्र धर्म कर्मोंका नाश कर मुझे आत्मिक सच्चा सुख प्रदान करें।

---

१०२. प्रेमानुराग-कथा

जो जिनधर्मके प्रवर्त्तक है, उन जिनेन्द्र भगवान्‌को नमस्कार कर धर्मसे प्रेम करनेवाले सुमित्र सेठकी कथा लिखी जाती है।

अयोध्याके राजा सुवर्णवर्मा और उनकी रानी सुवर्णश्रीके समय अयोध्यामें सुमित्र नामके एक प्रसिद्ध सेठ हो गये हैं। सेठका जैनधर्मपर अत्यन्त प्रेम था। एक दिन सुमित्र सेठ रातके समय अपने घर हीमें कायोत्सर्ग ध्यान कर रहे थे। उनकी ध्यान-समयकी स्थिरता और भावोंकी दृढ़ता देखकर किसी एक देवने सशंकित हो उनकी परीक्षा करनी चाही कि कहीं यह सेठका कोरा ढोंग तो नहीं है। परीक्षामें उस देवने सेठकी सारी सम्पत्ति, स्त्री, बाल-बच्चे आदिको अपने अधिकारमें कर लिया। सेठके पास इस बातकी पुकार पहुँची। स्त्री, बाल-बच्चे रो-रोकर उसके पाँवोंमें जा गिरे और छुड़ाओ, छुड़ाओकी हृदय भेदनेवाली दीन प्रार्थना करने लगे। जो न होनेका था वह सब हुआ। परन्तु सेठजीने अपने ध्यानको अधूरा नहीं छोड़ा, वे वैसे ही निश्चल बने रहे। उनकी यह अलौकिक स्थिरता देखकर उस देवको बड़ी प्रसन्नता हुई। उसने सेठकी शतमुखसे भूरी-भूरी प्रशंसा की। अन्तमें अपने निज स्वरूपमें आ और सेठको एक साँकरी नामकरी आकाशगामिनी विद्या भेंट कर आप स्वर्ग चला गया। सेठके इस प्रभावको देखकर बहुतेरे भाईयोंने जैनधर्मको ग्रहण किया, कितनोंने मुनिव्रत, कितनोंने श्रावकव्रत और कितनोंने केवल सम्यग्दर्शन ही लिया।

जिन भगवान्‌के चरण-कमल परम सुखके देनेवाले हैं और ससारसमुद्रसे पार करनेवाले हैं, इसलिये भव्यजनोंको उचित है कि वे सुख प्राप्तिके लिये उनकी पूजा करें, स्तुति करें, ध्यान करें, स्मरण करें।

---

१०३. जिनाभिषेकसे प्रेम करनेवालेकी कथा

इन्द्रादिकों द्वारा जिनके पाँव पूजे जाते हैं, ऐसे जिन भगवान्को नमस्कार कर जिनाभिषेकसे अनुराग करनेवाले जिनदत्त और वसुमित्रकी कथा लिखी जाती है।

उज्जैनके राजा सागरदत्तके समय उनकी राजधानीमें जिनदत्त और वसुमित्र नामके दो प्रसिद्ध और बड़े गुणवान् सेठ हो गये है। जिनधर्म और जिनाभिषेक पर उनका बड़ा ही अनुराग था। ऐसा कोई दिन उनका खाली न जाता था जिस दिन वे भगवान्का अभिषेक न करते हों, पूजा प्रभावना न करते हों, दान-व्रत न करते हों।

एक दिन ये दोनों सेठ व्यापारके लिये उज्जैनसे उत्तरकी ओर रवाना हुए। मंजिल दर मंजिल चलते हुये एक ऐसी घनी अटवीमें पहुँच गये, जो दोनों बाजू आकाशसे बातें करनेवाले अवसीर और माला पर्वत नामके पर्वतोंसे घिरी थी और जिसमें डाकू लोगोंका अड्डा था। डाकू लोग इनका सब माल असबाब छीनकर हवा हो गये। अब ये दोनो उस अटवी मैं इधर-उधर घूमने लगे। इसलिये कि इन्हें उससे बाहर होनेका रास्ता मिल जाय। पर इनका सब प्रयत्न निष्फल गया। न तो ये स्वयं रास्तेका पता लगा सके और न कोई इन्हें रास्ता बतानेवाला ही मिला। अपने अटवी केबाहर होनेका कोई उपाय न देखकर अन्तमें इन जिनपूजा औसर जिनाभिषेकसे अनुराग करनेवाले महानुभावोंने संन्यास ले लिया और जिन भगवान्का ये स्मरण-चिन्तन करने लगे। सच है, सत्पुरुष सुख और दु:खमें सदा समान भाव रखते हैं, विचारशील रहते हैं।

एक अभागा भूला भटका सोमशर्मा नामका ब्राह्मण अटवीमें आ फँसा। घूमता-फिरता वह इन्हींके पास आ गया। अपनी-सी इस बेचारे ब्राह्मणकी दशा देखकर ये बड़े दिलगीर हुए। सोमशर्मासे इन्होंने सब हाल कहा और यह भी कहा—यहाँसे निकलनेका कोई मार्ग प्रयत्न करने पर भी जब हमें न मिला तो हमने अन्तमें धर्मका शरण लिया इसलिये कि यहाँ हमारी मरने सिवा कोई गति ही नहीं है और जब हमें मृत्युके सामने होना ही है तब कायरता और बुरे भावोंसे क्यों उसका सामना करना, जिससे उसीका ऐसे

समयमें आश्रय लेना परम हितकारी है । हम तुम्हें भी सलाह देते हैं कि तुम भी सुगतिकी प्राप्तिके लिये धर्मका आश्रय ग्रहण करो । इसके बाद उन्होंने क्षेमशर्माको धर्मका सामान्य स्वरूप समझाया—देखो, जो अठारह दोषोंसे रहित और सबके देखनेवाले सर्वज्ञ हैं, वे देव कहाते हैं और ऐसे निर्दोष भगवान् द्वारा बताये दयामय मार्गको धर्म कहते हैं । धर्मका वैसे सामान्य लक्षण है—जो दु:खोंसे छुड़ाकर सुख प्राप्त करावे ऐसे धर्मको आचार्योंने दस भागोंमें बाँटा है । अर्थात् सुख प्राप्त करनेके दस उपाय है । वे ये हैं—उत्तम क्षमा, मार्दव—हृदयका कोमल होना, आर्जव-हृदयका सरल होना, सच बोलना, शौच-निर्लोभी या संतोषी होना, संयम-इन्द्रियोंको वश में करना, तप-व्रत उपवासादि करना, त्याग-पुण्यसे प्राप्त हुए धनको सुकृतके काम जैसे दान, परोपकार आदिमें लगाना, आकिंचन-परिग्रह अर्थात् धन-धान्य, चाँदी-सोना, दास-दासी आदि दस प्रकारके परिग्रहकी लालसा कम करके आत्माको शान्तिके मार्ग पर ले जाना और ब्रह्मचर्यका पालना ।

गुरु वे कहलाते हैं जो माया,ममतासे रहित हों, विषयोंकी वासना जिन्हें छू तक न गई हो, जो पक्के ब्रह्मचारी हों, तपस्वी हों और ससारके दु:खी जीवोंको हितका रास्ता बतला कर उन्हें सुख प्राप्त करानेवाले हों । इन तीनों पर अर्थात् देव, धर्म, गुरु पर विश्वास करनेको सम्यग्दर्शन कहते हैं । यह सम्यग्दर्शन सुख-स्थान पर पहुँचनेकी सबसे पहली सीढ़ी है । इसलिये तुम इसे ग्रहण करो । इस विश्वासको जैन शासन या जैनधर्म भी कहते हैं । जैनधर्ममें जीवको, जिसे कि आत्मा भी कहते हैं, अनादि माना है । न केवल माना ही है, किन्तु वह अनादि ही है । नास्तिकोंकी तरह वह पचभूत-पृथ्वी, जल अग्नि, वायु और आकाश इनसे बना हुआ नहीं है । क्योंकि ये सब पदार्थ जड़ हैं । ये देख जान नहीं सकते । और जीवका देखना जानना ही खास गुण है । इसी गुणसे उसका अस्तित्व सिद्ध होता है । जीवको जैनधर्म दो भागोंमें बॉट देता है । एक भव्य—अर्थात् ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका, जिन्होंने कि आत्माके वास्तविक स्वरूपको अनादिसे ढॉक रक्खा है, नाश कर मोक्ष जानेवाला और दूसरा अभव्य—जिसमें कर्मोंके नाश करनेकी शक्ति न हो । इनमें कर्मयुक्त जीवको ससारी कहने हैं और कर्म रहितको मुक्त । जीवके

सिवा संसारमें एक और भी द्रव्य है। उसे अजीव या पुद्‌गल कहते हैं। इसमें जानने देखनेकी शक्ति नहीं होती, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है। अजीवको जैनधर्म पाँच भागोंमें बाँटता है, जैसे पुद्‌गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। इन पाँचोंकी दो श्रेणियाँ की गई है। एक मूर्त्तिक और दूसरी अमूर्त्तिक। मूर्त्तिक उसे कहते हैं जो छुई जा सके, जिसमें कुछ न कुछ स्वाद हो, गन्ध और वर्ण रूप-रंग हो। अर्थात् जिसमें स्पर्श, रस, गंध और वर्ण ये बातें पाई जाँय वह मूर्त्तिक है और जिसमें ये न हों वह अमूर्त्तिक है। उक्त पाँच द्रव्योंमें सिर्फ पुद्‌गल तो मूर्त्तिक है अर्थात् इसमें उक्त चारों बातें सदासे है और रहेंगी—कभी उससे जुदा न होंगी। इसके सिवा धर्म, अधर्म, आकाश और काल ये अमूर्त्तिक हैं। इन सब विषयोंका विशेष खुलासा अन्य जैन ग्रन्थोंमें किया है। प्रकरणवश तुम्हें यह सामान्य स्वरूप कहा। विश्वास है अपने हितके लिये इसे ग्रहण करनेका यत्न करोगे।

सोमशर्माको यह उपदेश बहुत पसन्द पड़ा। उसने मिथ्यात्वको छोड़कर सम्यक्त्वको स्वीकार कर लिया। इसके बाद जिनदत्त वसुमित्रकी तरह वह भी सन्यास ले भगवान्‌का ध्यान करने लगा। सोमशर्माको भूख-प्यास, डाँस-मच्छर आदिकी बहुत बाधा सहनी पड़ी। उसे उसने बड़ी धीरताके साथ सहा। अन्तमें समाधिसे मृत्यु प्राप्त कर वह सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ। वहाँसे श्रेणिक महाराजका अभयकुमार नामका पुत्र हुआ। अभयकुमार बड़ा ही धीर-वीर और पराक्रमी था, परोपकारी था। अन्तमें वह कर्मोंका नाश कर मोक्ष गया।

सोमशर्मा मृत्युके कुछ ही दिनों बाद जिनदत्त और वसुमित्रको भी समाधिसे मृत्यु हुई। वे दोनों भी इसी सौधर्म स्वर्गमें, जहाँ कि सोमशर्मा देव हुआ था, देव हुए।

संसारका उपकार करनेवाले और पुण्यके कारण जिनके उपदेश किये धर्मको कष्ट समयमें भी धारण कर भव्यजन उस कठिनसे कठिन सुखको, जिसके कि प्राप्त करनेकी उन्हें स्वप्नमें भी आशा नहीं होती, प्राप्त कर लेते हैं, वे सर्वज्ञ भगवान् मुझे वह निर्मला सुख दें, जिस सुखकी इन्द्र, चक्री और विद्याधर राजे पूजा करते हैं।

---

१०४. धर्मानुराग-कथा

जो निर्मल केवलज्ञान द्वारा लोक और अलोकके जानने देखनेवाले हैं, सर्वज्ञ हैं, उन जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर धर्मसे अनुराग करनेवाले राजकुमार लकुचकी कथा लिखी जाती है।

उज्जैनके राजा धनवर्मा और उनकी रानी धनश्री लकुच नामका एक पुत्र था। लकुच बड़ा अभिमानी था। पर साथमें वीर भी था। उसे लोग मेघकी उपमा देते थे। इसलिए कि वह शत्रुओंकी मान रूपी अग्निको बुझा देता था, शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना उसके बायें हाथका खेल था।

काल-मेघ नामके म्लेच्छ राजाने एक बार उज्जैन पर चढाई की थी। अवन्ति देशकी प्रजाको तब जन-धनकी बहुत हानि उठानी पड़ी थी। लकुचने इसका बदला चुकानेके लिए काममेघके देश पर भी चढाई कर दी। दोनों ओरसे घमासान युद्ध होने पर विजयलक्ष्मी लकुचकी गोदमें आकर लेटी। लकुचने तब कालमेघको बाँध लाकर पिताके सामने रख दिया। धनवर्मा अपने पुत्रकी इस वीरताको देखकर बड़े खुश हुए। इस खुशीमें धनवर्माने लकुचको कुछ वर देनेकी इच्छा जाहिर की। पर उसकी प्रार्थनासे वरको उपयोगमें लानेका भार उन्होंने उसीकी इच्छा पर छोड़ दिया। अपनी इच्छाके माफिक करनेकी पिताकी आज्ञा पा लकुचकी आँखे फिर गई। उसने अपनी इच्छाका दुरुपयोग करना शुरू किया। व्यभिचारकी ओर उसकी दृष्टि गई। तब अच्छे-अच्छे घरानेकी सुशील स्त्रियाँ उसकी शिकार बनने लगीं। उनका धर्म भ्रष्ट किया जाने लगा। अनेक सतियोंने इस पापीसे अपने धर्मकी रक्षाके लिए आत्महत्याएँ तक कर डालीं। प्रजाके लोग तंग आ गये। वे महाराजसे राजकुमारकी शिकायत तक करने नहीं पाते। कारण राजकुमारके जासूस उज्जैनके कोने-कोनेमें फैल रहे थे, इसलिए जिसने कुछ राजकुमारके विरुद्ध जबान हिलाई या विचार भी किया कि वह बेचारा फौरन ही मौतके मुँहमें फैंक दिया जाता था।

यहाँ एक पुंगल नामका सेठ रहता था। इसकी स्त्रीका नाम नागदत्ता था। नागदत्ता बड़ी खूबसूरत थी। एक दिन पापी लकुचकी इस पर आँखें

चली गई । बस, फिर क्या देर थी ? उसने उसे प्राप्त कर अपनी नीच मनोवृत्तिकी तृप्ति की । पुंगल उसकी इस नीचतासे सिरसे पाँव तक जल उठा । क्रोधकी आग उसके रोम-रोममें फैल गई । वह राजकुमारके दबदबेसे कुछ करने-धरनेको लाचार था । पर उस दिनकी बाट वह बड़ी आशासे जोह रहा था, जिस दिन कि वह लकुचसे उसके कर्मोंका भरपूर बदला चुका कर अपनी छाती ठण्डी करे ।

एक दिन लकुच वन क्रीड़ाके लिए गया हुआ था । भाग्यसे वहाँ उसे मुनिराजके दर्शन हो गये । उसने उनसे धर्मका उपदेश सुना । उपदेशका प्रभाव उस पर खूब पड़ा । इसलिए वह वहीं उनसे दीक्षा ले मुनि हो गया । उधर पुंगल ऐसे मौके की आशा लगाये बैठा ही था, सो जैसे ही उसे लकुचका मुनि होना जान पड़ा वह लोहेके बड़े-बड़े तीखे कीलोंको लेकर लकुच मुनिके ध्यान करनेकी जगह पर आया । इस समय लकुच मुनि ध्यान में थे । पुंगल तब उन कीलोंको मुनिके शरीरमें ठोक कर चलता बना । लकुच मुनिने इस दु सह उपसर्गको बड़ी शान्ति, स्थिरता और धर्मानुरागसे सह कर स्वर्ग लोक प्राप्त किया । सच है, महात्माओंका चरित्र विचित्र ही हुआ करता है । वह अपने जीवनकी गतिको मिनट भरमें कुछको कुछ बदल डालते हैं ।

वे लकुच मुनि जयलाभ करें, कर्मोंको जीतें, जिन्होंने असह्य कष्ट सहकर जिनेन्द्र भगवान रूपी चन्द्रमाकी उपदेश रूपी अमृतमयी किरणोंसे स्वर्गका उत्तम सुख प्राप्त किया, गुणरूपी रत्नोंके जो पर्वत हुए और ज्ञानके गहरे समुद्र कहलाये ।

---

१०५. सम्यक्दर्शन पर दृढ़ रहनेवालेकी कथा

सब प्रकारके दोषों रहित जिन भगवानको नमस्कार कर सम्यक् दर्शनको खूब दृढ़ताके साथ पालन करनेवाले जिनदास सेठकी पवित्र कथा लिखी जाती है ।

प्राचीन कालसे प्रसिद्ध पाटालिपुत्र (पटना) में जिनदत्त नामका एक प्रसिद्ध और जिनभक्त सेठ हो चुका है । जिनदत्त सेठकी स्त्रीकानाम जिनदासी था । जिनदास, जिसकी कि यह कथा है, इसीका पुत्र था । अपनी माताके अनुसार जिनदास भी ईश्वर प्रेमी, हृदयी और अनेक गुणोंका धारक था ।

एक बार जिनदास सुवर्ण द्वीपसे धन कमाकर अपने नगरकी ओर आ रहा था । किसी काल नामके देवकी जिनदासके साथ कोई पूर्व जन्मकी शत्रुता होगी इसलिए वह देव इसे मारना चाहता होगा । यही कारण था कि उसने कोई सौ योजन चौड़े जहाज पर बैठे-बैठे ही जिनदाससे कहा—जिनदास, यदि तू यह कह जिनेन्द्र भगवान कोई चीज नहीं, जैनधर्म कोई चीज नहीं, तो तुझे मैं जीता छोड़ सकता हूँ, नहीं तो मार डालूँगा । उस देवका वह डराना सुन जिनदास वगैरहने हाथ जोड़कर श्रीमहावीर भगवानको बड़ी भक्तिसे नमस्कार किया और निडर होकर वे उससे बोले—पापी, यह हम कभी नहीं कह सकते कि जिनभगवान और उनका धर्म कोई चीज नहीं, बल्कि हम यह दृढ़ताके साथ कहते हैं कि केवलज्ञान द्वारा सूर्यसे अधिक तेजस्वी जिनेन्द्र भगवान और संसार द्वारा पूजा जानेवाला उनका मत सबसे श्रेष्ठ है । उनकी समान्ता करनेवाला कोई देव और कोई धर्म ससारमें है ही नहीं । इतना कह कर ही जिनदासने सबके समाने ब्रह्मदत्त चक्रवर्तीकी कथा, जो कि पहले पृष्ठ संख्या . ... पर लिखी जा चुकी है, कह सुनाई । उस कथाको सुनकर सबका विश्वास और भी दृढ़ हो गया ।

इन धर्मात्माओं पर इस विपत्तिके आनेसे उत्तरकुरुमें रहनेवाले अनावृत नामके यक्षका आसन कँपा । उसने उसी समय आकर क्रोधसे कालदेवके सिरपर चक्रकी बडी जोरकी मार जमाई और उसे उठाकर बडवानलमें डाल दिया ।

जहाजके लोगोंकी इस अचल भक्तिसे देवी बड़ी प्रसन्न हुई । उसने आकर इन धर्मात्माओंका बड़ा आदर-सत्कार दिया और इनके लिए भक्तिसे अर्घ चढ़ाया । सच है, जो भव्यजन सम्यकदर्शनका पालन करते हैं, संसारमें उनका आदर, मान कौन नहीं करता । इसके बाद जिनदास वगैरह सब लोग कुशलतासे अपने घर आ गये । भक्तिसे उत्पन्न हुए पुण्य इनकी सहायता की । एक दिन मौका पाकर जिनदासने अवधिज्ञानी मुनिसे कालदेवने ऐसा क्यों किया, इस बाबत खुलासा पूछा । मुनिराजने इस बैरका सब कारण जिनदाससे कहा । जिनदासको सुनकर सन्तोष हुआ ।

जो बुद्धिमान् हैं, उन्हें उचित है या उनका कर्त्तव्य है कि वे परम सुखके लिए संसारका हित करनेवाले और मोक्ष के कारण पवित्र सम्यग्दर्शन को ग्रहण करें । इसे छोड़कर उन्हें और बातोंके लिए कष्ट उठाना उचित नहीं, कारण वे मोक्ष के कारण नहीं है ।

१०६. सम्यक्त्वको न छोड़नेवालेकी कथा

जिन्हें स्वर्गके देव नमस्कार करते हैं, उन जिनेन्द्र भगवानको नमस्कार कर सम्यक्त्वको न छोड़नेवाली जिनमतीकी कथा लिखी जाती है।

लाटदेशके सुप्रसिद्ध गलगोद्रह नामके शहरमें जिनदत्त नामका एक सेठ हो चुका है। उसकी स्त्रीका नाम जिनदत्ता था। इसके जिनमती नामकी एक लड़की थी। जिनमती बहुत सुन्दरी थी। उसकी भुवन-मोहिनी सुन्दरता देखकर स्वर्गकी अप्सराएँ भी लजा जाती थी। पुण्यसे सुन्दरता प्राप्त होती ही है।

यहीं पर एक दूसरा और सेठ रहता था। इसका नाम नागदत्त था। नागदत्तकी स्त्री नागदत्ताके रुद्रदत्त नामका एक लड़का था। नागदत्तने बहुतेरा चाहा कि जिनदत्त जिनमतीका ब्याह उसके पुत्र रुद्रदत्तसे कर दे। पर उसको विधर्मी होनेसे जिनदत्तनेउसे अपनी पुत्री न ब्याही। जिनदत्तका यह हठ नागदत्त को पसन्द न आया। उसने तब एक दूसरी ही युक्ति की। वह यह कि नागदत्त और रुद्रदत्त समाधिगुप्त मुनिसे कुछ व्रतनियम लेकर श्रावक बन गये और श्रावक सरीखी सब क्रियाएँ करने लगे। जिनदत्तको इससे बडी खुशी हुई। और उसे इस बात पर पूरा-पूरा विश्वास हो गया कि वे सचमुच ही जैनी हो गये हैं तब इसने बड़ी खुशीके साथ जिनमतीका ब्याह रुद्रदत्तसे कर दिया। जहाँ ब्याह हुआ कि इन दोनों पिता-पुत्रोंने जैनधर्म छोड़कर पीछा अपना धर्म ग्रहण कर लिया।

रुद्रदत्त अब जिनमतीसे रोज-रोज आग्रहके साथ कहने लगा कि प्रिये, तुम भी अब क्यों न मेरा ही धर्म ग्रहण कर लेती हो। वह बड़ा उत्तम धर्म है। जिनमतीकी जिनधर्म पर गाढ श्रद्धा थी। वह जिनेन्द्र भगवानकी सच्ची सेविका थी। ऐसी हालतमें उसे जिनधर्मके सिवा अन्य धर्म कैसे रुच सकता था। उसने तब अपने विचार बड़ी स्वतन्त्रताके साथ अपने स्वामी पर प्रगट किये। वह बोली-प्राणनाथ, आपका जैसा विश्वास हो, उस पर मुझे कुछ कहना-सुनना नहीं। पर मैं अपने विश्वासके अनुसार यह कहूँगी कि संसारमें जैनधर्म ही एक ऐसा धर्म है जो सर्वोच्च होनेका दावा कर सकता है।

इसलिए कि जीवमात्रका उपकार करनेकी उसमें योग्यता है और बड़े-बड़े राजे-महाराजे, स्वर्गके देव, विद्याधर और चक्रवर्ती आदि उसे पूजते-मानते हैं फिर मैं ऐसी कोई बेजा बात उसमें नहीं पाती कि जिससे मुझे उसके छोड़नेके लिए बाध्य होना पड़े। बल्कि मैं आपको भी सलाह दूँगी कि आप इसी सच्चे और जीव मात्रका हित करनेवाले जैनधर्मको ग्रहण कर लें तो बड़ा अच्छा हो। इसी प्रकार इन. दोनों पति-पत्नी की परस्पर बात-चीत हुआ करती थी। अपने-अपने धर्मकी दोनों ही तारीफ किया करते थे। रुद्रदत्त जरा अधिक हठी था। इसलिए कभी-कभी जिनमती पर वह जरा गुस्सा भी हो जाता था। पर जिनमती बुद्धिमती और चतुर थी, इसलिए वह उसकी नाराजगी पर कभी अप्रसन्नता जाहिर न करती। बल्कि उसकी नाराजीको हँसीका रूप दे झटसे रुद्रदत्तको शान्त कर देती थी। जो हो, पर ये रोज-रोजकी विवाद भरी बातें सुखका कारण नहीं होतीं।

इस तरह बहुत समय बीत गया। एक दिन ऐसा मौका आया कि दुष्ट भीलोंने शहरके किसी हिस्सेमें आग लगा दी। चारों ओर आग बुझाने के लिए दौड़ा-दौड़ पड़ गई। उस भयंकर आगको देखकर लोगोंको अपनी जानका भी सन्देह होने लगा। इस समयको योग्य अवसर देख जिनमतीने अपने स्वामी रुद्रदत्त से कहा—प्राणनाथ, मेरी बात सुनिए। रोज-रोजका जो अपने में वाद-विवाद होता है, मैं उसे अच्छा नहीं समझती। मेरी इच्छा है कि यह झगड़ा रफा हो जाय।

इसके लिए मेरा यह कहना है कि आज अपने शहरमें आग लगी है उस आग को जिसका देव बुझा दे, समझना चाहिए कि वही देव सच्चा है और फिर उसीको हमें परस्परमें स्वीकार कर लेना चाहिए। रुद्रदत्तने जिनमतीकी यह बात मान ली। उसने तब कुछ लोगोंको इस बातका गवाह कर महादेव, ब्रह्मा, विष्णु आदि देवोंके लिए अर्घ दिया, बड़ी भक्तिसे उनकी पूजा-स्तुति कर उसने अग्निशान्तिके लिए प्रार्थना की। पर उसकी इस प्रार्थनाका कुछ उपयोग न हुआ। अग्नि जिस भयंकरताके साथ जल रही थी। वह उसी तरह जलती रही। सच है, ऐसे देवोंसे कभी उपद्रवोंकी शान्ति नहीं होती, जिनका हृदय दुष्ट है, जो मिथ्यात्वी हैं।

अब धर्मवत्सुला जिनमतीकी बारी आई । उसने बड़ी भक्तिसे पंच परमेष्ठियोंके चरण-कमलोंको अपने हृदयमें विराजमान कर उनके लिये अर्घ चढ़ाया । इसके बाद वह अपने पति, पुत्र आदि कुटुम्ब वर्गको अपने पास बैठाकर आप कायोत्सर्ग ध्यान द्वारा पंच-नमस्कार मन्त्रका चिन्तन करने लगी । इसकी इस अचल श्रद्धा और भक्तिको देखकर शासन देवता बड़ी प्रसन्न हुई । उसने तब उसी समय आकर उस भयंकर आगको देखते-देखते बुझा दिया । इस अतिशयको देखकर रुद्रदत्त वगैरह बड़े चकित हुए । उन्हें विश्वास हुआ कि जैनधर्म ही सच्चा धर्म है । उन्होंने फिर सच्चे मनसे जैनधर्मकी दीक्षा ले श्रावकोंके व्रत ग्रहण किये । जैनधर्मकी खूब प्रभावना हुई । सच है, संसार श्रेष्ठ जैनधर्मकी महिमाको कौन कह सकता है जो कि स्वर्ग-मोक्षका देनेवाला है । जिस प्रकार जिनमतीने अपने सम्यक्त्वकी रक्षा की उसी तरह अन्य भव्यजनोंको भी सुख प्राप्तिके लिये पवित्र सम्यग्दर्शनकी सदा सुरक्षा करते रहना चाहिये ।

जिनेन्द्र भगवानके चरणोंमें जिनमतीकी अचल भक्ति, उसके हृदयकी पवित्रता और उसका दृढ़ विश्वास देखकर स्वर्गके देवोंने दिव्य वस्त्राभूषणोंसे उसका खूब आदर-मान किया । और सच भी है, सच्चे जिनभक्त सम्यग्दृष्टिकी कौन पूजा नहीं करते ।

---

१०७. सम्यग्दर्शनके प्रभावकी कथा

जो सारे संसारके देवाधिदेव है और स्वर्गके देव जिनकी भक्ति से पूजा किया करते हैं उन जिन भगवानको प्रणाम कर महारानी चेलिनी और श्रेणिकके द्वारा होनेवाले सम्यक्त्वके प्रभावकी कथा लिखी जाती है ।

उपश्रेणिक मगधके राजा थे राजगृह मगधकी तब खास राजधानी थी । उपश्रेणिककी रानीका नाम सुप्रभा था । श्रेणिक इसीके पुत्र थे । श्रेणिक जैसे सुन्दर थे, जैसे ही उनमें अनेक गुण भी थे । वे बुद्धिमान् थे, बड़े गम्भीर प्रकृतिके थे, शूरवीर थे, दानी थे और अत्यन्त तेजस्वी थे ।

मगध राज्यकी सीमासे लगते ही एक नागधर्म नामके राजाका राज्य था । नागदत्तकी और उपश्रेणिककी पुरानी शत्रुता चली आती थी । नागदत्त उसका बदला लेनेका मौका तो सदा ही देखता रहता था, पर इस समय उसका उपश्रेणिकके साथ कोई भारी मनमुटाव न था । वह कपटसे उपश्रेणिकका मित्र बना रहता था । यही कारण था कि उसने एक बार उपश्रेणिकके लिये एक दुष्ट घोडा भेंटमें भेजा । घोड़ा इतना दुष्ट था कि वैसे तो वह चलता ही न था और उसे जरा ही ऐड़ लगाई या लगाम खींची कि बस यह फिर हवासे बातें करने लगता था । दुष्टोंकी ऐसी गति ही होती है, इसमें कोई आश्चर्य नहीं । उपश्रेणिक एक दिन इसी घोडे पर सवार ही हवा खोरी के लिये निकले । इन्होंने बैठते ही जैसे उसकी लगाम तानी कि वह हवा हो गया । बड़ी देर बाद वह एक अटवीमें जाकर ठहरा । उस अटवीका मालिक एक यमदण्ड नामका भील था, जो देखनेमें सचमुच ही यमसा भयानक था । इसके तिलकावती नामकी एक लड़की थी । तिलकावती बड़ी सुन्दरी थी । उसे देख यह कहना अनुचित न होगा कि कोयलेकी खानमें हीरा निकला । कहाँ काला भुसंड यमदण्ड और कहाँ स्वर्गकी अप्सराओंको लजानेवानी इसकी लड़की चन्द्रवदनी तिलकावती । अस्तु, इस भुवन-सुन्दर रूपराशिको देखकर उपश्रेणिक उसपर मोहित हो गये । उन्होंने तिलकावतीके लिए यमदण्डसे मंगनी की । उत्तरमें यमदण्डने कहा—राज-राजेश्वर, इसमें कोई सन्देह नहीं कि मैं बड़ा भाग्यवान् हूँ । जब कि एक पृथिवीके सम्राट मेरे जमाई बनते हैं । और इसके लिये मुझे

बेहद खुशी है । मैं अपनी पुत्रीका आपके साथ ब्याह करूँ, इसके पहले आपको एक शर्त करनी होगी ओर वह कि आप राज्य तिलकावतीसे होनेवाली सन्तानको दें । उपश्रेणिकने यमदण्डकी इस बातको स्वीकार कर लिया । यमदण्डने भी तब अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसका ब्याह उपश्रेणिकसे कर दिया । उपश्रेणिक फिर तिलकावतीको साथ ले राजगृह आ गये ।

कुछ समय सुखपूर्वक बीतने पर तिलकावतीके एक पुत्र हुआ । उसका नाम रक्खा गया चिलातपुत्र । एक दिन उपश्रेणिकने विचार कर, कि मेरे इन पुत्रोंमें राजयोग किसको है, एक निमित्तज्ञानीको बुलाया और उससे पूछा—पंडितजी, अपना निमित्तज्ञान देखकर बतलाइए कि मेरे इतने पुत्रोंमें राज्य-सुख कौन भोग सकेगा ? निमित्तज्ञानीने कहा—महाराज, जो सिहासन पर बैठा हुआ नगाड़ा बजाता रहे और दूर हीसे कुत्तोंको खीर खिलाता हुआ आप भी खाता रहे और आग लगने पर सिंहासन, छत्र, चवँर आदि राज्य चिन्होको निकाल ले भागे, वह राज्य-लक्ष्मीका सुख भोग करेगा । इसमें आप किसी तरहका सन्देह न समझें । उपश्रेणिकने एक दिन इस बातकी परीक्षा करनेके लिये अपने सब पुत्रोंको खीर खानेके लिये बैठाया । उनके पास ही सिहासन और एक नगाड़ा भी रखवा दिया । पर यह किसीको पता न पड़ने दिया कि ऐसा क्यों किया गया । सब कुमार भोजन करनेको बैठे और खाना उन्होंने आरम्भ किया, कि इतनेमें एक ओरसे सैकड़ों कुत्तोंका झुण्डका झुण्ड उन पर आ टूटा । तब वे सब डरके मारे उठ उठकर भागने लगे । श्रेणिक उन कुत्तोंसे न डरा, वह जल्दीसे उठकर खीरकी पत्तलोंकों एक ऊँचे स्थान पर धरने लगा । थोड़ी ही देरमें उसने बहुत-सी पत्तलें इकट्ठी कर ली । इसके बाद वह स्वयं उस ऊँचे स्थान पर रखे हुये सिहासन पर बैठकर नगाड़ा बजाने लगा, जिससे कुत्ते उसके पास न आ पावें और इकट्ठी की हुई पत्तलोंमेंसे एक-एक पत्तल उठा-उठा कर दूर-दूर फैंकता गया । इस प्रकार अपनी बुद्धिसे व्यवस्था कर उसने बड़ी निर्भयताके साथ भोजन किया । इसी प्रकार आग लगने पर श्रेणिकने सिहासन, छत्र, चँवर आदि राज्य चिन्होंकी रक्षा कर ली ।

उपश्रेणिकको तब निश्चय हो गया कि इन सब पुत्रोंमें श्रेणिक ही एक ऐसा भाग्यशाली है जो मेरे राज्यको अच्छी तरह चलायेगा । उपश्रेणिकने तब

इसकी रक्षाके लिये उसे यहाँसे कहीं भेज देना उचित समझा । उन्हें इस बातका खटका था कि मैं राज्यका राज्य मालिक तिलकावतीके पुत्रको बना चुका हूँ, और ऐसी दशामें श्रेणिक यहाँ रहा तो कोई असंभव नहीं कि इसकी तेजस्विता, इसकी बुद्धिमानी, इसकी कार्यक्षमताको देखकर किसीको डाह उपज जाय और उस हालतमें इसका कुछ अभीष्ट हो जाय । इसलिये जब तक यह अच्छा हुशियार न हो जाये तब तक इसका कहीं बाहर रहना ही उत्तम है फिर यदि इसमें बल होगा तो यह स्वयं राज्यको हस्तगत कर सकेगा । इसके लिये उपश्रेणिकने श्रेणिकके सिर पर यह अपराध मढ़ा कि इसने कुत्तोंका झूँठा खाया है, इसलिये अब यह राजघरानेमें रहने योग्य नहीं रहा । मैं इसे आज्ञा करता हूँ कि यह मेरे राज्यसे निकल जाये । सच है, राजे लोग बड़े विचारके साथ काम करते हैं । निरपराध श्रेणिक पिताकी आज्ञा पा उसी समय राजगृहसे निकल गया । फिर एक मिनटके लिये भी वह वहाँ न ठहरा ।

श्रेणिक यहाँसे चलकर कोई दुपहरके समय नन्द नामक गाँवमें पहुँचा । यहाँके लोगोंको श्रेणिक के निकाले जानेका हाल मालूम हो गया था, इसलिये राजद्रोहके भयसे उन्होंने श्रेणिकको अपने गाँवमें न रहने दिया । श्रेणिकने तब लाचार हो आगेका रास्ता लिया । रास्तेमें इसे एक संन्यासियोंका आश्रम मिला । इसने कुछ दिनों यही अपना डेरा जमा दिया । मठमें यह रहता और सन्यासियोंका उपदेश सुनता । मठका प्रधान संन्यासी बड़ा विद्वान् था । श्रेणिक पर उसका बहुत असर पड़ा । उसने तब वैष्णव धर्म स्वीकार कर लिया । श्रेणिक और कुछ दिनों तक यहाँ ठहरा । इसके बाद वह यहाँसे रवाना होकर दक्षिण दिशाकी ओर बढा ।

इस समय दक्षिणकी राजधानी काँचीके राजा वसुपाल थे । उनकी रानीका नाम वसुमती था । इनके वसुमित्रा नामकी एक सुन्दर और गुणवती पुत्री थी । यहाँ एक सोमशर्मा ब्राह्मण रहता था, सोमशर्माकी स्त्रीका नाम सोमश्री था । इसके भी एक पुत्री थी । इसका नाम अभयमती था । अभयमती बड़ी बुद्धिमती थी ।

एक बार सोमशर्मा तीर्थयात्रा करके लौट रहा था । रास्ते में उसे श्रेणिकने देखा । कुछ मेल-मुलाकात और बोल चाल हुए बाद जब ये दोनों चलनेको तैयार हुए तब श्रेणिकने सोमशर्मासे कहा—मामाजी, आप भी बड़ी

दूरसे आते हैं और मैं भी बड़ी दूरसे चला आ रहा हूँ, इसलिये हम दोनों ही थक चुके हैं । अच्छा हो यदि आप मुझे अपने कन्धे पर बैठा लें और आप मेरे कन्धे पर बैठकर चलें तो । श्रेणिककी यह बे-सिर पैरकी बात सुनकर सोमशर्मा बड़ा चकित हुआ । उसने समझा कि यह पागल हो गया जान पड़ता है । उसने तब श्रेणिककी बातका कुछ जवाब न दिया । थोड़ी दूर चुपचाप आगे बढ़ने पर श्रेणिकने दो गाँवोंको देखा । उसने तब जो छोटा गाँव था उसे तो बड़ा बताया और जो बड़ा था उसे छोटा बताया । रास्तेमें श्रेणिक जहाँ सिर पर कड़ी धूप पड़ती वहाँ तो छत्री उतार लेता और जहाँ वृक्षोंकी ठंडी छाया आती वहाँ तो छत्री चढ़ा लेता । इसी तरह जहाँ कोई नदी-नाला पड़ता तब तो वह जूतियोंको पाँवोंमें पहर लेता और रास्तेमें उन्हें हाथमें लेकर नंगे पैरों चलता । आगे चलकर उसने एक स्त्रीको पति द्वारा मार खाती देखकर सोमशर्मासे कहा—क्यों मामाजी, यह जो स्त्री पिट रही है वह बँधी है या खुली ? आगे एक मरे पुरुषको देखकर उसने पूछा कि यह जीता है या मर गया ? थोडी दूर चलकर इने एक एक धान के पके हुये खेतको देखकर कहा—इसे इसके मालिकोंने खा लिया है । या वे अब खायेंगे ? इसी तरह सारे रास्तेमें एकसे एक असंगत और बे-मतलबके प्रश्न सुनकर बेचारा सोमशर्मा ऊब गया । राम-राम करते वह घर पर आया । श्रेणिकको वह शहर बाहर ही एक जगह बैठाकर यह कह आया कि मैं अपनी लड़कीसे पूछकर अभी आता हूँ, तबतक तुम यहीं बैठना ।

अभयमती अपने पिताको आया देख कर खुश हुई । उन्हें कुछ खिला-पिला कर उसने पूछा—पिताजी, आप अकेले गये थे और अकेले ही आये हैं क्या ? सोमशर्माने कहा—बेटा, मेरे साथ एक बड़ा ही सुन्दर लड़का आया है । पर बड़े दु खकी बात है कि वह बेचारा पागल हो गया जान पडता है । उसकी देवकुमारसी सुन्दर जिन्दगी धूलधानी हो गई । कर्मोंकी लीला बड़ी ही विचित्र है । मुझे तोउसकी वह स्वर्गीय सुन्दरता और साथ ही उसका वह पागलपन देखकर उस पर बड़ी दया आती है । मैं उसे शहर बाहर एक स्थान पर बैठा आया हूँ । अपने पिताकी बातें सुनकर अभयमतीको बडा कौतुक हुआ । उसने सोमशर्मासे पूछा—हाँ तो पिताजी उसमें किस तरहका पागलपन

है ? मुझे उसके सुननेकी बड़ी उत्कण्ठा हो गई है । आप बतलावें । सोमशर्माने तब अभयमतीसे श्रेणिककी वे सब चेष्टाएँ—कन्धे पर चढ़ना-चढ़ाना, छोटे गॉवको बड़ा और बड़े को छोटा कहना, वृक्षके नीचे छत्री चढ़ा लेना और धूपमें उतार देना, पानीमें चलते समय जूते पहर लेना और रास्तेमें चलते उन्हें हाथमें ले लेना आदि कह सुनाई । अभमती ने उन सबको सुनकर उसने पितासे कहा—पिताजी, जिस पुरुषने ऐसी बातें की है, उसे आप पागल या साधारण पुरुष न समझें । वह तो बड़ा ही बुद्धिमान् है । मुझे मालूम होता है उसकी बार्तोंके रहस्य पर आपने ध्यानसे विचार न किया इसीसे आपको उसकी बातें बे-सिर पैरकी जान पड़ीं पर ऐसा नहीं है । उन सबमें कुछ न कुछ रहस्य जरूर है । अच्छा, वह सब मैं आपको समझाती हूँ—पहले ही उसने जो यह कहा था कि आप मुझे अपने कन्धे पर चढ़ा लीजिए और आप मेरे कन्धों पर चढ़ जाइये, इससे उसका मतलब था, आप हम दोनों एक ही रास्तेंसे चलें । क्योंकि स्कन्ध शब्द का अर्थ रास्ता भी होता है । और यह उसका कहना ठीक भी था । इसलिये कि दो जने साथ रहनेसे हर तरह बड़ी सहायता मिलती रहती है ।

दूसरे उसने दो जो ग्रामों देखकर बड़ेको तो छोटा और छोटेको बड़ा कहा था । इसमें उसका अभिप्राय यह है कि छोटे गॉवके लोग सज्जन है, धर्मात्मा हैं, दयालु हैं, परोपकारी हैं और हर एककी सहायता करनेवाले है । इसलिए यद्यपि वह गाँव छोटा था, पर तब भी उसे बड़ा ही कहना चाहिए । क्योंकि बड़प्पन गुणों और कर्त्तव्य पालनसे कहलाता है । केवल बाहरी चमक दमकसे नहीं । और बड़े गॉवको उसने तब छोटा कहा, इससे उसका मतलब स्पष्ट ही है कि उसके रहवासी अच्छे लोग नहीं हैं, उनमें बड़प्पन के जो गुण होने चाहिये वे नहीं हैं ।

तीसरे उसने वृक्षके नीचे छत्रीको चढा लिया था और रास्तेमें उसे उतार लिया था । ऐसा करनेसे उसकी मशा यह थी । रास्तेमे छत्रीको न लगाया जाय तो भी कुछ नुकसान नहीं और वृक्षके नीचे न लगानेसे उस पर बैठे हुए पक्षियोंके बीट वगैरहके करनेका डर बना रहता है । इसलिये वहाँ छत्रीका लगाना आवश्यक है ।

चौथे उसने पानीमें चलते समय तो जूतोंको पहर लिया और रास्तेमें चलते समय उन्हें हाथमें ले लिया था। इससे वह यह बतलाना चाहता है—पानीमें चलते समय यह नहीं देख पड़ता है कि कहाँ क्या पड़ा है। काँटे, कीले और कंकर-पत्थरोंके लग जानेका भय रहता है, जल जन्तुओंके काटनेका भय रहता है। अतएव पानी में उसने जूतोंकी पहर कर बुद्धिमानोंका ही काम किया। रास्तेमें अच्छी तरह देख-भाल कर चल सकते हैं, इसलिय यदि वहाँ जूते न पहरे जायँ तो उतनी हानिकी संभावना नहीं।

पाँचवें उसने एक स्त्रीको मार खाते देखकर पूछा था कि यह स्त्री बँधी है या खुली ? इस प्रश्नसे मतलब था—उस स्त्रीका ब्याह हो गया है या नहीं ?

छठे—उसने एक मुर्देको देखकर पूछा था—यह मर गया है या जीता है ? पिताजी, उसका यह पूछना बड़ा मार्केका था। इससे वह यह जानना चाहता था कि यदि यह संसारका कुछ काम करके मरा है, यदि इसने स्वार्थ त्याग अपने धर्म, अपने देश और अपने देशके भाई—बन्धुओंके हितमें जीवनका कुछ हिस्सा लगाकर मनुष्य जीवनका कुछ कर्त्तव्य पालन किया है, तब तो वह मरा हुआ भी जीता ही है। क्योंकि उसकी वह प्राप्त की हुई कीर्ति मौजूद है, सारा संसार उसे स्मरण करता है, उसे ही अपना पथ प्रदर्शक बनाता है। फिर ऐसी हालतमें उसे मरा कैसे कहा जाय ? और इससे उलटा जो जीता रह कर भी संसारका कुछ काम नहीं करता, जिसे सदा अपने स्वार्थकी ही पड़ी रहती है ओर जो अपनी भलाई के सामने दूसरोंके होनेवाले अहित या नुकसानको नहीं देखता; बल्कि दूसरोंका बुरा करनेकी कोशिश करता है ऐसे पृथिवीके बोझको कौन जीता कहेगा ? उससे अब किसीको लाभ नहीं तब उसे मरा हुआ ही समझना चाहिए।

सातवें—उसने पूछा कि यह धानका खेत मालिकों द्वारा खा-लिया गया है या खाया जायगा ? इस प्रश्नसे उसका यह मतलब था कि इसके मालिकोंने कर्ज लेकर इस खेतको बोया है या इसके लिए उन्हें कर्ज लेनेकी जरूरत न पड़ी अर्थात् अपना ही पैसा उन्होंने इसमें लगाया है ? यदि कर्ज लेकर उन्होने इसे तैयार किया तब तो समझना चाहिए कि यह खेत पहले ही खा लिया गया और यदि कर्ज नही लिया गया तो अब वे इसे खायेंगे—अपने उपयोग में लावेंगे।

इस प्रकार श्रेणिकके सब प्रश्नोंका उत्तर अभयमतीने अपने पिताको समझाया । सुनकर सोमशर्माको बड़ा ही आनन्द हुआ । सोमशर्मा तब अभयमतीसे कहा—तो बेटा, ऐसे गुणवान् और रूपवान् लड़केको तो अपने घर लाना चाहिए । और अभयमती, वह जब पहले ही मिला तब उसने मुझे मामाजी कह कर पुकारा था । इसलिए उसका कोई अपने साथ सम्बन्ध भी होगा । अच्छा तो मैं उसे बुलाये लाता हूँ ।

अभयमती बोली—पिताजी, आपको तकलीफ उठानेकी कोई आवश्यकता नहीं । मैं अपनी दासीको भेजकर, उसे अभी बुलवा लेगी हूँ । मुझे अभी एक दो बातों द्वारा और उसकी जाँच करना है । इसके लिए मैं निपुणमतीको भेजती हूँ । अभयमतीने इसके बाद निपुणमतीको कुछ थोड़ासा उबटन चूर्ण देकर भेजा और कहा तू उस नये आगन्तुकसे कहना कि मेरी मालिकनने आपकी मालिशके लिए यह तेल और उबटन चूर्ण भेजा है, सो आप अच्छी तरह मालिश तथा स्नान करके फलाँ रास्तेसे घर पर आवें । निपुणमतीने श्रेणिकके पास पहुँच कर सब हाल कहा और तेल तथा उबटनको दखकर, जिससे कि एक हाथका भी मालिश होना असंभव था, दंग रह गया । उसने तब जान लिया कि सोमशर्मासे मैंने जो-जो प्रश्न किये थे उसने अपनी लड़कीसे अवश्य कहा है और इसीसे उसकी लड़कीने मेरी परीक्षाके लिए यह उपाय रचा है । अस्तु कुछ परवा नहीं । यह विचार कर उस तुरंत-बुद्धि श्रेणिकने तेल और उबटन चूर्णके रखनेको अपने पाँवके अँगूठेसे दो गढ़े बनाकर निपुणमतीसे कहा—आप तेल और चूर्णके लिए बरतन चाहती हैं । अच्छी बात है, ये (गढ़ेकी ओर इशारा करके) बरतन हैं । आप इनमें तेल और चूर्ण रख दीजिए । मैं थोड़ी ही देर बाद स्नान करके आपकी मालिकनकी आज्ञाका पालन करूँगा । निपुणमती श्रेणिककी इस बुद्धिमानीको देखकर दंग रह गई । वह फिर श्रेणिकके कहे अनुसार तेल और चूर्ण रखकर चली गई ।

अभयमतीने श्रेणिकको जिस रास्तेसे बुलाया था, उसमें उसने कोई घुटने-घुटने तक कीचड़ करवा दिया था । और कीचड़ बाहर होनेके स्थान पर बाँसकी एक छोटी सी पतली छोई (कमची) और बहुत ही थोड़ासा जल रख दिया था । इसलिए कि श्रेणिक अपने पाँवोंको साफ कर भीतर आये ।

श्रेणिकने घर पहुँच कर देखा तो भीतर जानेके रस्तेमें बहुत कीचड़ हो रहा है। वह कीचड़में होकर यदि जाये तो उसके पाँव भरते हैं और दूसरी ओरसे भीतर जानेका रास्ता उसे मालूम नहीं है। यदि वह मालूम भी करें तो उससे कुछ लाभ नहीं। अभयमतीने उसे इसी रास्ते बुलाया है। वह फिर कीचड़में हो होकर गया। बाहर होते ही उसे पाँव धोनेके लिए थोड़ा जल रखा हुआ मिला। वह बड़े आश्चर्यमें आ गया कि कीचड़से ऐसे लथपथ भरे पाँवोंको मैं इस थोड़ेसे पानीसे कैसे धो सकूँगा। पर इसके सिवा उसके पास और कुछ उपाय भी न था। तब उसने पानीके पास ही रखी हुई उस छाई को उठाकर पहले उससे पाँवोंका कीचड साफ कर लिया और फिर उस थोड़ेसे जलसे धोकर एक कपड़ेसे उन्हें पोंछ लिया। इन सब परीक्षाओंमें पास होकर जब श्रेणिक अभयमतीके सामने आया तब अभयमतीने उसके सामने एक ऐसा मूँगेका दाना रक्खा कि जिसमें हजारों बाके-सीधे छेद थे। यह पता नहीं पड़ पाता था किस छेदमें सूतका धागा पिरोनेसे उसमें पिरोया जा सकेगा और साधारण लोगोंके लिए यह बड़ा कठिन भी था। पर श्रेणिकने अपनी बुद्धिकी चतुरतासे उस मूँगेमेंबहुत जल्दी धागा पिरो दिया। श्रेणिककी इस बुद्धिमानीको देखकर अभयमती दग रह गई। उसने तब मन ही मन सकल्प किया कि मैं अपना ब्याह इसीके साथ करूँगी। इसके बाद उसने श्रेणिकका बड़ी अच्छी तरह आदर-सत्कार किया, खूब आनन्दके साथ उसे अपने ही घर पर जिमाया और कुछ दिनोंके लिऐ उसे वहीं ठहरा भी लिया। अभयमतीकी मशा उसकी सखी द्वारा जानकर उसके माता-पिताको बड़ी प्रसन्नता हुई। घर बैठे उन्हें ऐसा योग्य जँवाई मिल गया, इससे बढ़कर और प्रसन्नताकी बात उनके लिए हो भी क्या सकती थी। कुछ दिनो बाद श्रेणिकके साथ अभयमतीका ब्याह भी हो गया। दोनोंने नए जीवनमें प्रवेश किया। श्रेणिकके कष्ट भी बहुत कम हो गए। वह अब अपनी प्रियाके साथ सुखसे दिन बिताने लगा।

सोमशर्मा नामका एक ब्राह्मण एक अटवीमें जिनदत्त मुनिके पास दीक्षा लेकर संन्याससे मरा था। उसका उल्लेख अभिषेकविधिसे प्रेम करने वाले जिनदत्त और वसुमित्रकी १०३ वीं कथामें आ चुका है। यह सोमशर्मा यहाँसे मरकर सौधर्म स्वर्गमें देव हुआ।। जब इसकी स्वर्गायु पूरी हुई तब

यह कांचीपुरमें हमारे इस कथानायक श्रेणिकके अभयकुमार नामका पुत्र हुआ । अभयकुमार बड़ा वीर और गुणवान था और सत्त्व भी है जो कर्मोंका नाशकर मोक्ष जानेवाला है, उसकी वीरताका क्या पूछना ?

कांचीके राजा वसुपाल एक बार दिग्विजय करनेको निकले । एक जगह उन्होंने एक बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमन्दिर देखा । उसमें विशेषता यह थी कि वह एक ही खम्भेके ऊपर बनाया गया था—उसका आधार एक ही खम्भा था । वसुपाल उसे देखकर बहुत खुश हुए । उनकी इच्छा हुई कि ऐसा मन्दिर कांचीमें भी बनवाया जाय । उन्होंने उसी समय अपने पुरोहित सोमशर्माको एक पत्र लिखा । उसमें लिखा कि—"अपने यहाँ एक ऐसा सुन्दर जिन मंदिर तैयार करवाना, जिसकी इमारत भव्य और बड़ी मनोहर हो । सिवा इसके उसमें यह विशेषता भी हो कि मंदिर की सारी इमारत एक ही खम्भे पर खडी की जाए । मैं जब तक आऊँ तब तक मंदिर तैयार हो जाना चाहिए ।" सोमशर्मा पत्र पढ़कर बड़ी चिन्ता में पड गया । वह इस विषयमें कुछ जानता न था, इसलिए वह क्या करे ? कैसा मंदिर बनवावे ? इसकी उसे कुछ सूझ न पड़ती थी । चिन्ता उसके मुँह पर सदा छाई रहती थी । उसे इस प्रकार उदास देखकर श्रेणिकने उससे उसकी उदासीका कारण पूछा । सोमशर्माने तब वह पत्र श्रेणिकके हाथमें देकर कहा—यही पत्र मेरी चिन्ताका मुख्य कारण है । मुझे इस विषयका किंचित् भी ज्ञान नहीं तब मैं मन्दिर बनवाऊँ भी तो कैसा ? इसीसे मैं चिन्तामग्न रहता हूँ ! श्रेणिकने सोमशर्मासे कहा—आप इस विषयकी चिन्ता छोड़कर इसका सारा भार मुझे दे दीजिए । फिर देखिए, मैं थोड़े ही समयमें महाराजके लिखे अनुसार मंदिर बनवाए देता हूँ । सोमशर्माको श्रेणिकके इस साहस पर आश्चर्य तो अवश्य हुआ, पर उसे श्रेणिक की बुद्धिमानीका परिचय पहले हीसे मिल चुका था; इसलिए उसे कुछ सोच-विचार न कर सब काम श्रेणिकके हाथ सौंप दिया । श्रेणिकने पहले मन्दिरका एक नक्शा तैयार किया । जब नक्शा उसके मनके माफिक बन गया तब उसने हजारों अच्छे-अच्छे कारीगरोंको लगाकर थोड़े ही समयमें मन्दिरकी विशाल और भव्य इमारत तैयार करवा ली । श्रेणिककी इस बुद्धिमानीको जो देखता वही उसकी शतमुखसे तारीफ करता और वास्तवमें श्रेणिकने यह कार्य

प्रशंसाके लायक किया भी था। सच है, उत्तम ज्ञान, कला-चतुराई ये सब बातें बिना पुण्यके प्राप्त नहीं होतीं।

जब वसुपाल लौटकर कांची आये और उन्होंने मन्दिरकी उस भव्य इमारतको देखा तो वे बड़े खुश हुए। श्रेणिक पर उनकी अत्यन्त प्रीति हो गई। उन्होंने तब अपनी कुमारी वसुमित्राका उसके साथ ब्याह भी कर दिया। श्रेणिक राजजमाई बनकर सुखके साथ रहने लगा।

अब राजगृहकी कथा लिखी जाती है–

उपश्रेणिकको, उसकी रक्षा ही उसके लिए, देश बाहर कर दिया। इसके बाद कुछ दिनों तक उन्होने और राज्य किया। फिर कोई कारण मिल जानेसे उन्हें संसार-विषय-भोगादिसे बड़ा वैराग्य हो गया। इसलिए वे अपनी प्रतिज्ञाकेअनुसार, चिलातपुत्रको सब राज्यभार सौंपकर दीक्षा ले, योगी हो गये। राज्यसिंहासनको अब चिलातपुत्रने अलंकृत किया।

प्राय यह देखा जाता है कि एक छोटी जातिके या विषयोंके कीड़े स्वार्थी, अभिमानी, मनुष्यको कोई बड़ा अधिकार या खूब मनमानी दौलत मिल जाती है तो फिर उसका सिर आसमानमें चढ़ जाता है, आँखें उसकी अभिमानके मारे नीची देखती ही नहीं। ऐसा मनुष्य संसारमें फिर सब कुछ अपनेको ही समझने लगता है। दूसरोंकी इज्जत-आबरूकी वह कुछ भी परवा न कर उनका कौड़ीके भाव भी मोल नहीं समझता। चिलातपुत्र भी ऐसे ही मनुष्योंमें था। बिना परिश्रम या बिना हाथ-पाँव हिलाये उसे एक विशाल राज्य मिल गया और मजा यह कि अच्छे शूरवीर और गुणवान् भाइयोंके बैठे रहते। तब उसे क्यों न राजलक्ष्मीका अभिमान हो ? क्यों न वह गरीब प्रजाको पैरों नीचे कुचलकर इस अभिमानका उपयोग करे ? उसकी माँ भीलकी लड़की, जिसका कि काम दिन-रात लूट-खसोट करने और लोगोंको मारने-काटनेका रहा, उसके विचार गन्दे, उसकी वासनाएँ नीचातिनीच; तब वह अपनी जाति, अपने विचार और अपनी वासनाके अनुसार यदि काम करे तो इसमें नई बात क्या ? कुछ लोग ऐसा कहें कि यह सब कुछ होने पर भी अब राजा है, प्रजाका प्रतिपालक है, तब उसे तो अच्छा होना ही चाहिए। इसका यह उत्तर

है कि ऐसा होना आवश्यक है और एक ऐसे मनुष्यको, जिसका कि अधिकार बहुत बड़ा है—हजारों लाखों अच्छे-अच्छे इज्जत-आबरूदार, धनी, गरीब, दीन, दु:खी जिसकी कृपाकी चाह करते हैं, विशेष कर शिष्ट और सबका हितैषी होना ही चाहिए। हाँ ये सब बातें उसमें हो सकती हैं, जिसमें दयालुता, परोपकारता, कुलीनता, निरभिमानता, सरलता, सज्जनता आदि गुण कुल-परम्परासे चले आते हों। और जहाँ इनका मूलमें ही कुछ ठिकाना नहीं वहाँ इन गुणोंका होना असम्भव नहीं तो दु:साध्य अवश्य है। आप एक कौएको मोर के पींखोंसे खूब सजाकर सुन्दर बना दीजिए, पर रहेगा वह कौआका कौआ ही। ठीक इसी तरह चिलातपुत्र आज एक विशाल राज्यका मालिक जरूर बन गया, पर उसमें जो भील-जातिका अंश है वह अपने चिर संस्कारके कारण इसमें पवित्र गुणोंकी दाल गलने नहीं देता। और यही कारण हुआ कि राज्याधिकार प्राप्त होते ही उसकी प्रवृत्ति अच्छी ओर न होकर अन्यायकी ओर हुई। प्रजाको उसने हर तरह तंग करना शुरू किया। कोई दुर्व्यसन, कोई कुकर्म उससे न छूट पाया। अच्छे-अच्छे घरानेकी कुलशील सतियोंकी इज्जत ली जाने लगी। लोगोंका धन-माल जबरन लूटा-जाने लगा। उसकी कुछ पुकार नहीं, सुनवाई नहीं, जिसे रक्षक जानकर नियम किया वही जब भक्षक बन बैठा तब उसकी पुकार, की भी कहाँ जाये ? प्रजा अपनी आँखोंसे घोरसे घोर अन्याय देखती, पर कुछ करने-धरनेको समर्थ न होकर वह मन मसोस कर रह जाती। जब चिलात बहुत ही अन्याय करने लगा तब उसकी खबर बड़ी-बड़ी दूर तक बात सुन पड़ने लगी। श्रेणिकको भी प्रजा द्वारा यह हाल मालूम हुआ। उसे अपने पिताकी निरीह प्रजा पर चिलातका यह अन्याय सहन नहीं हुआ। उसने तब अपने श्वसुर वसुपालसे कुछ सहायता लेकर चिलात पर चढाई कर दी। प्रजाको जब श्रेणिककी चढ़ाईका हाल मालूम तो उसने बड़ी खुशी मनाई, और हृदयसे उसका स्वागत किया। श्रेणिकने प्रजाको सहायतासे चिलातको सिंहासनसे उतार देश बाहर किया और प्रजा की अनुमतिसे फिर आप ही सिंहासन पर बैठा। सच है, राज्यशासन वहीं कर सकता है और वही पात्र भी है जो बुद्धिमान हो, समर्थ हो और न्यायप्रिय हो। दुर्बुद्धि, दुराचारी, कायर और अकर्मण्य पुरुष उसके योग्य नहीं।

इधर कई दिनोंसे अपने पिताको न देखकर अभयकुमारने अपनी मातासे एक दिन पूछा—माँ, बहुत दिनोंसे पिताजी देख नहीं पडते, सो वे कहाँ है अभयमतीने उत्तरमें कहा—बेटा, वे जाते समय कह गये थे कि राजगृहमें 'पाण्डुकुटि' नामका महल है। प्राय मैं वहीं रहता हूँ। सो मैं जब समाचार दूँ तब वहीं आ जाना। तबसे अभी तक उनका कोई पत्र न आया। जान पड़ता है राज्यके कामोंसे उन्हें स्मरण न रहा। माता द्वारा पिताका पता पा अभयकुमार अकेला ही राजगृहको रवाना हुआ। कुछ दिनोंमें वह नन्दगाँवमें पहुँचा।

पाठकोंको स्मरण होगा कि जब श्रेणिकको उसके पिता उपश्रेणिकने देश बाहर हो जानेकी आज्ञा दी थी और श्रेणिक उसके अनुसार राजगृहसे निकल गया था तब उसे सबसे पहले रास्तेमें यही नन्दगाँव पडा था। पर यहाँके लोगोंने राजद्रोहके भयसे श्रेणिकको गाँवोंमें आने नहीं दिया था। श्रेणिक इससे उन लोगों पर बड़ा नाराज हुआ था। इस समय उन्हें उनकी असहानुभूतिकीसजा देनेके अभिप्रायसे श्रेणिकने उन पर एक हुक्मनामा भेजा और उसमें लिखा कि "आपके गाँवमें एक मीठे पानीका कुँआ है। उसे बहुत जल्दी मेरे यहाँ भेजो, अन्यथा इस आज्ञाका पालन न होनेसे तुम्हें सजा दी जायगी।" बेचारे गाँवके रहनेवाले स्वभावसे डरपोक ब्राह्मण राजाके इस विलक्षण हुक्मनामेको सुनकर बडे घबराये। जो ले जानेकी चीज होती है वही ले-जाई जाती है, पर कुँआ एक स्थानसे अन्य स्थान पर कैसे-ले जाया जाय ? वह कोई ऐसी छोटी-मोटी वस्तु नहीं जो यहाँसे उठाकर वहाँ रख दी जाय। तब वे बड़ी चिन्तामें पड़े। क्या करें, और क्या न करें, यह उन्हें बिलकुल न सूझ पड़ा, न वे राजाके पास ही जाकर कह सकते हैं कि—महाराज, यह असम्भव बात कैसे हो सकती है ! कारण गाँवके लोगोंमें इतनी हिम्मत कहाँ ? सारे गाँवमें यही एक चर्चा होने लगी। सबके मुँह पर मुर्दनी छा गई। और बात भी ऐसी ही थी। राजाज्ञा न पालने पर उन्हें दण्ड भोगना चाहिये। यह चर्चा घरों घर हो रही थी कि इसी समय अभयकुमार यहाँ आ पहुँचा, जिसका कि जिकर ऊपर आ चुका है। उसने इस चर्चाका आदि अन्त मालूम कर गाँवके सब लोगोनको इकट्ठा कर कहा—इस साधारण बातके लिये आप लोग ऐसा चिन्तामें पड़ गये। घबराने करनेकी कोई बात नहीं। मैं जैसा कहूँ वैसा

कीजिये । आपका राजा उससे खुश होगा । तब उन लोगोंने अभयकुमारकी सलाहसे श्रेणिककी सेवामें एक पत्र लिखा । उसमें लिखा कि—"राजराजेश्वर, आपकी आज्ञाको सिर पर चढ़ाकर हमने कुँएसे बहुत-बहुत प्रार्थनायें कर कहा कि—महाराज तुझ पर प्रसन्न है । इसलिये वे तुझे अपने शहरमें बुलाते हैं, तू राजगृह जा ! पर महाराज, उसने हमारी एक भी प्रार्थना न सुनी और उलटा रूठकर गाँव बाहर चल दिया । सो हमारे कहने सुननेसे तो वह आता नहीं देख पड़ता । पर हाँ उसके ले जानेका एक उपाय यह है कि पुरुष स्त्रियोका गुलाम होता है, स्त्रियों द्वारा वह जल्दी वश हो जाता है । इसलिये आप अपने शहरकी उदुम्बर नामकी कुईको इसे लेनेको भेजें तो अच्छा हो । बहुत विश्वास है कि उसे देखते ही हमारा कुँआ उसके पीछे-पीछे हो जायगा ।" श्रेणिक पत्र पढ़कर चुप रह गये । उनसे उसका कुछ उत्तर न बन पड़ा । सच है, जब जैसे को तैसा मिलता है तब अकल ठिकाने पर आती है । और धूर्तोंको सहजमें काबूमें ले लेना कोई हँसी खेल थोडे ही है ?

कुछ दिनों बाद श्रेणिकने उनके पास एक हाथी भेजा और लिखा कि इसका ठीक-ठीक तोल कर जल्दी खबर दो कि यह वजनमें कितना है ? अभयकुमार उन्हे बुद्धि सुझानेवाला था ही, सो उसके कहे अनुसार उन लोगोंने नावमे एक ओर तो हाथीको चढा दिया और दूसरी ओर खूब पत्थर रखना शुरू किया । जब देखा कि दोनों ओरका वजन समतोल हो गया तब उन्होंने उन सब पत्थरोको अलग तोलकर श्रेणिकको लिख भेजा कि हाथी का तोल इतना है । श्रेणिक अब भी चुप रह जाना पड़ा ।

तीसरी बार तब श्रेणिकने लिख भेजा कि "आपका कुँआ गाँवके पूर्वमें है, उसे पश्चिमकी ओर कर देना । मैं बहुत जल्दी उसे देखनेको आऊँगा ।" इसके लिये अभयकुमारने उन्हें युक्ति सुझाकर गाँव को ही पूर्वकी ओर बसा दिया । इससे कुँआ सुतरां पश्चिममें हो गया ।

चौथी बार श्रेणिकने एक मेंढ़ा भेजा कि "यह मेढा न दुर्बल हो, न बढ़ जाय और न इसके खाने पिलानेमें किसी तरह की असावधानी की जाय । मतलब यह कि जिस स्थितिमें यह अब है इसी स्थितिमें बना रहे । मैं कुछ दिनों बाद इसे वापिस मगा लूँगा ।" इसके लिये अभयकुमारने उन्हें यह युक्ति

बताई कि मेंढ़ेको खूब खिला-पिला कर घण्टा दो घण्टाके लिये उसे सिंह के सामने बाँध दिया करिए, ऐसा करनेसे न यह बढ़ेगा और न घटेगा ही । वैसा ही किया गया । मेंढ़ा जैसा था वैसा ही रहा । श्रेणिक को इस युक्तिमें भी सफलता प्राप्त न हुई ।

पाँचवीं बार श्रेणिकने उनसे घड़ेमें रखा एक कोला (कद्दू) मँगाया । इसके लिये अभयकुमारने बेल पर लगे हुए एक छोटे कोलेको घड़ेमें रखकर बढ़ाना शुरू किया और जब उससे घड़ा भर गया तब उसे घडेको श्रेणिकके पास पहुँचा दिया ।

छठी बार श्रेणिकने उन्हें लिख भेजा कि "मुझे बालूरेतकी रस्सीकी दरकार है, सो तुम जल्दी बनाकर भेजो ।" अभयकुमारने इसके उत्तरमें यह लिखवा भेजा कि "महाराज, जैसी रस्सी आप तैयार करवाना चाहते हैं कृपा कर उसका नमूना भिजवा दीजिये । हम वैसी ही रस्सी फिर तैयार कर सेवामें भेज देंगे ।" इत्यादि कई बातें श्रेणिकने उनसे करवाईं । सबका उत्तर उन्हें बराबर मिला । उत्तर ही न मिला किन्तु श्रेणिकको हतप्रभ भी होना पड़ा । इसलिये कि वे उन ब्राह्मणोंको इस बातकी सजा देना चाहते थे कि उन्होंने मेरे साथ सहानुभूति क्यों न बतलाई ? पर वे सजा दे नहीं पाये । श्रेणिकको जब यह मालूम हुआ कि कोई एक विदेशी नन्द गाँवमें है । वही गाँवके लोगोंको यह सब बातें सुझाया करता है । उन्हें उस विदेशीकी बुद्धि देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ और सन्तोष भी हुआ । श्रेणिककी उत्कण्ठा तब उसके देखनेके लिये बढ़ी । उन्होंने एक पत्र लिखा । उसमें लिखा कि "आपके यहाँ जो एक विदेशी आकर रहा है, उसे मेरे पास भेजिये । पर साथमें उसे इतना और समझा देना कि वह न तो रातमें आये, और न दिनमें, न सीधे रास्तेसे आये और न टेढ़े-मेढ़े रास्तेसे ।

अभयकुमारको पहले तो कुछ जरा विचारमें पड़ना पड़ा, फिर उसे इसके लिये भी युक्ति सूझ गई और अच्छी सूझी । वह शामके वक्त गाड़ीके एक कोनेमें बैठकर श्रेणिकके दरबारमें पहुँचा । वहाँ वह देखता है तो सिंहासन पर एक साधारण पुरुष बैठा है—उस पर श्रेणिक नहीं है वह बड़ा आश्चर्यमें पड़ गया । उसे ज्ञान हो गया कि यहाँ भी कुछ न कुछ चाल खेली

गई है। बात यह थी कि श्रेणिक अंगरक्षक पुरुषोंके साथ बैठ गये थे। उनकी इच्छा थी कि अभयकुमार मुझे न पहचान कर लज्जित हो। इसके बाद ही अभयकुमार ने एक बार अपनी दृष्टि राजसभा पर डाली। उसे कुछ गहरी निगाहसे देखनेपर जान पड़ा कि राजसभामें बैठे हुए लोगोंकी नजर बार-बार एक पुरुष पर पड़ रही है और वह लोगोंकी अपेक्षा सुन्दर और तेजस्वी है। पर आश्चर्य यह कि वह राजाके अंगरक्षक लोगोंमें बैठा है। अभयकुमारको उसी पर कुछ सन्देह गया। तब उसके कुछ चिन्होंको देखकर उसे दृढ़ विश्वास हो गया कि यही मेरे पूज्य पिता श्रेणिक है। तब उसने जाकर उनके पाँवोंमें अपना सिर रख लिया। श्रेणिकने उठाकर झट उसे छातीसे लगा लिया। वर्षोंबाद पिता पुत्रका मिलाप हुआ। दोनोंको ही बड़ा आनन्द हुआ। इसके बाद श्रेणिकने पुत्रप्रवेशके उपलक्ष्यमें प्रजाको उत्सव मनानेकी आज्ञा की। खूब आनन्द-उत्सव मनाया गया। दुखी, अनाथोंको दान किया गया। पूजा-प्रभावना की गई। सच है, कुलदीपक पुत्रके लिये कौन खुशी नहीं मनाता? इसके बाद ही श्रेणिकने अपने कुछ आदमियोंको भेजकर कांचीसे अभयमती और वसुमित्रा इन दोनों प्रियाओंको भी बुलवा लिया। इस प्रकार प्रिया-पुत्र सहित श्रेणिक सुखसे राज्य करने लगे। अब इसके आगे की कहानी लिखी जाती है—

सिन्धु देशकी विशाला नगरीके राजा चेटक थे। वे बड़े बुद्धिमान्, धर्मात्मा और सम्यग्दृष्टि थे। जिन भगवान् पर उनकी बड़ी भक्ति थी। उनकी रानीका नाम सुभद्रा था। सुभद्रा बड़ी पतिव्रता और सुन्दरी थी इसके सात लड़कियाँ थीं। इनमें पहली लड़की प्रियकारिणी थी। इसके पुण्यका क्या कहना, जो इसका पुत्र संसारका महान् नेता तीर्थंकर हुआ। दूसरी मृगावती, तीसरी सुप्रभा, चौथी प्रभावती, पाँचवीं चेलिनी, छठी ज्येष्ठा और सातवीं चन्दना थी। इनमे अन्तमें चन्दनाको बड़ा उपसर्ग सहना पड़ा। उस समय बड़ी वीरतासे अपनी सतीधर्मकी रक्षा की।

चेटक महाराजका अपनी इन पुत्रियोपर बड़ा प्रेम था। इससे उन्होंने इन सबकी एक साथ तस्वीर बनवाई। चित्रकार बड़ा हुशियार था, सो उसने उन सबका बड़ा ही सुन्दर चित्र बनाया। चित्रपटको चेटक महाराज बड़ी

बारीकीके साथ देख रहे थे। देखते हुए उनकी नजर चेलिनीकी जाँघ पर पड़ी, चेलिनीकी जाँघ पर जैसा तिलका चिन्ह था, चित्रकारने चित्रमें भी वैसा ही तिलको देखा उन्हें चित्रकार पर बड़ा गुस्सा आया। उन्होंने उसी समय उसे बुलाकर पूछा कि–तुझे इस तिलका हाल कैसे जान पड़ा। महाराजकी क्रोध भरी आँखें देखकर वह बड़ा घबराया। उसने हाथ जोड़कर कहा–राजाधिराज, इस तिलको मैंने कोई छह सात बार मिटाया, पर मैं ज्यों ही चित्रके पास लिखनेको कलम ले जाता त्यों ही उसमेंसे रगकी बूंद इसी जगह पड़ जाती। तब मेरी मनमे दृढ़ विश्वास हो गया कि ऐसा चिन्ह राजकुमारी चेलिनीके होना ही चाहिये और यही कारण है कि मैंने फिर उसे न मिटाया। यह सुनकर चेटक महाराज बड़े खुश हुए। उन्होंने फिर चित्रकारको बहुत पारितोषिक दिया। सच है बडे पुरुषोका खुश होना निष्फल नहीं जाता।

अबसे चेटक महाराज भगवान्की पूजन करते समय पहले इस चित्रपटको खोलकर भगवान्की प्रतिमाके पास ही रख लेते हैं और फिर बड़ी भक्तिके साथ जिनपूजा करते रहते हैं। जिन पूजा सब सुखोकी देनेवाली और भव्यजनोंके मनको आनन्दित करने वाली है।

एक बार चेटक महाराज किसी खास कारण वश अपनी सेनाको साथ लिये राजगृह आये। वे शहर बाहर बगीचेमें ठहरे। प्रात काल शौच मुख मार्जनादि आवश्यक क्रियोओंसे निबट उन्होंने स्नान किया और निर्मल वस्त्र पहर भगवान की विधिपूर्वक पूजा की। रोजके माफिक आज भी चेटक महाराजने अपनी राजकुमारियोके उस चित्रपटको पूजन करते समय अपने पास रख लिया था और पूजनके अन्तमें उस पर फूल वगैरह डाल दिये थे।

इसी समय श्रेणिक महाराज भगवान्के दर्शन करनेको आये। उन्होंने इस चित्रपटको देखकर पास खडे हुए लोगोंसे पूछा–यह किनका चित्रपट है ? उन लोगोने उत्तर दिया–राजराजेश्वर, ये जो विशालाके चेटक महाराज आये हैं, उनकी लड़कियोका यह चित्रपट है। इनमे चार लड़कियोंका तो ब्याह हो चुका है और चेलिनी तथा ज्येष्ठा ये दो लड़कियाँ ब्याह योग्य हैं। सातवीं चन्दना अभी बिलकुल बालिका है। ये तीनो ही इस समय विशालामें है यह सुन श्रेणिक महाराज चेलिनी और ज्येष्ठा पर मोहित हो गये। इन्होंने महल

पर आकर अपने मनकी बात मंत्रियोंमे कही । मंत्रियोंने अभयकुमारसे कहा—आपके पिताजीने चेटक महाराजसे इनकी दो सुन्दर लड़कियोंके लिये मँगनी की थी, पर उन्होंने अपने महाराज की अधिक उमर देख उन्हे अपनी राजकुमारियोंके देनेसे इन्कार कर दिया । अब तुम बतलाओ कि क्या उपाय किया जाये जिससे काम पूरा पड़ ही जाय ।

बुद्धिमान् अभयकुमार मंत्रियोंके वचन सुनकर बोला—आप इस विषयकी चिन्ता न करें जबतक कि सब कामोंको करने वाला मैं मौजूद हूँ । यह कहकर अभयकुमारने अपने पिताका एक बहुत सुन्दर चित्र तैयार किया और उसे लेकर साहूकारके वेषमें आप विशाला पहुँचा । किसी उपायसे उसने वह चित्रपट दोनो राजकुमारियोंको दिखलाया । वह इतना बढ़िया बना था कि उसे यदि एक बार देवाग्नाएँ देख पातीं तो उनसे भी अपने आपेमें न रहा जाता तब ये दोनो कुमारियाँ उसे देखकर मुग्ध हो जॉय, इसमे आश्चर्य क्या । उन दोनोका श्रेणिक महाराज पर मुग्ध देख अभयकुमार उन्हें सुरगके रास्तेमे राजगृह ले जाने लगा । चेलिनी बड़ी धूर्त थी । उसे स्वय तो जाना पसन्द था, पर वह ज्येष्ठाको ले जाना न चाहती थी । सो जब ये थोड़ी ही दूर आई होगी कि चेलिनीने ज्येष्ठा से कहा—हॉ, बहिन मैं तो अपने सब गहने-दागीने महल मेंही छोड़ आई हूँ, तू जाकर उन्हें ले-आ न ? तबतक मैं यही खड़ी हूँ बेचारी भोली-भाली ज्येष्ठा इसके झाँसेमें आकर चली गई । वह ऑखोंकी ओट हुई होगी कि चेलिनी वहाँसे रवाना होकर अभयकुमारके साथ राजगृह आ गई ।

फिर बड़े उत्सवके साथ यहाँ इसका श्रेणिक महाराजके साथ ब्याह हो गया । पुण्यके उदयसे श्रेणिककी सब रानियों में चेलिनीके ही भाग्यका सितारा चमका—पट्टरानी यही हुई ।

यह बात ऊपर लिखी जा चुकी है—श्रेणिक एक सन्यासीके उपदेशसे वैष्णवधर्मी हो गये थे और तबसे वे इसी धर्मको पालते थे । महारानी चेलिनी जैनी थी । जिनधर्म पर जन्मसे ही उसकी श्रद्धा थी । इन दो धर्मोंको पालनेवाले पति-पत्नीका अपने-अपने धर्मकी उच्चता बाबत रोज-रोज थोड़ा बहुत वार्तालाप हुआ करता था । पर वह बड़ी शान्तिसे । एक दिन श्रेणिकने चेलिनीसे कहा—प्रिये, उच्च घरानेकी सुशील स्त्रियोंका देव तो पति है तब तुम्हें मैं जो

कहूँ वह करना चाहिए । मेरी इच्छा है कि एक बार तुम इन विष्णुभक्त सच्चे गुरुओंको भोजन दो । सुनकर महारानी चेलिनीने बड़ी नम्रताके साथ कहा—अच्छा नाथ, दूँगी ।

इसके कुछ दिनों बाद चेलिनीने कुछ भागवत् साधुओंका निमत्रण किया और बड़े गौरवके साथ उन्हें अपने यहाँ बुलाया । आकर वे लोग अपना ढोंग दिखलानेके लिये कपट, मायाचारीसे ईश्वराराधन करनेको बैठे । उस समय चेलिनीने उनसे पूछा—आप लोग क्या करते हैं ? उत्तरमें उन्होंने कहा—देवी, हम लोग मलमूत्रादि अपवित्र वस्तुओंसे भरे इस शरीरको छोड़कर अपने आत्माको विष्णु अवस्था में प्राप्त कर स्वानुभवका सुख भोगते हैं ।

सुनकर चेलिनीने उस मंडपमें, जिसमें कि सब साधु ध्यान करनेको बैठे थे, आग लगवा दी । आग लगते ही वे सब भाग खड़े हुए । यह देख श्रेणिकने बड़े क्रोधके साथ चेलिनिसे कहा—आज तुमने साधुओंके साथ अनर्थ किया । यदि तुम्हारी उन पर भक्ति नहीं थी, तो क्याउसका यह अर्थ है कि उन्हें जानसे मार डालना ? बताओ उन्होने तुम्हारा क्या अपराध किया जिसमे तुम उनके जीवनकी ही प्यागी हो उठी ?

रानी बोली—नाथ, मैंने तो कोई बुरा काम नहीं किया और जो किया वह उन्हींके कहे अनुसार उनके लिए सुखका कारण था । मैंने तो केवल परोपकार बुद्धिसे ऐसा किया था । जब वे लोग ध्यान करनेको बैठे तब मैंने उनसे पूछा कि आप लोग क्या करते हैं, तब उन्होने मुझे कहा कि—हम अपवित्र शरीरको छोड़कर उत्तम सुखमय विष्णुपदको प्राप्त करते हैं । तब मैंने सोचा कि—ओहो, ये जब शरीर छोड़कर विष्णुपद प्राप्त करते है तब तो बहुत ही अच्छा है और इससे यह और उत्तम होगा कि यदि ये निरन्तर विष्णु ही बने रहें । संसारमें बार-बार आने-जानेका इनके पीछे पचड़ा क्यों ? यह विचार कर वे निरन्तर विष्णुपदमें रहकर सुख भोगें इस परोपकार बुद्धिसे मैंने मण्डप में आग लगवा दी । तब आप ही विचार कर वतलाइए कि इसमें मैंने सिवा परोपकारके कौन बुरा काम किया ? और सुनिए, मेरे वचनों पर आपको विश्वास हो, इसके लिए मै। एक कथा आपको सुना दूँ ।

"जिस समयकी यह कथा है, उसे समय वत्सदेशकी राजधानी कोशाम्बीके राजा प्रजापाल थे । वे अपना राज्यशासन नीतिके साथ करते हुए सुखसे समय बिताते थे । कोशाम्बीसे दो सेठ रहते थे । उनके नाम थे सागरदत्त और समुद्रदत्त । दोनें सेठोंमें परस्पर बहुत प्रेम था । उनका प्रेम सदा ऐसा ही दृढ बना रहे, इसके लिए उन्होंने परस्परमें एक शर्त की । वह यह कि—"मेरे यदि पुत्री हुई तो मैं उसका ब्याह तुम्हारे लड़केके साथ कर दूँगा और इसी तरह मेरे पुत्र हुआ तो तुम्हें अपनी लड़कीका ब्याह उसके साथकर देना पड़ेगा ।

दोनोंनेउक्त शर्त स्वीकार की । इसके कुछ दिनों बाद सागरदत्तके घर पुत्र जन्म हुआ । उसका नाम वसुमित्र रक्खा । पर उसमें एक बड़े आश्चर्यकी बात थी । वह यह कि—वसुमित्र न जाने किस कर्मके उदयसे रातके समय तो एक दिव्य मनुष्य होकर रहता और दिनमें एक भयानक सर्प ।

उधर समुद्रदत्तके घर कन्या हुई । उसका नाम रक्खा गया नागदत्ता । वह बड़ी खूबसूरत सुन्दरी थी । उसके पिताने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार उसका ब्याह वसुमित्रके साथ कर दिया सच है—

नैव वाचा चलत्व स्यात्सना कष्टशतैरपि ।

सत्पुरुष सैकड़ो कष्ट सह लेते हैं, पर अपनी प्रतिज्ञासे कभी विचलित नहीं होते । वसुमित्रका ब्याह हो गया । वह अब प्रतिदिन दिनमें तो सर्प बनकर एक पिटारेमें रहता और रातमे एक दिव्य पुरुष होकर अपनी प्रियाके साथ सुखोपभोग करता । सचमुच ससारकी विचित्र ही स्थिति होती है । इसी तरह उसे कई दिन बीत गये । एक दिन नागदत्ताकी माता अपनी पुत्रीको एक ओर तो यौवन अवस्था में पदार्पण करती और दूसरी ओर उसके विपरीत भाग्यको देखकर दुखी होकर बोली—हाय ! देवकी कैसी विडम्बना है, जो कहाँ तो देवकुमारी सरीखी सुन्दरी मेरी पुत्री और कैसा उसका अभाग्य जो उसे पति मिला एक भयंकर सर्प ! उसकी दु ख भरी आहको नागदत्ताने सुन लिया । वह दौड़ी आकर अपनी माँसे बोली—माँ, इसके लिए आप क्यों दु ख करती है । मेरा जब भाग्य ही ऐसा है, तब उसके लिए दु ख करना व्यर्थ है और

अभी मुझे विश्वास है कि मेरे स्वामीका इस दशासे उद्धार हो सकता है । इसके बाद नागदत्ताने अपनी माँको स्वामीके उद्धारके सम्बन्धकी बात समझा दी ।

सदाके नियमानुसार आज भी रातके समय वसुमित्र अपना सर्प-शरीर छोड़कर मनुष्य रूपमें आया और अपने शय्या-भवनमें पहुँचा । इधर समुद्रदत्ता छुपे हुए आकर वसुदत्तके पिटारेको वहाँसे उठा ले-आई और उसी समय उसने उसे जला डाला । तबसे वसुमित्र मनुष्य रूपमें ही अपनी प्रियाके साथ सुख भोगता हुआ अपना समय आनन्दसे बिताने लगा ।" नाथ, उसी तरह ये साधु भी निरन्तर विष्णुलोकमें रहकर सुख भोगें यह मेरी इच्छा थी; इसलिए मैंने वैसा किया था । महारानी चेलनीकी कथा सुनकर श्रेणिक उत्तर तो कुछ नहीं दे सके, पर वे उस पर बहुत गुस्सा हुए और उपयुक्त समय न देखकर वे अपने क्रोधको उस समय दबा गये ।

एक दिन श्रेणिक शिकारके लिए गये हुए थे । उन्होंने वनमें यशोधर मुनिराजको देखा । वे उस समय आतप योग धारण किये हुए थे । श्रेणिकने उन्हें शिकारके लिए विघ्नरूप समझ कर मारनेका विचार किया और बड़े गुस्सेमें आकर अपने क्रूर शिकारी कुत्तोंको उन पर छोड़ दिया । कुत्ते बड़ी निर्दयताके साथ मुनिके खानेको झपटे । पर मुनिराजको तपस्याके प्रभावसे वे उन्हें कुछ कष्ट न पहुँचा सके । बल्कि उनकी प्रदक्षिणा देकर उनके पाँवोंके पास खड़े रह गये । यह देख श्रेणिकको और भी क्रोध आया । उन्होने क्रोधान्ध होकर मुनि पर बाण चलाना आरम्भ किया । पर यह कैसा आश्चर्य जो बाणोंके द्वारा उन्हें कुछ क्षति न पहुँच कर वे ऐसे जान पड़े मानो किसीने उन पर फूलोंकी वर्षा की है । सच, बात यह है कि तपस्वियोंका प्रभाव कौन कह सकता है । श्रेणिकने उन मुनिहिंसारूप तीव्र परिणामों द्वारा उस समय सातवें नरकी आयुका बन्ध किया, जिसकी स्थिति तेतीस सागर की है ।

इन सब अलौकिक घटनाओंको देखकर श्रेणिकका पत्थरके समान कठोर हृदय फूल-सा कोमल हो गया, उनके हृदयकी सब दुष्टता निकल कर उसमें मुनिके प्रति पूज्यभाव पैदा हो गया, वे मुनिराजके पास गये और

भक्तिसे मुनिके चरणोंको नमस्कार किया । यशोधर मुनिराजने श्रेणिकके हितके लिए इस समयको उपयुक्त समझ उन्हें अहिंसामयी पवित्र जिनशासनका उपदेश दिया । उसका श्रेणिकके हृदय पर बहुत असर पड़ा । उनके परिणामोंमें विलक्षण परिवर्तन हो गया । उन्हें अपने कृत कर्म पर अत्यन्त पश्चात्ताप हुआ । मुनिराजके उपदेशानुसार उन्होंने सम्यक्त्व ग्रहण किया । उसके प्रभावसे, उन्होंने जो सातवें नर्ककी आयुका बन्ध किया था, वह उसी समय घटकर पहले नरकाका रह गया । यहाँकी स्थिति चौरासी हजार वर्षोंकी है । ठीक है सम्यग्दर्शनके प्रभावसे भव्यपुरुषको क्या प्राप्त नहीं होता । 84000

इसके बाद श्रेणिकने श्रीचित्रगुप्त मुनिराजके पास क्षयोपशम सम्यक्त्व प्राप्त किया । और अन्तमें भगवान वर्धमान स्वामीके द्वारा शुद्ध क्षायिक सम्यक्त्व, जो कि मोक्षका कारण है, प्राप्त कर पूज्य तीर्थकर नाम प्रकृतिका बन्ध किया । श्रेणिक महाराज अब तीर्थकर होकर निर्वाण लाभ करेंगे ।

इसलिए भव्यजनों इस स्वर्ग-मोक्षके सुख देनेवाले तथा संसारका हित करनेवाले सम्यग्दर्शन रूप रत्न द्वारा अपनेको भूषित करना चाहिए । यह सम्यग्दर्शन रूप रत्न इन्द्र, चक्रवर्त्ती आदिके सुखका देनेवाला, दुःखोंका नाशक करनेवाला और मोक्षका प्राप्त करानेवाला है । विद्वज्जन आत्महितके लिए इसीको धारण करते हैं । उस सम्यग्दर्शनका स्वरूप श्रुतसागर आदि मुनिराजोंने कहा । जिनभगवानके कहे हुए तत्त्वोंका श्रद्वान करना ऐसा विश्वास करना कि भगवान्ने जैसा कहा वही सत्यार्थ है । तब आप लोग भी इस समयग्दर्शनको ग्रहण कर आत्म-हित करें, यह मेरी भावना है ।

---

१०८. रात्रिभोजन-त्याग-कथा

जिन भगवान, जिनवाणी और गुरुओंको नमस्कार कर रात्रि-भोजनका त्याग करनेसे जिसने फल प्राप्त किया उसकी कथा लिखी जाती है ।

जो लोग धर्मरक्षाके लिए रात्रिभोजनका त्याग करते है, वे दोनों लोकों में सुखी होते है, यशस्वी होते है, दीर्घायु होते है, कान्तिमान होते है और उन्हें सब सम्पदाएँ तथा शान्ति मिलती है, और जो लोग रातमें भोजन करने वाले हैं, वे दरिद्री होते है जन्मान्ध होते है अनेक रोग और व्याधियाँ उन्हें सदा सताए रहती हैं,. उनके संतान नहीं होती । रातमें भोजन करनेसे छोटे जीव जन्तु नहीं दिखाई पड़ते । वे खानेमें आ जाते है । उससे बड़ा पापबन्ध । होता है । जीवहिंसा का पाप लगता है। माँस का दोष लगता है । इसलिए रात्रि भोजनको छोड़ना ही चाहिए जो माँस नहीं खाते । धर्मात्मा श्रावकों को दिन निकले दो घडी बाद सबेरे और दो घड़ी दिन बाकी रहे तब शाम को भोजन वगैरहसे निवृत्त हो जाना चाहिए । समन्तभद्रस्वामीका भी ऐसा ही मत है—"रात्रि भोजन का त्याग करनेवालेको सबेरे ओर शामको आरम्भ और अन्तमें दो दो घड़ी छोड़कर भोजन करना चाहिए ।" जो नैष्ठिक श्रावक नहीं है उनके लिए पान, सुपारी, इलायची, जल और पवित्र औषधि आदिका सेवन विशेष दोषके कारण नहीं हैं । इन्हें छोड़कर और अन्नकी चीजे या मिठाई फलादिक ये सब कष्ट पड़ने पर भी कभी न खाना चाहिए । जो भव्य जीवन भरके लिए चारों प्रकारके आहार का रातमें त्याग कर देते है उन्हें वर्षभरमें छह माहके उपवास का फल होता है । रात्रिभोजन को त्याग करनेसे प्रीतिंकर कुमारको फल प्राप्त हुआ था उसकी विस्तृत कथा अन्य ग्रन्थोंमें प्रसिद्ध है । यहाँ उसका सार लिखा जाता है ।

मगध में सुप्रतिष्ठपुर अच्छा प्रसिद्ध शहर था । अपनी सम्पत्ति और सुन्दरतासे वह स्वर्गसे टक्कर लेता था । जिनधर्म का वहाँ विशेष प्रचार था । जिस समय की यह कथा है, उस समय उसके राजा जयसेन थे । जयसेन धर्मज्ञ, नीतिपरायण और प्रजाहितैषी थे ।

यहाँ धनमित्र नामका एक सेठ रहता था । इसकी स्त्रीका नाम धनमित्रा

था । दोनोंही की जैनधर्म पर अखण्ड प्रीति थी । एक दिन सागरसेन नामके अवधिज्ञानी मुनिको आहार देकर इन्होंने उनसे पूछा—प्रभो ! हमें पुत्रसुख होगा या नहीं ? यदि न हों तो हमें व्यर्थकी आशासे अपने दुर्लभ मनुष्य-जीवनको संसारके मोह-मायामें फँसा रखकर, उसका क्यों दुरुपयोग करें ? फिर क्यों न हम पापोंके नाश करनेवाली पवित्र जिनदीक्षा ग्रहण कर आत्महित करें ? मुनिने इनके प्रश्नके उत्तरमें कहा—हाँ अभी तुम्हारी दीक्षाका समय नहीं आया । कुछ दिन गृहवास में तुम्हें अभी और ठहरना पड़ेगा । तुम्हें एक महाभाग और कुलभूषण पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी । वह बड़ा तेजस्वी होगा । उसके द्वारा अनेक प्राणियोका उद्धार होगा और वह इसी भवसे मोक्ष जाएगा । अवधिज्ञानी मुनिकी यह भविष्यवाणी सुनकर दोनों को अपार हर्ष हुआ । सच है, गुरुओंके वचनामृतका पान कर किसे हर्ष नहीं होता ।

अबसे ये सेठ-सेठानी अपना समय जिनपूजा, अभिषेक, पात्रदान आदि पुण्य कर्मोमें अधिक देने लगे । कारण इनका यह पूर्ण विश्वास था कि सुखका कारण धर्म ही है । इस प्रकार आनन्द उत्सवके साथ कुछ दिन बीतने पर धनमित्राने एक प्रतापी पुत्र प्रसव किया । मुनिकी भविष्यवाणी सच हुई । पुत्र जन्मके उपलक्षमें सेठने बहुत उत्सव किया, दान दिया, पूजा प्रभावना की । बन्धु-बाँधवोंको बड़ा आनन्द हुआ । इस नवाजात शिशुको देखकर सबको अत्यन्त प्रीति हुई । इसलिये इसका नाम भी प्रीतिंकर रख दिया गया । दूजेके चाँदकी तरह यह दिनों-दिन बढ़ने लगा । सुन्दरतामें यह कामदेवसे कहीं बढ़कर था, बड़ा भाग्यवान् था और इसके बलके सम्बन्धमें तो कहना ही क्या, जबकि यह चरम शरीरका धारी—इसी भवसे मोक्ष जानेवाला है जब प्रीतिंकर पाँच वर्षका हो गया तब इसके पिताने इसे पढ़ानेके लिये गुरुको सौंप दिया । इसकी बुद्धि बड़ी तीक्ष्ण थी पढ़ लिखकर योग्य विद्वान् बन गया । कई शास्त्रोंमें इसकी अबाधगति हो गई गुरु सेवा रूपी नाव द्वारा इसने शास्त्ररूपी समुद्रका प्रायः अधिकांश पार कर लिया । विद्वान् और धनी होकर भी इसे अभिमान छू तक न गया था । यह सदा लोगोंको धर्मका उपदेश दिया करता और पढ़ाता-लिखाता था । इसमें आलस्य, ईर्ष्या, मत्सरता आदि दुर्गणोंका नाम निशान भी न था । यह सबसे प्रेम करता था । सबके दुःख सुखमें

सहानुभूति रखता । यही कारण था कि इसे सब ही छोटे-बडे हृदयसे चाहते थे । जयसेन इसको ऐसी सज्जनता और परोपकार बुद्धि देखकर बहुत खुश हुए । उन्होंने स्वयं इसका वस्त्राभूषणोंसे आदर सत्कार किया--इसकी इज्जत बढ़ाई ।

यद्यपि प्रीतिंकरको धन दौलतकी कोई कमी नहीं थी परन्तु तब भी एक दिन बैठे-बैठे इसके मनमें आया कि अपनेको भी कमाई करनी चाहिये । कर्त्तव्यशीलोंका यह काम नहीं कि बैठे-बैठे अपने बाप-दादोंकी सम्पत्ति पर मजा-मौज उड़ाकर आलसी और कर्त्तव्यहीन बनें । और न सपूतोंका यह काम ही है । इसलिये मुझे धन कमानेके लिए प्रयत्न करना चाहिये । यह विचार कर उसने प्रतिज्ञा की कि जब तक मैं स्वयं कुछ न कमा लूँगा तब तक ब्याह न करूँगा । प्रतिज्ञाके साथ ही वह विदेशके लिये रवाना हो गया । कुछ वर्षो तक विदेशमें ही रहकर इसने बहुत धन कमाया । खूब कीर्ति अर्जित की । इसे अपने घरसे गए कई वर्ष बीत गये थे, इसलिये अब इसे अपने माता-पिताकी याद आने लगी । फिर यह बहुत दिनों बाहर न रहकर अपना सब माल असबाब लेकर घर लौट आया । सच है पुण्यवानोंकी लक्ष्मी थोड़े ही प्रयत्न से मिल जाती है । प्रीतिंकर अपने माता-पितासे मिला । सबहीको बहुत आनन्द हुआ । जयसेनका प्रीतिंकरकी पुण्यवयानी और प्रसिद्धि सुनकर उस पर अत्यन्त प्रेम हो गया । उन्होंने तब अपनी कुमारी पृथिवीसुन्दरी, और एक दूसरे देशसे आई हुई वसुन्धरा तथा और भी गई सुन्दर-सुन्दर राजकुमारियोंका ब्याह इस महाभागके साथ बड़े ठाट-बाटसे कर दिया । इसके साथ जयसेनने अपना आधा राज्य भी इसे दे दिया । प्रीतिंकरके राज्य प्राप्ति आदिके सम्बन्धकी विशेष कथा यदि जानना हो तो महापुराणका स्वाध्याय करना चाहिये ।

प्रीतिंकर पुण्योदयसे जो राज्यविभूति प्राप्त हुई उसे सुखपूर्वक भोगने लगा । उसके दिन आनन्द-उत्सवके साथ बीतने लगे । इससे यह न समझना चाहिये कि प्रीतिंकर सदा विषयोंमें ही फँसा रहता है । वह धर्मात्मा भी सच्चा था । क्योंकि वह निरन्तर जिन भगवानकी अभिषेक-पूजा करता, जो कि स्वर्ग या मोक्षका सुख देनेवाली और बुरे भावों या पापकर्मोंका नाश करनेवाली है । वह श्रद्धा, भक्ति आदि गुणोंसे युक्त हो पात्रोंको दान देता, जो दान महान्

सुखका कारण है । वह जिनमन्दिरों, तीर्थक्षेत्रों, जिन प्रतिमाओं आदि सप्त क्षेत्रोंकी, जो कि शान्तिरूपी धनके प्राप्त करानेके कारण हैं, जरूरतोंको अपने धनरूपी जल-वर्षासे पूरी करता, परोपकार करना उसके जीवनका एक मात्र उद्देश्य था । वह स्वभावका बड़ा सरल था । विद्वानोंसे उसे प्रेम था । इस प्रकार इस लोक सम्बन्धी और पारमार्थिक कार्योंमें सदा तत्पर रहकर वह अपनी प्रजाका पालन करता रहता था । प्रीतिंकरका समय इस प्रकार बहुत सुखसे बीतता था । एक बार सुप्रतिष्ठ पुरके सुन्दर बगीचेमें सागरसेन नामके मुनि आकर ठहरे थे । उनका वहीं स्वर्गवास हो गया था । उनके बाद फिर इस बगीचेमें आज चारणऋद्धि धारी ऋजुमति ओर विपुलमति मुनि आये । प्रीतिंकर तब बड़े वैभवके साथ भव्यजनोंको लिये उनके दर्शनोंको गया । मुनिराजकी चरणोंकी आठ द्रव्योंसे पूजा की और नमस्कार कर बड़े विनयके साथ धर्मका स्वरूप पूछा—तब ऋजुमति मुनिने उसे इस प्रकार संक्षेपमें धर्मका स्वरूप कहा—

प्रीतिंकर, धर्म उसे कहते हैं जो संसारके दु:खोंसे रक्षाकर उत्तम सुख प्राप्त करा सके । ऐसे धर्मके दो भेद हैं । एक मुनिधर्म और दूसरा गृहस्थ धर्म । मुनियोंका धर्म सर्व त्याग रूप होता है । सांसारिक माया-ममतासे उनका कुछ सम्बन्ध नहीं रहता । और वह उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव आदि दस आत्मिक शक्तियोंसे युक्त होता है । गृहस्थधर्ममें ससारके साथ लगाव रहता है । घरमें रहते हुए धर्मका पालन करना पड़ता है । मुनिधर्म उन लोगोंके लिये है जिनका आत्मा पूर्ण बलवान् है, जिनमें कष्टोंके सहनेकी पूरी शक्ति है और गृहस्थ धर्म मुनिधर्मके प्राप्त करनेकी सीढ़ी है । जिस प्रकार एक साथ सौ-पचास सीढ़ियाँ नहीं चढ़ी जा सकतीं उसी प्रकार साधारण लोगोंमें इतनी शक्ति नहीं होती कि वे एकदम मुनिधर्म ग्रहण कर सकें । उसके अभ्यासके लिये वे क्रम-क्रमसे आगे बढ़ते जाँय, इसलिये पहले उन्हें गृहस्थधर्मका पालन करना पड़ा है । मुनिधर्म और गृहस्थधर्ममें सबसे बड़ा भेद यह है कि, पहला साक्षात् मोक्षका कारण है और दूसरा परम्परासे । श्रावकधर्मका मूल कारण है—सम्यग्दर्शनका पालन । यही मोक्ष-सुखका बीज है । बिना इसके प्राप्त किये ज्ञान, चारित्र वगैरहकी कुछ कीमत नहीं । इस सम्यग्दर्शनको आठ अंगों

सहित पालना चाहिये । सम्यक्त्व पालनेके पहले मिथ्यात्व छोड़ा जाता है । क्योंकि मिथ्यात्व ही आत्माका एक ऐसा प्रबल शत्रु है जो ससारमें इसे अनन्त काल तक भटकाये रहता है और कुगतियोंके असह दु:खोंको प्राप्त कराता है । मिथ्वात्वका संक्षिप्त लक्षण है—जिन भगवान्‌के उपदेश किये तत्व या धर्मसे उलटा चलना और यही धर्मसे उलटापन दु:खका कारण है । इसलिये उन पुरुषोंको, जो सुख चाहते हैं, मित्यात्वके परित्याग पूर्वक शास्त्राभ्यास द्वारा अपनी बुद्धिको काँचके समान निर्मल बनानी चाहिये । इसके सिवा श्रावकोंको मद्य, मास और मधु (शहद) का त्याग करना चाहिये । क्यांकि इनके खानेसे जीवोंको नरकादि दुर्गतियोंमें दु:ख भोगने पड़ते हैं । श्रावकोंके पाँच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत ऐसे बारह व्रत हैं, उन्हें धारण करना चाहिए । रातके भोजनका, चमड़ेमें रखे हुये हींग, जल, घी, तैल आदिका तथा कन्दमूल, आचार और मक्खनका श्रावकोंको खाना उचित नहीं । इनके खानेसे मास-त्यागें-व्रतमें दोष आता है । जुआ खेलना, चोरी करना, परस्त्री सेवन, वेश्या सेवन, शिकार करना, मास खाना, मदिरा पीना, ये सात व्यसन—दु खोको देनेवाली आदतें हैं । कुल, जाति, धन, जन, शरीर सुख, कीर्त्ति, मान-मर्यादा आदिकी नाश करनेवाली है । श्रावकोंको इन सबका दूरसे ही काला मुँह कर देना चाहिये । इसके सिवा जलका छानना, पात्रोको भक्तिपूर्वक दान देना, श्रावकोंका कर्त्तव्य होना चाहिए । ऋषियोंने पात्र तीन प्रकार बतलाये हैं । उत्तम पात्र—मुनि, मध्यम पात्र व्रती श्रावक और जघन्य पात्र—अविरत-सम्यग्दृष्टि । इनके सिवा कुछ लोग और ऐसे हैं, जो दान पात्र होते हैं—दु खी, अनाथ, अपाहिज आदि, जिन्हें कि दयावृद्धिसे दान देना चाहिये । पात्रोंको जो थोड़ा भी दान देते हैं उन्हें उस दानका फल बटबीजकी तरह अनन्त गुणा मिलता है । श्रावकोंके और भी आवश्यक कर्म है, जैसे—स्वर्ग मोक्षके सुखकी कारण जिन भगवानकी जलादि द्रव्यों द्वारा पूजा करना, दूध, दही, घी, सांठेका रस आदि से अभिषेक करना, जिन प्रतिमाओंकी प्रतिष्ठा कराना, तीर्थयात्रा करना आदि । ये सब सुखके कारण और दुर्गतिके दु खोंके नाश करनेवाले हैं । इस प्रकार धार्मिक जीवन बना कर अन्तमे भगवान्‌का स्मरण-चिंतन पूर्वक संन्यास लेना चाहिये । यही जीवनके सफलताका सीधा और सच्चा मार्ग है । इस प्रकार मुनिराज द्वारा

धर्मका उपदेश सुनकर बहुतेरे सज्जनोंने व्रत, नियमादिको ग्रहण किया जैनधर्म पर उनकी गाढ श्रद्धा हो गई । प्रीतिंकरने मुनिराजको नमस्कर कर पुनः प्रार्थना की—हे करुणाके समुद्र योगिराज कृपाकर मुझे मेरे पूर्वभवका हाल सुनाइए । मुनिराजने तब यों कहना शुरू किया—

"प्रीतिंकर, इसी बगीचेमें पहले तपस्वी सागरसेन मुनि आकर ठहरे थे । उनके दर्शनोंके लिये राजा वगैरह प्राय· सब ही नगर निवासी बड़े गाजे-बाजे और आनन्द उत्सवके साथ आये थे । वे मुनिराजकी पूजा-स्तुति कर वापिस शहरमे चले गये । इसी समय एक सियारने इनके गाजे-बाजेके शब्दोंको सुनकर यह समझा कि ये लोग किसी मुर्देको डाल कर गये हैं । सो वह उसे खानेके लिए आया । उसे आता देख मुनिने अवधिज्ञानसे जान लिया कि यह मुर्देको खानेके अभिप्रायसे इधर आ रहा है । पर यह है भव्य और व्रतोंको धारण कर मोक्ष जायगा । इसलिये इसे सुलटाना आवश्यक है । यह विचार कर मुनिराजने उसे समझाया—अज्ञानी पशु, तुझे मालूम नहीं कि पापका परिणाम बहुत बुरा होता है । देख, पापके ही फलसे तुझे आज इस पर्यायमें आना पड़ा और फिर भी तू पाप करनेसे मुँह न मोड़कर मुर्देको खानेके लिए इतना व्यग्र हो रहा है, यह कितने आश्चर्यकी बात है । तेरी इस इच्छाको धिक्कार है । प्रिय, जब तक तू नरकोंमें न गिरे इसके पहले ही तुझे यह महा पाप छोड देना चाहिए । तूने जिनधर्मको न ग्रहण कर आजतक दु·ख उठाया, पर अब तेरे लिए बहुत अच्छा समय उपस्थित है । इसलिए तू इस पुण्य-पथ पर चलना सीख । सियारका होनहार अच्छा था या उसकी काललब्धि आ गई थी । यही कारण था कि मुनिके उपदेशको सुनकर वह बहुत शान्त हो गया । उसने जान लिया कि मुनिराज मेरे हृदयकी वासनाको जान गए । उसे इस प्रकार शान्त देखकर मुनि फिर बोले—प्रिय, तू और व्रतोंको धारण नहीं कर सकता, इसलिए सिर्फ रातमें खाना-पीना ही छोड़ दे । यह व्रत सर्व व्रतोंका मूल है, सुखका देनेवाला है और चित्तका प्रसन्न करनेवाला है । सियारने उपकारी मुनिराजके वचनोंको मानकर रात्रिभोजन-त्याग-व्रत ले लिया । कुछ दिनों तक तो इसने केवल इसी व्रतको पाला । इसके बाद इसने मांस वगैरह भी छोड़ दिया । इसे जो कुछ थोड़ा पवित्र खाना मिल जाता, यह उसीको खाकर रह

जाता। इस वृत्तिसे इसे सन्तोष बहुत हो गया था। बस यह इसी प्रकार समय बिताता और मुनिराजके चरणोंका स्मरण किया करता।

इस प्रकार कभी खानेको मिलने और कभी न मिलनेसे यह सियार बहुत ही दुबला हो गया। ऐसी दशामें एक दिन इसे केवल सूखा भोजन खानेको मिला। समय गर्मीका था। इसे बड़े जोरकी प्यास लगी। इसके प्राण छटपटाने लगे। यह एक कुँए पर पानी पीनेको गया। भाग्यसे कुँएका पानी बहुत नीचा था। जब यह कुँएमें उतरा तो इसे अँधेरा ही अँधेरा दीखने लगा। कारण सूर्यका प्रकाश भीतर नही पहुँच पाता था। इसलिए सियारने समझा कि रात हो गई, सो वह बिना पानी पीए ही कुँएके बाहर आ गया। बाहर आकर जब उसने दिन देखा तो फिर वह भीतर उतरा और भीतर पहलेसा अँधेरा देखकर रातके भ्रमसे फिर लौट आया। इस प्रकार वह कितनी ही बार आया-गया, पर जल नहीं पी पाया। अन्तमें वह इतना अशक्त हो गया कि उससे कुँएसे बाहर नहीं आया गया। उसने तब उसे घोर अँधेरेको देखकर सूरजको अस्त हुआ समझ लिया और वहीं वह संसार समुद्रसे पार करनेवाले अपने गुरु मुनिराजका स्मरण-चिन्तन करने लगा। तृषा रूपी आग उसे जलाए डालती थी, तब भी वह अपने व्रतमें बड़ा दृढ़ रहा। उसके परिणाम क्लेशरूप या आकुल-व्याकुल न होकर बड़े शान्त रहे। उसी दशामें वह मरकर कुबेरदत्त और उसकी स्त्री धनमित्राके तू प्रीतिंकर पुत्र हुआ है। तेरा यही अन्तिम शरीर है। अब तू कर्मोंका नाश कर मोक्ष जायगा। इसलिए सत्पुरुषोंका कर्त्तव्य है कि वे कष्ट समयमें व्रतोंकी दृढ़तासे रक्षा करें।" मुनिराज द्वारा प्रीतिंकरका यह पूर्व जन्मका हाल सुन उपस्थित मंडलीकी जिनधर्म पर अचल श्रद्धा हो गई। प्रीतिंकरको अपने इस वृत्तान्तसे बड़ा वैराग्य हुआ। उसने जैनधर्मकी बहुत प्रशंसा की और अन्तमें उन स्वपरोपकारके करनेवाले मुनिराजोंको भक्तिसे नमस्कार कर व्रतोंके प्रभावको हृदयमें विचारता हुआ वह घर पर आया।

मुनिराजके उपदेशका उस पर बहुत गहरा असर पड़ा। उसे अब संसार अस्थिर, विषयभोग दुःखोंके देनेवाले, शरीर अपवित्र वस्तुओंसे भरा, महाघिनौना और नाश होनेवाला, धन-दौलत बिजलीकी तरह चंचल और

केवल बाहरसे सुन्दर देख पड़नेवाली तथा स्त्री-पुत्र, भाई-बन्धु आदि ये सब अपने आत्मासे पृथक् जान पड़ने लगे । उसने तब इस मोहजालकी, जो केवल फँसाकर संसारमें भटकानेवाला है, तोड़ देना ही उचित समझा । इस शुभ सकल्प दृढ़ के होते ही पहले प्रीतिकरने अभिषेक पूर्वक भगवान्की सब सुखों को देनेवाली पूजा की, खूब दान किया और दुखी, अनाथ, अपाहिजोंकी सहायता की । अन्तमें वह अपने प्रियंकर पुत्रको राज्य देकर अपने बन्धु, बान्धवोंकी मम्मति योग लेनेके लिए विपुलाचल पर भगवान् वर्द्धमानके समवशरणमें गया और उन त्रिलोक पूज्य भगवान्के पवित्र दर्शन कर उसने भगवानके द्वारा जिनदीक्षा ग्रहण कर ली । इसके बाद प्रीतिकर मुनिने खूब दु:सह तपस्या की और अन्तमें शुक्लध्यान द्वारा घातिया कर्मोंका नाश केवलज्ञान प्राप्त किया । अब वे लोकालोकके सब पदार्थोको हाथकी रेखाओंके समान साफ-साफ जानने देखने गये । उन्हें केवलज्ञान प्राप्त किया सुन विद्याधर, चक्रवर्त्ती, स्वर्गके देव आदि बड़े-बड़े महापुरुष उनके दर्शन-पूजनको आने लगे । प्रीतिंकर भगवान्ने तब ससारतापको नाश करनेवाले परम पवित्र उपदेशामृतसे अनेक जीवोको दु:खोंसे छुटाकर सुखी बनाये । अन्तमें अघातिया कर्मोंका नाश कर वे परम धाम-मोक्ष सिधार गये । आठ कर्मोंका नाश कर आठ आत्मिक महान् शक्तियोंको उन्होंने प्राप्त किया । अब वे संसारमें न आकर अनन्त काल तक वहीं रहेंगे । वे प्रीतिंकर स्वामी मुझे शांति प्रदान करें । प्रीतिंकरका यह पवित्र और कल्याण करनेवाला चरित आप भव्यजनोंको और मुझे सम्यग्ज्ञानके लाभ का कारण हो । यह मेरी पवित्र भावना है ।

एक अत्यन्त अज्ञानी पशुओंमें जन्में सियारने भगवान्के पवित्र धर्मका थोड़ा सा आश्रय पर अर्थात् केवल रात्रि-भोजन-त्याग व्रत स्वीकार कर मनुष्य जन्म लिया और उसमें खूब सुख भोगकर अन्तमें अविनाशी मोक्ष-लक्ष्मी प्राप्त की । तब आप हम लोग भी क्यों न इस अनन्त सुखकी प्राप्ति लिए पवित्र जैनधर्ममें अपने विश्वास को दृढ़ करें ।

---

१०९. दान करनेवालोंकी कथा

जगद्गुरु तीर्थंकर भगवानको नमस्कार कर पात्र दानके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है ।

जिन भगवानने मुखरूपी चन्द्रमासे जन्मी पवित्र जिनवाणी ज्ञानरूपी महा समुद्रसे पार करनेके लिए मुझे सहायता दें, मुझे ज्ञान-दान दें ।

उन साधु रत्नोंको मैं भक्तिसे नमस्कार करता हूँ, जो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान ओर सम्यक्चारित्रके धारक हैं, परिग्रह कनक-कामिनी आदिसे रहित वीतरागी हैं और सांसारिक सुख तथा सुखकी प्राप्तिके कारण हैं ।

पूर्वाचार्योंने दानको चार हिस्सोंमें बाँटा है, जैसे आहार-दान, औषधिदान, शास्त्रदान और अभयदान । और ये ही दान पवित्र हैं । योग्य पात्रोंको यदि ये दान दिये जायें तो इनका फल अच्छी जमीनमें बोये हुए बड़के बीजकी तरह अनन्त गुणा होकर फलता है । जैसे एक ही बावड़ीका पानी अनेक वृक्षोंमें जाकर नाना रूपमें परिणत होता है उसी तरह पात्रोंके भेदसे दानके फलमें भी भेद हो जाता है । इसलिए जहाँतक बने अच्छे सुपात्रोंको दान देना चाहिए । सब पात्रोंमें जैनधर्मका आश्रय लेनेवालेको अच्छा पात्र समझना चाहिए, औरोंको नहीं । क्योंकि जब एक कल्पवृक्ष हाथ लग गया फिर औरोंसे क्या लाभ ? जैनधर्ममें पात्र तीन बतलाये गये हैं । उत्तम पात्र—मुनि, मध्यम पात्र—व्रती श्रावक और जघन्य पात्र—अव्रतसम्यग्दृष्टि । इन तीन प्रकारके पात्रोंको दान देकर भव्य पुरुष जो सुख लाभ करते हैं उसका वर्णन मुझसे नहीं किया जा सकता । परन्तु संक्षेपमें यह समझ लीजिए कि धन-दौलत, स्त्री-पुत्र, खान-पान, भोग-उपभोग आदि जितनी उत्तम-उत्तम सुख सामग्री है वह तथा इन्द्र, नागेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि महापुरुषोंकी पदवियाँ, अच्छे सत्पुरुषोंकी सगति, दिनों-दिन ऐश्वर्यादिकी बढ़वारी, वे सब पात्रदानके फलसे प्राप्त होते हैं । न यही, किन्तु इस पात्रदानके फलसे मोक्ष प्राप्तिभी सुलभ है । राजा श्रेयांसने दानके ही फलसे मुक्ति लाभ किया था । इस प्रकार पात्रदानका अनन्त फल जानकर बुद्धिवानोंको इस ओर अवश्य अपने ध्यानको खींचना चाहिए । जिन-जिन सत्पुरुषोंने पात्रदानका आज तक फल पाया है, उन सबके नाम

मात्रका उल्लेख भी जिन भगवान्‌के बिना और कोई नहीं कर सकता, तब उनके सम्बन्धमें कुछ कहना या लिखना मुझसे मतिहीन मनुष्योंके लिए तो असंभव ही है । आचार्यों ने ऐसे दानियोंमें सिर्फ चार जनोंका उल्लेख शास्त्रोंमें किया है । इस कथामें उन्हीं का संक्षिप्त चरित मैं पुराने शास्त्रोंके अनुसार लिखूँगा । उन दानियोंके नाम हैं-श्रीषेण, वृषभसेना, कौण्डेश और एक पशु बराह-सुअर । इनमें श्रीषेणने आहारदान, वृषभसेनाने औषधिदान, कौण्डेशने शास्त्रदान और सुअरने अभयदान दिया था । उनकी क्रमसे कथा लिखी जाती है ।

प्राचीन कालमे श्रीषेण राजाने आहारदान दिया । उसके फलसे वे शान्तिनाथ तीर्थंकर हुए । श्रीशान्तिनाथ भगवान् जय लाभ करें, जो सब प्रकारका सुख देकर अन्तमें मोक्ष सुखके देनेवाले हैं और जिनका पवित्र चरितका सुनना परम शान्तिका कारण है । ऐसे परोपकारी भगवान्‌का परम पवित्र और जीव मात्रका हित करनेवाला चरित आप लोग भी सुनें, जिसे सुनकर आप सुखलाभ करेंगे ।

प्राचीन कालमें इसी भारतवर्षमें मलय नामका एक अति प्रसिद्ध देश था । रत्नसचयपुर इसीकी राजधानी थी । जैनधर्मका इस सारे देशमें खूब प्रचार था । उस समय इसके राजा श्रीषेण थे । श्रीषेण धर्मज्ञ, उदारमना, न्यायप्रिय, प्रजाहितैषी, दानी और बडे विचारशील थे । पुण्यसे प्राय अच्छे-अच्छे सभी गुण उन्हें प्राप्त थे । उनका प्रतिद्वन्द्वी या शत्रु कोई न था । वे राज्य निर्विघ्न किया करते थे । सदाचारमें उस समय उनका नाम सबसे ऊँचा था। उनकी दो रानियाँ थीं । उनके नाम थे सिहनन्दिता और अनन्दिता । दोनों ही अपनी-अपनी सुन्दरतामें अद्वितीय थीं, विदुषी और सती थीं । इन दोनोंके पुत्र हुए । उनके नाम इन्द्रसेन और और उपेन्द्रसेन थे । दोनों ही भाई सुन्दर थे, गुणी थे, शूरवीर थे और हृदयके बड़े शुद्ध थे । इस प्रकार श्रीषेण धन-सम्पत्ति, राज्य-वैभव, कुटुम्ब-परिवार आदिसे पूरे सुखी थे । प्रजाका नीतिके साथ पालन करते हुए वे अपने समयकी बडे आनन्दके साथ बिताते थे ।

यहाँ एक सात्यकि ब्राह्मण रहता था । इसकी स्त्रीका नाम जंघा था । इसके सत्यभामा नामकी एक लडकी थीं । रत्नसचयपुरके पास बल नामका

एक गाँव बसा हुआ था । उसमें धरणीजट नामका ब्राह्मण वेदोंका अच्छा विद्वान् था । अग्नीला इसकी स्त्री थी अग्नीलासे दो लडके हुए । उनके नाम इन्द्रभूति और अग्निभूति थे । इसके यहाँ एक दासी-पुत्र (शुद्र) का लड़का रहता था । उसका नाम कपिल था । धरणीजट जब अपने लड़कोंको वेदादिक पढ़ाया करता, उस समय कपिल भी बड़े ध्यानसे उस पाठको चुपचाप छुपे हुए सुन लिया करता था । भाग्यसे कपिलकी बुद्धि बड़ी तेज थी । सो वह अच्छा विद्वान बन गया, इसका धरणीजटको बडा आश्चर्य हुआ । पर सच तो यह है कि बेचारा मनुष्य करे भी क्या, बुद्धि तो कर्मोंके अनुसार होती है न ? जब सर्व साधारणमें कपिलके विद्वान ही जानेकी चर्चा उठी तो धरणीजट पर ब्राह्मण लोग बडे बिगड़े और उसे डराने लगे कि तूने यह बड़ा भारी अन्याय किया जो दासी-पुत्रको पढ़ाया । इसका फल तुझे बहुत बुरा भोगना पडेगा । अपने पर अपने जातीय भाइयोंको इस प्रकार क्रोध उगलते देख धरणीजट बडा घबराया । तब डरसे उसने कपिलको अपने घरसे निकाल दिया । कपिल उस गॉवसे निकल रास्तेमें ब्राह्मण बन गया और इसी रूपमे वह रत्नसचयपुर आ गया । कपिल विद्वान् और सुन्दर था । इसे उस सात्यकि ब्राह्मणने देखा, जिसका कि ऊपर जिकर आ चुका है । इसके गुण रूपको देखकर सात्यकि बहुत प्रसन्न हुआ । उसके मन पर यह बहुत चढ गया । तब सात्यकि इसे ब्राह्मण ही समझ अपनी लड़की सत्यभामाका इसके साथ ब्याह कर दिया । कपिल अनायास इस स्त्री-रत्नको प्राप्त कर सुखसे रहने लगा । राजाने इसके पाण्डित्यकी तारीफ सुन इसे अपने यहाँ पुराण कहनेको रख लिया । इस तरह कुछ वर्ष बीते । एक बार सत्यभामा ऋतुमती हुई । सो उस समय भी कपिलने इससे संसर्ग करना चाहा । उसके इस दुराचारको देखकर सत्यभामाको इसके विषयमें सन्देह हो गया । उसने इस पापीको ब्राह्मण न समझ इससे प्रेम करना छोड दिया । वह इससे अलग रह दु:खके साथ अपनी जिन्दगी बिताने लगी ।

इधर धरणीजटके कोई ऐसा पापका उदय आया कि जिसे उसकी सब धन-दौलत बरबाद हो गई । वह भिखारी-सा हो गया । उसे मालूम हुआ कि कपिल रत्नसचयपुरमें अच्छी हालतमें है । राजा द्वारा उसे धन-मान खूब प्राप्त है । वह तब उसी समय सीधा कपिलके पास आया । उसे दूर हीसे देखकर

कपिल मन ही मन धरणीजट पर बड़ा गुस्सा हुआ । अपनी बढ़ी हुई मान-मर्यादाके समय इसका अचानक आ जाना कपिलको बहुत खटका । पर वह कर क्या सकता था । उसे साथ ही उस बातका बड़ा भय हुआ । कि कहीं वह मेरे सम्बन्धमें लोगोंको भड़का न दें । यही सब विचार कर वह उठा और बड़ी प्रसन्नतासे सामने जाकर धरणाजटको इसने नमस्कार किया और बड़े मानसे लाकर उसे ऊँचे आसन पर बैठाया । इसके बाद उसने—पिताजी, मेरी माँ, भाई आदि सब सुखसे तो हैं न ? इस प्रकार कुशल समाचार पूछ कर धरणीजष्टको स्नान, भोजनादि कराया और उसका वस्त्रादिसे खूब सत्कार किया । फिर सबसे आगे एक खास मानकी जगह बैठाकर कपिलने सब लोगों का धरणीजटका परिचय कराया कि ये ही मेरे पिताजी हैं । बड़े विद्वान् और आचार-विचारवान् हैं । कपिलने यह सब समाचार इसीलिए किया था कि कहीं उसकी माताका सब भेद खुल न जाय । धरणीजट द्ररिद्री हो रहा था । धनकी उसे चाह थी ही, सो उसने उसे अपना पुत्र मान लेनेमें कुछ भी आनाकानी न की । धनके लोभसे उसे यह पाप स्वीकार कर लेना पड़ा । ऐसे लोभको धिक्कार है, जिसके वश हो मनुष्य हर एक पापकर्म कर डालता है । तब धरणीजट वहीं रहने लग गया । यहाँ रहते इसे कई दिन हो चुके । सबके साथ इसका थोड़ा बहुत परिचय भी हो गया । एक दिन मौका पाकर सत्यभामाने इसे कुछ थोड़ा बहुत द्रव्य देकर एकान्तमें पूछा—महाराज, आप ब्राह्मण हैं और मेरा विश्वास है कि ब्राह्मण देव कभी झूठ नहीं बोलते । इसलिए कृपाकर मेरे सन्देहको दूर कीजिए । मुझे आपके इन कपिलजीका दुराचार देख यह विश्वास नहीं होता कि ये आप सरीखे पवित्र ब्राह्मणके कुलमें उत्पन्न हुए हों, तब क्या वास्तवमें ये ब्राह्मण ही हैं या कुछ गोलमाल है । धरणीजटको कपिलसे इसलिए द्वेष हो ही रहा था कि भरी सभामें कपिलने उसे अपना पिता बता उसका अपमान किया था । और दूसरे उसे धनकी चाह थी, सो उसके मनके माफिक धन सत्यभामाने उसे पहले ही दे दिया था । तब वह कपिलकी सच्ची हालत क्यों छिपायेगा ? जो हो, धरणीजट सत्यभामाको सब हाल कहकर और प्राप्त धन लेकर रत्नसंचयपुरसे चल दिया । सुनकर कपिल पर सत्यभामाकी घृणा पहलेसे कोई सौ गुणी बढ़ गई । उसने तब उससे

बोलना-चालना तक छोड़कर एकान्तवास स्वीकार कर लिया, पर अपने कुलाचारकी मान-मर्यादाको न छोड़ा । सत्यभामाको इस प्रकार अपनेसे घृणा करते देख कपिल उससे बलात्कार करने पर उतारू हो गया । तब सत्यभामा घरसे भागकर श्रीषेण महाराजकी शरण आ गई और उसने सब हाल उनसे कह दिया । श्रीषेणने तब उस पर दयाकर उसे अपनी लड़कीकी तरह अपने यहीं रख लिया । कपिल सत्यभामाके अन्यायकी पुकार लेकर श्रीषेणके पास पहुँचा । उसके व्यभिचारकी हालत उन्हें पहले ही मालूम हो चुकी थी, इसलिए उसकी कुछ न सुनकर श्रीषेणने उसे लम्पटी और कपटी ब्राह्मणको अपने देश हीसे निकाल दिया । सो ठीक ही है राजाको सज्जनोंकी रक्षा और दुष्टोंको सजा करनी ही चाहिए । ऐसा न करने पर वे अपने कर्त्तव्यसे च्युत होते है और प्रजाके धनहारी हैं ।

एक दिन श्रीषेणके यहाँ आदित्यगति और अरिंजय नामके दो चारणऋद्धिके धारी मुनिराज पृथिवी को अपने पाँवोंसे पवित्र करते हुए आहारके लिये आये । श्रीषेणने बड़ी भक्तिसे उनका सम्मान कर उन्हें पवित्र आहार कराया । इस पात्रदानसे उनके यहाँ स्वर्गके देवोंने रत्नोंकी वर्षा की, कल्पवृक्षों ने सुन्दर और सुगन्धित फूल बरसाये, दुन्दुभी बाजे बजे, मन्द-सुगन्ध वायु बहा और जय-जयकार हुआ, खूब बधाइयाँ मिलीं । और सच है, सुपात्रोंको दिये दानके फलसे क्या नहीं हो पाता । इसके बाद श्रीषेणने और बहुत वर्षोंतक राज्य-सुख भोगा । अन्तमें मरकर वे धातकीखण्ड द्वीपके पूर्वभागकी उत्तर-कुरु भोगभूमि में उत्पन्न हुए । सच है, साधुओंकी संगतिसे जब मुक्ति भी प्राप्त हो सकती है तब कौन ऐसी उससे भी बढकर वस्तु होगी जो प्राप्त न हो । श्रीषेणकी दोनों रानियाँ तथा सत्यभामा भी इसी उत्तरकुरु भोगभूमिमें जाकर उत्पन्न हुई । से सब इस भोगभूमिमें दस प्रकारके कल्पवृक्षसे मिलनेवाले सुखोको भोगते हैं और आनन्दसे रहते हैं । यहाँ इन्हें कोई खाने-कमानेकी चिन्ता नहीं करना पड़ती है । पुण्योदयसे प्राप्त हुए भोगोंको निराकुलतासे ये आयु पूर्ण होनेतक भोगेगे । यहाँकी स्थिति बड़ी अच्छी है । यहाँके निवासियोंको कोइ प्रकारकी बीमारी, शोक, चिन्ता, दरिद्रता आदिसे होनेवाले कष्ट नही सता पाते । इनकी कोई प्रकारके अपघातसे मौत नहीं होती । यहाँ किसीके

साथ शत्रुता नहीं होती । यहाँ न अधिक जाड़ा पडता और न अधिक गर्मी होती है; किन्तु सदा एकसी सुन्दर ऋतु रहती है । यहाँ न किसीकी सेवा करनी पडती है और किसीका बैरी ही है । यहाँके लोगोंके भाव सदा पवित्र रहते हैं । आयु पूरी होने तक ये इसी तरह सुखसे रहते हैं । अन्तमें स्वाभाविक सरल भावोंसे मृत्यु लाभ कर ये दानी महात्मा कुछ बाकी बचे पुण्य फलसे स्वर्गमें जाते हैं । श्रीषेणने भी भोग भूमिका खूब सुख भोगा । अन्तमें वे स्वर्गसे गये । स्वर्गमें भी मनचाहा दिव्य सुख भोगकर अन्तमें वे मनुष्य हुए । इस जन्ममें ये कई बार अच्छे-अच्छे राजघरानेमें उत्पन्न हुए । पुण्यसे फिर स्वर्ग गये । वहाँकी आयु पूरी कर अबकी बार भारतवर्षके सुप्रसिद्ध शहर हस्तिनापुर के राजा विश्वसेनकी रानी ऐराके यहाँ इन्होने अवतार लिया । यही सोलहवें श्रीशान्तिनाथ तीर्थकरके नामसे ससारमें प्रख्यात हुए । इनके जन्म समयमें स्वर्ग के देवोंने आकर बडा उत्सव किया था, इन्हें सुमेरु पर्वत पर ले जाकर क्षीरसमुद्र स्फटिकसे पवित्र और निर्मल जलसे इनका अभिषेक किया था । भगवान् शान्तिनाथने अपना जीवन बडी ही पवित्रताके साथ बिताया । उनका जीवन ससारका आदर्श जीवन है । अन्तमें योगी हो इन्होने धर्मका पवित्र उपदेश देकर अनेक जनोको ससारसे पार किया, दु खोंसे उनकी रक्षा कर उन्हे सुखी किया । अपना ससारके प्रति जो कर्त्तव्य था उसे पूरा कर इन्होंने निर्वाण लाभ किया । यह सब पात्रदानका फल है । इसलिये जो लोग पात्रोंको भक्तिसे दान देंगे वे भी नियमसे ऐसा ही उच्च सुख लाभ करेंगे । यह बात ध्यानमें रखकर सत्पुरुषोंका कर्त्तव्य है, कि वे प्रतिदिन कुछ न कुछ दान अवश्य करें । यही दान स्वर्ग और मोक्षके सुखका देनेवाला है ।

मूलसघमें कुन्दकुन्दाचार्यकी परम्परामें श्रीमल्लिभूषण भट्टारक हुए । रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रके धारी थे । इन्हीं गुरु महाराज की कृपासे मुझ अल्पबुद्धि नेमिदत्त ब्रह्मचारीने पात्रदानके सम्बन्धमें श्रीशान्तिनाथ भगवानकी पवित्र कथा लिखी है । यह कथा मेरे परम शान्तिकी कारण हो ।

---

११०. औषधिदानकी कथा

जिन भगवान जिनवाणी और जैन साधुओंके चरणोंको नमस्कार कर औषधिदानके सम्बन्धकी कथा लिखी जाती है ।

निरोगी होना, चेहरे पर सदा प्रसन्नता रहना, धनादि विभूतिका मिलना, ऐश्वर्यका प्राप्त होना, सुन्दर होना, तेजस्वी और बलवान् होना और अन्तमें स्वर्ग या मोक्षका सुख प्राप्त करना ये सब औषधिदानके फल हैं । इसीलिये जो सुखी होना चाहते है। उन्हें निर्दोष औषधिदान करना उचित है । इस औषधिदानके द्वारा अनेक सज्जनोंने फल प्राप्त किया है, उन सबके सम्बन्धसमें लिखना औरोंके लिये नहीं तो मुझ अल्पबुद्धिके लिये तो अवश्य असम्भव है । उनमेंसे एक वृषभसेनाको पवित्र चरित यहाँ संक्षिप्तमें लिखा जाता है । आचार्योंने जहाँ औषधिदाम देनेवालेका उल्लेख किया है वहाँ वृषभसेनाका ही प्राय· कथन आता है । उन्हींका अनुकरण मैं भी करता हूँ ।

भगवानके जन्मसे पवित्र इस भारतवर्षका जनपद नामके देशमें नाना प्रकार उत्तमोत्तम सम्पत्तिसे भरा अतएव अपनी सुन्दरतासे स्वर्गकी शोभाको नीची करनेवाला कावेरी नामका नगर है । जिस समयकी वह कथा है, उस समय कावेरी नगरके राजा उग्रसेन थे । उग्रसेन प्रजाके सच्चे हितैषी ओर राजनीतिके अच्छे पण्डित थे ।

यहाँ धनपति नामका एक अच्छा सद्‌गृहस्थ सेठ रहता था । जिन भगवान की पूजा-प्रभावनादिसे उसे अत्यन्त प्रेम था । इसकी स्त्री धनश्री इसके घरकी मानों दूसरी लक्ष्मी थी । धनश्री सती और बड़े सरल मनकी थी । पूर्व पूण्यंसे इसके वृषभसेना नामकी एक देवकुमारीसी सुन्दरी और सौभाग्यवती लड़की हुई । सच है, पुण्यके उदयसे क्या प्राप्त नही होता । वृषभसेनाकी धाय रूपवती इसे सदा नहाया-धुलाया करती थी । इसके नहानेका पानी बह-बह कर एक गड्ढेमें जमा हो गया था । एक दिनकी बात है कि रूपमती वृषभसेनाको नहला रही थी । इसकी समय एक महारोगी कुत्ता उस गड्ढेमें, जिसमें कि वृषभसेनाके नहानेका पानी इकट्ठा हो रहा था, गिर पड़ा । क्या आश्चर्यकी बात है कि जब वह उस पानीमेंसे निकला तो बिलकुल नीरोग देख पड़ा ।

रूपवती उसे देखकर चकित हो रही है। उसने सोचा—केवल साधारण जलसे इस प्रकार रोग नहीं जा सकता। पर यह वृषभसेनाके नहानेका पानी है। इसमें इसके पुण्यका कुछ भाग जरूर होना चाहिये। जान पड़ता है वृषभसेना कोई बड़ी भाग्यशालिनी लड़की है। ताज्जुब नहीं कि यह मनुष्य रूपिणी कोई देवी हो! नहीं तो इसके नहानेके जलमें ऐसी चकित करनेवाली करामात हो ही नहीं सकती। इस पानीकी और परीक्षा कर देख लूँ, जिससे और भी दृढ़ विश्वास हो जायगा कि यह पानी सचमुच ही क्या रोगनाशक है?

तब रूपवती थोड़ेसे उस पानीको लेकर अपनी माँके पास आई। इसकी माँकी आँखें कोई बारह वर्षोंसे खराब हो रही थी। इससे वह बड़ी दु:खमें थी। आँखोंको रूपवतीने इस जलसे धोकर साफ किया और देखा तो उनका रोग बिलकुल जाता रहा। वे पहलेसी बड़ी सुन्दर हो गई। रूपवतीको वृषभसेनाके पुण्यवती होनेमें जब कोई सन्देह न रह गया। इस रोग नाश करनेवाले जलके प्रभावसे रूपवतीको चारों ओर बड़ा प्रसिद्धि हो गई। बड़ी-बड़ी दूरके रोगी अपने रोग का इलाज करानेको आने लगे। क्या आँखके रोगको, क्या पेटके रोगको, क्या सिर सम्बन्धी पीड़ाओंकी और क्या कोढ़ वगैरह रोगोंको, यही नहीं किन्तु जहर सम्बन्धी असाध्यसे असाध्य रोगोंको भी रूपवती केवल एक इसी पानीसे आराम करने लगी। रूपवतीको इससे बड़ी प्रसिद्ध हो गई।

उग्रसेन और मेघपिंगल राजाकी पुरानी शत्रुता चली आ रही थी। इस समय उग्रसेनने अपने मन्त्री रणपिंगलको मेघपिंगल पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा दी। रणपिंगल सेना लेकर मेघपिंगल पर जा चढ़ा और उसके सारे देशको उसने घेर लिया। मेघपिंगलने शत्रुको युद्धमें पराजित करना कठिन समझ दूसरी ही युक्तिसे उसे देशसे निकाल बाहर करना विचारा और इसके लिये उसने यह योजना की कि शत्रुकी सेनामें जिन-जिन कुँए, बावड़ीसे पीनेको जल आता था उन सबमें अपने चतुर जासूसों द्वारा विष घुलवा दिया। फल यह हुआ कि रणपिंगलकी बहुतसी सेना तो मर गई और बची हुई सेनाको साथ लिये वह स्वयं भी भाग कर अपने देश लौट आया। उसकी सेना पर तथा उस पर जो विषका असर हुआ था, उसे रूपवतीने उसी जलसे आराम किया।

गुरुओंके वचनामृतसे जैसे जीवोंको शान्ति मिलती है रणपिंगलको उसी प्रकार शान्ति रूपवतीके जलसे मिली और वह रोगमुक्त हुआ।

रणपिंगलका हाल सुनकर उग्रसेन को मेघपिंगल पर बड़ा क्रोध आया तब स्वयं उन्होंने उस पर चढ़ाई की। उग्रसेनने अबकी बार अपने जानते सावधानी रखनेमें कोई कसर न की। पर भाग्यका लेख किसी तरह नहीं मिटता। मेघपिंगलका चक्र उग्रसेन पर भी चल गया। जहर मिले जलको पीकर उनकी भी तबियत बहुत बिगड़ गई। तब जितनी जल्दी उनसे बनसका अपनी राजधानीमें उन्हें लौट आना पड़ा। उनका भी बड़ा ही अपमान हुआ। रणपिंगलसे उन्होंने, वह कैसे आराम हुआ था, इस बाबत पूछा। रणपिंगलने रूपवतीका जल बतलाया। उग्रसेन तब उसी समय अपने आदमियोंको जल ले आनेके लिये सेठके यहाँ भेजा। अपनी लड़की का स्नान-जल लेनेको राजाके आदमियोंको आया देख सेठानी धनश्रीने अपने स्वामीसे कहा—क्योंजी, अपनी वृषभसेनाका स्नान-जल राजाके सिर पर छिड़का जाय यह तो उचित नहीं जान पड़ता। सेठने कहा—तुम्हारा यह कहना ठीक है, परन्तु जिसके लिये दूसरा कोई उपाय नहीं तब क्या किया जाय। इसमें अपने बसकी क्या बात है ? हम तो न जान-बूझकर ऐसा करते हैं और न सच्चा हाल किसीसे छुपाते ही हैं, तब इससे अपना तो कोई अपराध नहीं हो सकता। यदि राजा साहबने पूछा तो हम सब हाल उनसे यथार्थ कह देंगे। सच है, अच्छे पुरुष प्राण जाने पर भी झूठ नहीं बोलते। दोनोंने विचार कर रूपवतीको जल देकर उग्रसेनके महल पर भेजा। रूपवतीने उस जलको राजाके सिर पर छिड़क कर उन्हें आराम कर दिया। उग्रसेन रोगमुक्त हो गये। उन्हें बहुत खुशी हुई। रूपवतीसे उन्होंने उस जलका हाल पूछा। रूपवती कोई बात न छुपाकर जो बात सच्ची थी वह राजासे कह दी। सुनकर राजाने धनपति सेठको बुलाया ओर उसका बड़ा आदर-सम्मान किया। वृषभसेनाका हाल सुनकर ही उग्रसेनकी इच्छा उसके साथ ब्याह करनेकी हो गई थी और इसीलिये उन्होंने मौका पाकर धनपतिसे अपनी इच्छा कह सुनाई। धनपतिनेउसके उत्तरमें कहा—राजराजेश्वर, मुझे आपकी आज्ञा मान लेनेमें कोई रुकावट नहीं है। पर इसके साथ आपको स्वर्ग-मोक्षकी देनेवाली और जिसे इन्द्र, स्वर्गवासी देव, चक्रवर्ती, विद्याधर,

राजे-महाराजे आदि महापुरुष बड़ी भक्तिके साथ करते है। ऐसी अष्टाह्निक पूजा करनी होगी और भगवानका खूब उत्सवके साथ अभिषेक करना होगा। सिवा इसके आपके यहाँ जो पशु-पक्षी पींजरोंमें बन्द है, उन्हें तथा कैदियोंको छोड़ना होगा । ये सब बातें आप स्वीकार करें तो मैं वृषभसेनाका ब्याह आपके साथ कर सकता हूँ । उग्रसेनने धनपतिकी सब बातें स्वीकार कीं । और उसी समय उन्हें कार्यमें भी परिणत कर दिया ।

वृषभसेनाका ब्याह हो गया । सब रानियोंमें पट्टरानीका सौभाग्य उसे ही मिला । राजाने अब अपना राजकीय कामोंसे बहुत कुछ सम्बन्ध कम कर दिय । उनका प्रायः समय वृषभसेनाके साथ सुखोपभोगमें जाने लगा । वृषभसेना पुण्योदयसे राजाकी खास प्रेम-पात्र हुई । स्वर्ग सरीखे सुखोंको वह भोगने लगी । यह सब कुछ होने पर भी वह अपने धर्म-कर्मको थोड़ा भी न भूल गई थी । वह जिन भगवानकी सदा जलादि आठ द्रव्योंसे पूजा करती, उनका अभिषेक करती, साधुओंको चारों प्रकारका दान देती, अपनी शक्तिके अनुसार व्रत, तप, शील, संयमादिका पालन करती और धर्मात्मा सत्पुरुषोंका अत्यन्त प्रेमके साथ आदर-सत्कार करती । और सच है, पुण्योदयसे जो उन्नति हुई, उसका फल तो यही है कि साधर्मियोंसे प्रेम हो, हृदयमें उनके प्रति उच्च भाव हों । वृषभसेना अपना जो कर्त्तव्य था, उसे पूरा करती, भक्तिसे जिनधर्मकी जितनी बनती उतनी सेवा करती और सुखसे रहा करती थी ।

राजा उग्रसेनके यहाँ बनारसका राजा पृथिवीचन्द्र कैद था । और वह अधिक दुष्ट था । पर उग्रसेनका तो तब भी यही कर्त्तव्य था कि वे अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार ब्याहके समय उसे भी छोड़ देते । परऐसा उन्होंने नहीं किया । यह अनुचित हुआ । अथवा यों कहिये कि जो अधिक दुष्ट होते हैं उनका भाग्य ही ऐसा होता है जो वे मौके पर भी बन्धन मुक्त नहीं हो पाते ।

पृथिवीचन्द्रकी रानीका नाम नारायणदत्ता था । उसे आशा थी कि उग्रसेन अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार वृषभसेनाके साथ ब्याहके समय मेरे स्वामीको अवश्य छोड़ देंगे । पर उसकी वह आशा व्यर्थ हुई । पृथिवीचन्द्र तब भी न छोड़े गये । यह देख नारायणदत्ताने अपने मंत्रियोंसे सलाह ले पृथिवीचन्द्रको छुड़ानेके लिए एक दूसरी ही युक्ति की और उसमें उसे मनचाही सफलता भी

प्राप्त हुई । उसने अपने यहाँ वृषभसेनाके नामसे कई दानशालाएँ बनवाई । कोई विदेशी या स्वदेशी ही सबको उनमें भोजन करनेको मिलता था । उन दानशालाओंमें बढ़िया से बढ़िया छहों रसमय भोजन कराया जाता था । थोड़े ही दिनोंमें इन दानशालाओंकी प्रसिद्धि चारों ओर हो गई । जो इनमें एक बार भी भोजन कर जाता वह फिर इनकी तारीफ करनेमें कोई कमी न करता था । बड़ी-बड़ी दूरसे इनमें भोजन करनेको लोग आने लगे । कावेरीके भी बहुतसे ब्राह्मण यहाँ भोजन कर जाते थे । उन्होंने इन शालाओंकी बहुत तारीफ की ।

रूपवतीको इन वृषभसेनाके नामके स्थापित की गई दानशालाओंका हाल सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ और साथ ही उसे वृषभसेना पर इस बातसे बड़ा गुस्सा आया कि मुझे बिना पूछे उसने बनारसमें ये शालाएँ बनवाई ही क्यों ? और इसका उसने वृषभसेनाको उलाहना भी दिया । वृषभसेनाने तब कहा—माँ, मुझ पर तुम व्यर्थ ही नाराज होती हो । न तो मैंने कोई दानशाला बनारसमें बनवाई और न मुझे उनका कुछ हाल ही मालूम है । यह सम्भव हो सकता है कि किसीने मेरे नामसे उन्हें बनाया हो । पर इसका शोध लगाना चाहिए कि किसने तो ये शालाएँ बनवाई और क्यों बनवाई ? आशा है पता लगानेसे सब रहस्य ज्ञात हो जायगा । रूपवतीने तब कुछ जासूसोंको उन शालाओंकी सच्ची हकीकत जाननेको भेजा । उनके द्वारा रूपवती को मालूम हुआ कि वृषभसेनाके ब्याह समय उग्रसेन ने सब कैदियोंको छोड़नेकी प्रतिज्ञा की थी । उस प्रतिज्ञाके अनुसार पृथिवीचन्द्रको उन्होंने न छोड़ा । यह बात वृषभसेनाको जान पड़े, उसका ध्यान इस ओर आकर्षित हो इसलिये ये दान-शालाएँ उसके नामसे पृथिवीचन्द्रकी रानी नारायणदत्ताने बनवाई हैं । रूपवतीने यह सब हाल वृषभसेनासे कहा । वृषभसेनाने तब उग्रसेनसे प्रार्थना कर उसी समय पृथिवीचन्द्रके छुड़वा दिया । पृथिवीचन्द्र वृषभसेनाके इस उपकारसे बड़ा कृतज्ञ हुआ । उसने इस कृतज्ञताके वश हो उग्रसेन और वृषभसेनाका एक बहुत ही बढ़िया चित्र तैयार करवाया । उस चित्रमें दोनों राजारानीके पाँवोंमें सिर झुकाया हुआ अपना चित्र भी पृथिवीचन्द्रने खिंचवाया । वह चित्र फिर उनकी भेंट कर उसने वृषभसेनासे कहा—माँ, तुम्हारी कृपासे मेरा जन्म सफल हुआ । आपकी इस दयाका मैं जन्म-जन्ममें ऋणी रहूँगा ।

आपने इस समय मेरा जो उपकार किया उसका बदला तो मैं क्या चुका सकूँगा पर उसकी तारीफमें कुछ कहने तकके लिए मेरे पास उपयुक्त शब्द नहीं है । पृथिवीचन्द्रकी यह नम्रता यह विनयशीलता देखकर उग्रसेन उस पर बहुत प्रसन्न हुए । उन्होंने उसका तब बड़ा आदर-सत्कार किया ।

मेघपिंगल उग्रसेनका शत्रु था, इसका जिकर ऊपर आया है । जो हो, उग्रसेनसे वह भले ही बिलकुल न डराता हो, पर पृथिवीचन्द्रसे बहुत डरता था । उसका नाम सुनते ही वह काँप उठता था । उग्रसनेको यह बात मालूम थी । इसलिए अबकी बार उन्होंने पृथिवीचन्द्रको उस पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा की । उनकी आज्ञा सिर पर चढ़ा पृथिवीचन्द्र अपनी राजधानीमें गया । और तुरंत उसने अपनी सेनाको मेघपिंगल पर चढ़ाई करनेकी आज्ञा की । सेनाके प्रयाणका बाजा बजनेवाला ही था कि कावेरी नगरसे खबर आ गई—"अब चढ़ाईकी कोई जरूरत नहीं । मेघपिंगल स्वयं महाराज उग्रसेनके दरबारमें उपस्थित हो गया है ।" बात यह थी कि मेघपिंगल पृथिवीचन्द्रके साथ लड़ाईमें पहले कई बार हार चुका था । इसलिए वह उससे बहुत डरता था । यही कारण था कि उसने पृथिवीचन्द्रसे लड़ना उचित न समझा । तब अगत्या वह उग्रसेनका सामन्त राजा बन गया । सच है, पुण्यके उदयसे शत्रु भी मित्र हो जाते हैं ।

एक दिन दरबार लगा हुआ था । उग्रसेन सिंहासन पर अधिष्ठित थे । उस समय उन्होंने एक प्रतिज्ञा की—आज सामन्त-राजाओं द्वारा जो भेंट आयेगी, वह आधी मेघपिंगलकी और आधी श्रीमती वृषभसेनाकी भेंट होगी । इसलिए कि उग्रसेन महाराजकी अपने मेघपिंगल पर पूरी कृपा हो गई थी । आज और बहुत-सी धन-दौलतके सिवा दो बहुमूल्य सुन्दर कम्बल उग्रसेनकी भेंट में आये । उग्रसेनने अपनी प्रतिज्ञाके अनुसार भेंटका आधा हिस्सा मेघपिंगलके यहाँ और आधा हिस्सा वृषभसेनाके यहाँ पहुँचा दिया । धन-दौलत, वस्त्राभूषण, आयु आदि ये सब नाश होनेवाली वस्तुएँ हैं, तब इनका प्राप्त करना सफल तभी हो सकता है जब कि ये परोपकारमें लगाई जायँ, इनके द्वारा दूसरों का भला हो ।

एक दिन मेघपिंगलकी रानी इस कम्बलको ओड़ किसी आवश्यक कार्यके लिए वृषभसेनाके महल आई। पाठकोंको याद होगा कि ऐसा ही एक कम्बल वृषभसेनाके पास भी था। आज वस्त्रोंके उतारने और पहरनेमें भाग्यसे मेघपिंगलकी रानीका कम्बल वृषभसेनाके कम्बलसे बदल गया। उसे इसका कुछ खयाल न रहा ओर वह वृषभसेनाका कम्बल ओढ़े ही अपने महल आ गई। कुछ दिनों बाद मेघपिंगलको राज-दरबारमें जानेका काम पड़ा। वह वृषभसेनाके इसी कम्बलको ओढ़े चला गया। कम्बलको ओढ़े मेघपिंगलको देखते ही उग्रसेनके क्रोधका कुछ ठिकाना न रहा। उन्होंने वृषभसेनाके कम्बलको पहचान लिया। उनकी आँखोंसे आगकी-सी चिनगारियाँ निकलने लगीं। उन्हें काटो तो खून नहीं। महारानी वृषभसेनाका कम्बल इसके पास क्यों और कैसे गया ? इसका कोई गुप्त कारण जरूर होना ही चाहिए। बस, यह विचार उनके मनमें आते ही उनकी अजब हालत हो गई। उग्रसेनका अपने पर अकारण क्रोध देखकर मेघपिंगलको समझमें इसका कुछ भी कारण न आया। पर ऐसी दशामें उसने अपना वहाँ रहना उचित न समझा। वह उसी समय वहाँसे भागा और एक अच्छे तेज घोड़े पर सवार हो बहुत दूर निकल गया। जैसे दुर्जनोंसे डरकर सत्पुरुष दूर जा निकलते हैं। उसे भागता देख उग्रसेनका सन्देह और बढ़ा। उन्होंने तब एक ओर तो मेघपिंगलको पकड लानेके लिए अपने सवारोंको दौड़ाया और दूसरी ओर क्रोधाग्निसे जलते हुए आप वृषभसेनाके महल पहुँचे। वृषभसेनासे कुछ न कह सुनकर कि तूने अमुक अपराध किया है, एक साथ उसे समुद्रमें फिकवानेका उन्होंने हुक्म दे दिया। बेचारी निर्दोष वृषभसेना राजाज्ञाके अनुसार समुद्रमें डाल दी गई। उस क्रोधको धिक्कार ! उस मूर्खताको धिक्कार ! जिसके वश हो लोग योग्य और अयोग्य कार्यका भी विचार नहीं कर पाते। अज्ञान मनुष्य किसी को कोई कितना ही कष्ट क्यों न दे, दु:खोंकी कसौटी पर उसे कितना ही क्यों न चढ़ावें, उसकी निरपराधताको अपनी क्रोधाग्निमें क्यों न झोंक दें, पर यदि वह कष्ट सहने वाला मनुष्य निरपराध है, निर्दोष है, उसका हृदय पवित्रतासे भरा है, रोम-रोममें उसके पवित्रताका वास है तो नि:सन्देह उसका कोई बाल बाँका नहीं कर सकता। ऐसे मनुष्योंको कितना ही कष्ट हो, उससे उनका हृदय रत्ती

भर भी विचलित न होगा। बल्कि जितना-जितना वह इस परीक्षाकी कसौटी पर चढ़ता जायगा उतना-उतना ही अधिक उसका हृदय बलवान् और निर्भीक बनता जायगा। उग्रसेन महाराज भले ही इस बातको न समझें कि वृषभसेना निर्दोष है, उसका कोई अपराध नहीं, पर पाठकोंको अपने हृदयमें इस बातका अवश्य विश्वास है, न केवल विश्वास ही है, किन्तु बात भी वास्तवमें यही सत्य है कि वृषभसेना निरपराध है। वह सती है, निष्कलंक है। जिस कारण उग्रसेन महाराज उस पर नाराज हुए थे, वह कारण निर्भ्रान्त नहीं था। वे यदि जरा गम खाकर कुछ शान्तिसे विचार करते तो उनकी समझमें भी वृषभसेना की निर्दोषता बहुत जल्दी आ जाती। पर क्रोधने उन्हें आपेमें न रहने दिया। और इसीलिए उन्होंने एकदम क्रोधसे अन्धे हो एक निर्दोष व्यक्तिको कालके मुँहमें फेंक दिया। जो हो, वृषभसेनाकी पवित्र जीवनकी उग्रसेनने तो कुछ कीमत न समझी, उसके साथ महान् अन्याय किया, पर वृषभसेनाको अपने सत्य पर पूर्ण विश्वास था। वह जानती थी कि मैं सर्वथा निर्दोष हूँ। फिर मुझे कोई ऐसी बात नहीं देख पड़ती कि जिसके लिए मैं दुःख कर अपने आत्माको निर्बल बनाऊँ। बल्कि मुझे इस बातकी प्रसन्नता होनी चाहिए कि सत्यके लिए मेरा जीवन गया। उसने ऐसे ही और बहुतसे विचारोंसे अपने आत्माको खूब बलवान और सहनशील बना लिया। ऊपर यह लिखा जा चुका है कि सत्यता और पवित्रताके सामने किसीकी नहीं चलती। बल्कि सबको उनके लिए अपना मस्तक झुकाना पड़ता है। वृषभसेना अपनी पवित्रता पर विश्वास रखकर भगवान्के चरणोंका ध्यान करने लगी। अपने मनको उसने परमात्म-प्रेममें लीन कर लिया। उसने साथ ही प्रतिज्ञा की कि यदि इस परीक्षामें मैं पास होकर नया जीवन लाभ कर सकूँ तो अब मैं संसारकी विषयवासनामें न फँसकर अपने जीवनको तपके पवित्र प्रवाहमें बहा दूँगी, जो तप जन्म और मरण ही नाश करनेवाला है। उस समय वृषभसेनाकी वह पवित्रता, वह दृढता, वह शीलका प्रभाव, वह स्वभावसिद्ध प्रसन्नता आदि बातोंने उसे एक प्रकाशमान उज्जवल ज्योतिके रूपमें परिणत कर दिया था। उसके इस अलौकिक तेजके प्रकाशने स्वर्गके देवोंकी आँखों तक में चकाचौंध पैदा कर दी। उन्हें भी इस तेजस्विता देवीको सिर झुकाना पड़ा। वे वहाँसे

उसी समय आये और वृषभसेनाको एक मूल्यवान सिंहासन पर अधिष्ठित कर उन्होंने उस मनुष्यरूपधारिणी पवित्रताकी मूर्तिमान देवीकी बड़े भक्ति भावोंसे पूजा की, उसका जय-जयकार मनाया, बहुत सत्य है, पवित्रशीलके प्रभावसे सब कुछ हो सकता है। यही शील आगको जल, समुद्रको स्थल, शत्रुको मित्र, दुर्जनको सज्जन और विषको अमृतके रूपमें परिणत कर देता है। शीलका प्रभाव अचिन्त्य है। इसी शीलके प्रभावसे धन-सम्पत्ति, कीर्ति, पुण्य, ऐश्वर्य, स्वर्ग-सुख आदि जितनी संसारमें उत्तम वस्तुएँ हैं वे सब अनायास बिना परिश्रम किये प्राप्त हो जाती हैं। न यही किन्तु शीलवान् मनुष्य मोक्ष भी प्राप्त कर लेता है। इसलिए बुद्धिवानोंको उचित है कि वे अपने चंचल मनरूपी बन्दरको वश कर उसे कहीं न जाने देकर पवित्र शीलव्रतकी, जिसे कि भगवानने सब पापोंका नाश करनेवाला बतलाया है, रक्षामें लगावें।

वृषभसेनाके शीलका महात्म्य जब उग्रसेनको ज्ञात पडा तो उन्हें बहुत दु:ख हुआ। अपनी बे-समझी पर वे बहुत पछताये। वृषभसेनाके पास जाकर उससे उन्होंने अपने इस अज्ञानकी क्षमा कराई और महल पर चलनेके लिए उससे प्रार्थना की। यद्यपि वृषभसेनाने पहले यह प्रतिज्ञा की थी कि इस कष्टसे छुटकारा पाते ही मैं योगिनी बनकर आत्महित करूँगी और इस पर वह दृढ़ भी वैसी ही थी, परन्तु इस समय जब कि खुद महाराज उसे लिवानेको आये तब उनका अपमान न हो, इसलिए उसने एक बार महल जाकर एक-दो दिन बाद फिर दीक्षा लेना निश्चय किया। वह बड़ी वैरागिन होकर महाराजके साथ महल आ रही थी। पर जिसके मन जैसी भावना होती है और वह यदि सच्चे हृदयसे उत्पन्न हुई होती है वह नियमसे पूरी होती ही है। वृषभसेनाके मनमें जो पवित्र भावना थी वह सच्चे संकल्पसे की गई थी। इसलिए उसे पूरी होना ही चाहिए था और वह हुई भी। रास्तेमें वृषभसेनाको एक महा तपस्वी और अवधिज्ञानी गुणधर नामके मुनिराजके पवित्र दर्शन हुए। वृषभसेनाने बड़ी भक्तिसे उन्हें हाथ जोड़-सिर नवाया। इसके बाद उसने उनसे पूछा—हे दयाके समुद्र योगिराज, क्या आप कृपाकर मुझे यह बतलावेंगे कि मैंने पूर्व जन्मोंमें क्या-क्या कर्म किये हैं, जिनका मुझे यह फल भोगना पड़ा? मुनि बोले—पुत्रि, सुन तुझे तेरे पूर्व जन्मका हाल सुनाता हूँ। तू पहले जन्ममें ब्राह्मणकी लड़की

थी । तेरा नाम नागश्री था । इसी राजघराने में तू बुहारी दिया करती थी । एक दिन मुनिदत्त नामके योगिराज महलके कोटके भीतर एक वायु रहित पवित्र गढ़ेमें बैठे ध्यान कर रहे थे । समय सन्ध्याका था । इसी समय तू बुहारी देती हुई इधर आई । तूने मूर्खतासे क्रोध कर मुनिसे कहा—ओ नंगे ढोंगी, उठ यहाँसे, मुझे झाड़ने दे । आज महाराज इसी महलमें आवेंगे । इसलिए इस स्थानको मुझे साफ करना है । मुनि ध्यानमें थे, इसलिए वे उठे नहीं; और न ध्यान पूरा होने तक उठ ही सकते थे । वे वैसेके वैसे ही अडिग बैठे रहे । इससे तुझे और अधिक गुस्सा आया । तूने तब सब जगहका कूड़ा-कचरा इकट्ठा कर मुनिको उससे ढंक दिया । बाद तू चली गई । बेटा तू तब मूर्ख थी, कुछ समझती न थी । पर तूने वह काम बहुत बुरा किया था । तू नहीं जानती थी कि साधु-सन्त तो पूजा करने योग्य होते हैं, उन्हें कष्ट देना उचित नहीं । जो कष्ट देते हैं वे बड़े मूर्ख और पापी हैं । अस्तु, सबेरे राजा आये । वे इधर होकर जा रहे थे । उनकी नजर इस गढ़े पर पड़ गई । मुनिके साँस लेनेसे उन परका वह कूडा-कचरा ऊँचा-नीचा हो रहा था । उन्हें कुछ सन्देहसा हुआ । तब उन्होंने उसी समय उस कचरेको हटाया । देखा तो उन्हें मुनि देख पड़े । राजाने उन्हें निकाल लिया । तुझे जब यह हाल मालूम हुआ और आकर तूने उन शान्तिके मन्दिर मुनिराजको पहलेसा ही शान्त पाया तब तुझे उनके गुणोंकी कीमत जान पडी । तू तब बहुत पछताई । अपने कर्मोंको तूने बहुत धिक्कारा । मुनिराजसे अपने अपराधकी क्षमा कराई तब तेरी श्रद्धा उन पर बहुत ही हो गई । मुनिके उस कष्टके दूर करनेका तूने बहुत यत्न किया, उनकी औषधि की और भरपूर सेवा की । उस सेवाके फलसे तेरे पापकर्मोंकी स्थिति बहुत कम रह गई । बहिन, उसी मुनि सेवाके फलसे तू इस जन्ममें धनपति सेठकी लड़की हुई । तूने जो मुनिको औषधिदान दिया था उससे तो तुझे वह सर्वोषधि प्राप्त हुई जो तेरे स्नानके जलसे कठिनसे कठिन रोग क्षण-भरमें नाश हो जाते हैं और मुनिको कचरेसे ढँककर जो उन पर घोर उपसर्ग किया था, उससे तुझे इस जन्ममें झूठा कलंक लगा । इसलिये बहिन, साधुओंको कभी कष्ट देना उचित नहीं । किन्तु ये स्वर्ग या मोक्षसुखकी प्राप्ति के कारण हैं, इसलिए इनकी तो बड़ी भक्ति और श्रद्धासे सेवा-पूजा करनी चाहिये । मुनिराज द्वारा अपना पूर्वभव

सुनकर वृषभसेनाका वैराग्य और बढ़ गया । उसने फिर महल पर न जाकर अपने स्वामीसे क्षमा कराई और संसारकी सब माया ममताका पेचीला जाल तोड़कर परलोक-सिद्धिके लिये इन्हीं गुणधर मुनि द्वारा योग-दीक्षा ग्रहण कर ली । जिस प्रकार वृषभसेनाने औषधिदान देकर उसके फलसे सर्वोषधि प्राप्त की उसी तरह और बुद्धिमानोंको भी उचित है कि वे जिसे जिस दानकी जरूरत समझें उसीके अनुसार सदा हर एककी व्यवस्था करते रहें । दान महान् पवित्र कार्य है और पुण्यका कारण है ।

गुणधर मुनिके द्वारा वृषभसेनका पवित्र और प्रसिद्ध चरित्र सुनकर बहुतसे भव्यजनोंने जैनधर्मको धारण किया, जिनको जैनधर्मके नाम तकसे चिढ़ थी । वे भी उससे प्रेम करने लगे । इन भव्यजनोंको तथा मुझे सती वृषभसेना पवित्र करे, हृदयमें चिरकालसे स्थानसे किये राग, द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभ, ईर्षा, मत्सरता आदि दुर्गुणोंको, जो आत्मप्राप्तिसे दूर रखनेवाले हैं, नाश करें उनकी जगह पवित्रताकी प्रकाशमान ज्योतिको जगावें ।

———

१११. शास्त्र-दानकी कथा

संसार-समुद्रसे पार करनेवाले जिन भगवानको नमस्कार कर सुखप्राप्तिकी कारण शास्त्र-दानकी कथा लिखी जाती है ।

मैं उस भारती सरस्वतीको नमस्कार करता हूँ, जिसके प्रगटकर्त्ता जिन भगवान हैं और जो आँखोंके आड़े आनेवाले, पदार्थोंका ज्ञान न होने देनेवाले अज्ञान-पटलको नाश करनेवाली सलाई है । भावार्थ—नेत्ररोग दूर करनेके लिये जैसे सलाई द्वारा सुरमा लगाया जाता है या कोई सलाई ही ऐसी वस्तुओंकी बनी होती है जिसके द्वारा सब नेत्र-रोग नष्ट हो जाते हैं, उसी तरह अज्ञानरूपी रोगको नष्ट करनेके लिये सरस्वती—जिनवाणी सलाईका काम देनेवाली है। इसकी सहायतासे पदार्थोंका ज्ञान बड़े सहजमें हो जाता है ।

उन मुनिराजोंको मैं नमस्कार करता हूँ, जो मोहको जीतनेवाले हैं रत्नत्रय—सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यकचारित्रसे विभूषित हैं और जिनके चरण-कमल लक्ष्मीके—सब सुखोंके स्थान हैं ।

इस प्रकार देव, गुरु और शास्त्रको नमस्कार कर शास्त्रदान करनेवालेकी कथा संक्षेपमें यहाँ लिखी जाती है । इसलिये कि इसे पढ़कर सत्पुरुषोंके हृदयमें ज्ञानदानकी पवित्र भावना जाग्रत हो । ज्ञान जीवमात्रका सर्वोत्तम नेत्र है। जिसके यह नेत्र नहीं उसके चर्म नेत्र होने पर भी वह अन्धा है, उसके जीवनका कुछ मूल्य नहीं होता । इसलिये अकिंचित्कर जीवनको मूल्यवान् बनानेके लिए ज्ञान दान देना ही चाहिये । यह दान सब दानोंका राजा है ओर दानों द्वारा थोडे समय की और एक ही जीवनकी ख्वाइशें मिटेंगी, पर ज्ञान-दानसे जन्म-जन्मकी ख्वाइशें मिटकर वह दाता और वह दान लेनेवाला ये दोनों ही उस अनन्त स्थानको पहुँच जाते हैं, जहाँ सिवा ज्ञानके कुछ नहीं है, ज्ञान ही जिनका आत्मा हो जाता है । यह हुई परलोककी बात । इसके सिवा ज्ञानदानसे इस लोकमें भी दाताकी निर्मल कीर्ति चारों ओर फैल जाती है । सारा संसार उसकी शत-मुखसे बड़ाई करता है । ऐसे लोग जहाँ जाते हैं । वहीं उनका मनमाना आदरमान होता है । इसलिये ज्ञान-दान भुक्ति और मुक्ति इन दोनोंका ही देनेवाला है । अत भव्यजनोंको उचित है, उनका कर्त्तव्य है कि

वे स्वयं ज्ञान-दान करें और दूसरोंको भी इस पवित्र मार्गमें आगे करें । इस ज्ञान-दानके सम्बन्धमें एक बात ध्यान देनेकी यह है कि यह सम्यक्पनेको लिये हुए हो अर्थात् ऐसा हो कि जिससे किसी जीवका अहित, बुरा न हो, जिसमें किसी तरहका विरोध या दोष न हो । क्योंकि कुछ लोग उसे भी ज्ञान बतलाते है । जिसमें जीवोंकी हिंसाको धर्म कहा गया है, धर्मके बहाने जीवोंको अकल्याणका मार्ग बतलाया जाता है और जिसमें कहीं कुछ कहा गया है और कहीं कुछ कहा गया है जो परस्पर विरोधी है । ऐसा ज्ञान सच्चा ज्ञान नहीं किन्तु मिथ्याज्ञान है । इसलिए सच्चे-सम्यग्ज्ञान दान देनेकी आवश्यकता है । जीव आनादिसे कर्मोंके वश हुआ अज्ञानी बनकर अपने निज ज्ञानमय शुद्ध स्वरूपको भूल गया है और माया-ममताके पेंचीले जालमें फँस गया है, इसलिए प्रयत्न ऐसा होना चाहिए कि जिससे यह अपना वास्तविक स्वरूप प्राप्त कर सके । ऐसी दशामें इसे असुखका रास्ता बतलाना उचित नहीं है । सुख प्राप्त करनेका सच्चा प्रयत्न सम्यग्ज्ञान है । इसलिये दान, मान पूजा-प्रभावना, पठन-पाठन आदिसे इस सम्यग्ज्ञानकी आराधना करना चाहिये । ज्ञान प्राप्त करनेकी पाँच भावनाएँ ये हैं—उन्हें सदा उपयोगमें लाते रहना चाहिए । वे भावनाएँ हैं—वाचना—पवित्र ग्रन्थका स्व्य अध्ययन करना या दूसरे पुरुषोंको कराना, पृच्छना—किसी प्रकारके सन्देहको दूरक करनेके लिए परस्परमें पूछ-ताछ करना, अनुप्रेक्षा—शास्त्रोंमें जो विषय पढ़ा हो या सुना हो उसका बार-बार मनन-चिन्तन करना, आम्नाय—पाठका शुद्ध पढ़ना या शुद्ध ही पढ़ाना और ध र्मोपदेश—पवित्र धर्मका भव्यजनको उपदेश करना । ये पाँचों भावनाएँ ज्ञान बढ़ाने की कारण है । इसलिये इनके द्वारा सदा अपने ज्ञानकी वृद्धि करते रहना चाहिये । ऐसा करते रहनेसे एक दिन वह आयगा जब कि केवलज्ञान भी प्राप्त हो जायगा । इसीलिये कहा गया कि ज्ञान सर्वोत्तम दान है । और यही संसारके जीवमात्रका हित करनेवाला है । पुरा कालसे जिन-जिन भव्य जनोंने ज्ञानदान किया आज तो उनके नाम मात्रका उल्लेख करना भी असंभव है, तब उनका चरित लिखना तो दूर रहा । अस्तु, कौण्डेशका चरित ज्ञानदान करनेवालोंमें अधिक प्रसिद्ध है । इसलिए उसीका चरित संक्षेपमें लिखा जाता है ।

जिनधर्मके प्रचार या उपदेशादिसे पवित्र हुए भारतवर्षमें कुरुमरी

गाँवमें गोविन्द नामका एक ग्वाल रहता था। उसने एक बार जंगलमें एक वृक्ष कोटरमें जैनधर्मका एक पवित्र ग्रन्थ देखा। उसे वह अपने घर पर ले आया और रोज-रोज उसकी पूजा करने लगा। एक दिन पद्मनंदि नामके महात्माको गोविन्दने जाते देखा। इसने वह ग्रन्थ इन मुनिको भेंट कर दिया।

यह जान पड़ता है कि इस ग्रंथ द्वारा पहले भी मुनियोंने यहाँ भव्यजनोंको उपदेश किया है, इसके पूजा महोत्सव द्वारा जिनधर्मकी प्रभावना की है और अनेक भव्यजनोंको कल्याण मार्गमें लगाकर सच्चे मार्गका प्रकाश किया है। अन्तमें वे इस ग्रथको इसी वृक्षकी कोटरमें रखकर विहार कर गए हैं। उनके बाद जबसे गोविन्दने इस ग्रन्थको देखा तभीसे वह इसकी भक्ति और श्रद्धासे निरन्तर पूजा किया करता था। इसी समय अचानक गोविन्दकी मृत्यु हो गई। वह निदान करके इसी कुरुमरी गाँवमें गाँवके चौधरीके यहाँ लड़का हुआ। इसकी सुन्दरता देखकर लोगोंकी आँखे इस परसे हटती ही न थी, सब इससे बड़े प्रसन्न होते थे। लोगोंके मनको प्रसन्न करना, उनकी अपने पर प्रीति होना यह सब पुण्यकी महिमा है। इसके पल्लेमें पूर्व जन्मका पुण्य था। इसलिये इसे ये सब एक बातें सुलभ थीं।

एक दिन इसने उन्हीं पद्मनन्दि मुनिको देखा, जिन्हें कि इस गोविन्द ग्वालके भवमें पुस्तक भेंट की थी। उन्हें देखकर इसे जातिस्मरणज्ञान हो गया। मुनिको नमस्कार कर सब धर्मप्रेमसे इसने उनसे दीक्षा ग्रहण कर ली। इसकी प्रसन्नता का कुछ पार न रहा। यह बड़े उछाहसे तपस्या करने लगा। दिनों-दिन इसके हृदयकी पवित्रता बढ़ती ही गई। आयुके अन्तमें शान्तिसे मृत्यु लाभ कर यह पुण्यके उदयसे कौण्डेश नामका राजा हुआ। कौण्डेश बड़ी ही वीर था। तेजमें वह सूर्यसे टक्कर लेता था। सुन्दरता उसकी इतनी बढ़ी-चढ़ी थी कि उसे देखकर कामदेवको भी नीचा मुँह कर लेना पड़ता था। उसकी स्वभाव-सिद्ध क्रान्तिको देखकर तो लज्जाके मारे बेचारे चन्द्रमाका हृदय ही काला पड़ गया। शत्रु उसका नाम सुनकर काँपते थे। यह बड़ा ऐश्वर्यवान् था, भाग्यशाली था, यशस्वी था और सच्चा धर्मज्ञ था। वह अपनी प्रजाका शासन प्रेम और नीतिके साथ करता था। अपनी सन्तानके माफिक ही उसका प्रजा पर प्रेम था। इस प्रकार बड़े ही सुख-शान्तिसे उसका समय बीतता था।

इस तरह कौण्डेशको बहुत समय बीत गया । एक दिने उसे कोई ऐसा कारण मिल गया कि जिससे उसे संसारमें बड़ा वैराग्य हो गया । वह संसारको अस्थिर, विषयभोगोंको रोगके समान, सम्पत्तिको बिजलीकी तरह चंचल—तत्काल देखते-देखते नष्ट होनेवाली, शरीरको मांस, मल रुधिर आदि महा अपवित्र वस्तुओंसे भरा हुआ, दु खोंका देनेवाला घिनौना और नाश होनेवाला जानकर सबसे उदासीन हो गया । इस जैनधर्मके रहस्यको जाननेवाले कौण्डेशके हृदयमें वैराग्य भावनाकी लहरें लहराने लगीं । उसे अब घरमें रहना कैद खानेके समान जान पड़ने लगा । वह राज्याधिकार पुत्रको सौंप कर जिनमन्दिर गया । वहाँ उसने जिन भगवानकी पूजा की, जो सब सुखोंकी कारण है । इसके बाद निर्ग्रन्थ गुरुको नमस्कार कर उनके पास वह दीक्षित हो यगा । पूर्व जन्ममें कौण्डेशने जो दान किया था, उसके फलसे वह थोड़े ही समयेमें श्रुतकेवली हो गया । यह श्रुतकेवली होना कोई आश्चर्यकी बात नहीं है । क्योंकि ज्ञानदान तो केवलज्ञानका भी कारण है । जिस प्रकार ज्ञान-दानसे एक ग्वाल श्रुतज्ञानी हुआ उसी तरह अन्य भव्य पुरुषोंको भी ज्ञान-दान देकर, अपना आत्महित करना चाहिये । जो भव्यजन संसारके हित करनेवाले इस ज्ञान-दानकी भक्तिपूर्वक पूजा-प्रभावना, पठन-पाठन लिखने-लिखाने, दान-मान, स्तवन-जपन आदि सम्यक्त्वके कारणोंसे आराधना किया करते है वे धन, जन, यश, ऐश्वर्य, उत्तम कुल, गोत्र, दीर्घायु आदिका मनचाहा सुख प्राप्त करते हैं । अधिक क्या कहा जाय किन्तु इसी ज्ञानदान द्वारा वे स्वर्ग या मोक्षका सुख भी प्राप्त कर सकेंगे । अठारह दोष रहित जिन भगवान्के ज्ञानका मनन, चिन्तन करना उच्च सुखका कारण है ।

मैंने जो यह दानकी कथा लिखी है वह आप लोगोंको तथा मुझे केवलज्ञानके प्राप्त करनेकी सहायक हो ।

मूलसंघ सरस्वती गच्छमें भट्टारक मल्लिभूषण हुए । वे रत्नत्रयसे युक्त थे । उनके प्रिय शिष्य ब्रह्मचारी नेमिदत्तने यह ज्ञानदानकी कथा लिखी है । यह निरन्तर आप लोगोंके संसारको शान्ति करें । अर्थात् जन्म, जरा, मरण मिटाकर अनन्त सुखमय मोक्ष प्राप्त कराये ।

११२. अभयदानकी कथा

मोक्षकी प्राप्तिके लिये भगवानके चरणोंको नमस्कार कर अभय-दान द्वारा फल प्राप्त करनेवालेकी कथा जैनग्रन्थोंके अनुसार यहाँ संक्षेपमें लिखी जाती है।

भव्यजनों द्वारा भक्तिसे पूजी जानेवाली सरस्वती श्रुतज्ञान रूपी महासमुद्रके पार पहुँचानेके लिये नावकी तरह मेरी सहायता करें।

परब्रह्म स्वरूप आत्मा का निरन्तर ध्यान करनेवाले उन योगियोंको शान्तिके लिए मैं सदा याद करता हूँ, जिनकी केवल भक्तिसे भव्यजन सन्मार्ग लाभ करते हैं, सुखी होते हैं।

इस प्रकार मंगलमय जिन भगवान, जिनवाणी और जैन योगियोंका स्मरण कर मैं वसतिदान—अभयदानकी कथा लिखता हूँ।

धर्म-प्रचार, धर्मोपदेश, धर्म-क्रिया आदि द्वारा पवित्रता लाभ किये हुए इस भारतवर्षमें मालवा बहुत कालसे प्रसिद्ध और सुन्दर देश है। अपनी सर्वश्रेष्ठ सम्पदा और ऐश्वर्यसे वह ऐसा जान पड़ता है मानों सारे संसारकी लक्ष्मी यहीं आकर इकट्ठी हो गई है। वह सुख देनेवाले बगीचों, प्रकृति-सुन्दर पर्वतों और सरोवरीकी शोभासे स्वर्गके देवोंको भी अत्यन्त प्यारा है। वे यहाँ आकर मनचाहा सुख लाभ करते हैं। यहाँके स्त्री-पुरुष सुन्दरतामें अपनी तुलनामें किसीको न देखते थे। देशके सब लोग खूब सुखी थे, भाग्यशाली थे और पुण्यवान् थे। मालदेके सब शहरोंमें, पर्वतोंमें ओर सब वनोंमें बड़े-बड़े ऊँचे विशाल और भव्य जिनमन्दिर बने हुए थे। उनके ऊँचे शिखरोंमें लगे हुए सोनेके चमकते कलश बड़े सुन्दर जान पड़ते थे। रातमें तो उनकी शोभा बड़ी ही विलक्षणता धारण करती थी। वे ऐसे जान पड़ते थे मानों स्वर्गोंके महलों मे दीये जगमगा रहे हों। हवाके झकोरोंसे इधर-उधर फड़क रही उन मन्दिरों परकी ध्वजाएँ ऐसी देख पड़ती थीं मानों वे पथिकोंको हाथोंके इशारेसे स्वर्ग जानेका रास्ता बतला रही है। उन पवित्र जिन मन्दिरोंके दर्शन मात्रसे पापोंका नाश होता था तब उनके सम्बन्धमें और अधिक क्या लिखें। जिनमें बैठे हुए रत्नत्रय धारी साधु-तपस्वियोंको उपदेश करते हुए

देखकर यह कल्पना होती थी कि मानों वे मोक्षके रास्ते हों ।

मालवेमें जिन भगवानके पवित्र और सुख देनेवाले धर्मका अच्छा प्रचार है । सम्यक्त्वकी जगह-जगह चर्चा है । अनेक सम्यक्त्वरत्नके धारण करनेवाले भव्यजनोंसे वह युक्त है । दान-व्रत, पूजा-प्रभावना आदि वहाँ खूब हुआ करते हैं । वहाँके भव्यजनोंका निर्भ्रान्त विश्वास है कि अठारह दोष रहित जिन भगवान ही सच्चे देव हैं । वे ही केवलज्ञानी-सर्वज्ञ है । उनकी स्वर्गके देव तक सेवा-पूजा करते हैं । सच्च धर्म दसलक्षण मय है और उनके प्रकटकर्ता जिनदेव हैं । गुरु परिग्रह रहित और वीतरागी हैं । तत्व वही सच्चा है जिसे जिन भगवानने उपदेश किया है । वहाँके भव्यजन अपने नित्य-नैमिदत्तक कर्मोंमें सदा प्रयत्नवान रहते हैं । वे भगवान्‌की स्वर्ग-मोक्षका सुख देनेवाली पूजा सदा करते हैं, पात्रोंको भक्तिसे पवित्र दान देते हैं, व्रत, उपवास, शील, सयमको पालते हैं । इस प्रकार मालवा उस समय धर्मका प्रधान बन रहा था, जिस समयकी यह कथा है ।

मालवेमें तब एक घटगॉव नामका सम्पत्ति शाली शहर था । इस शहरमे देविल नामका एक धनी कुम्हार और एक धर्मिल नामका नाई रहता था । इन दोनोंने मिलकर बाहरके आनेवाले यात्रियोंको ठहरनेके लिए एक धर्मशाला बनवा दी । एक दिन देविलने एक मुनिको लाकर इस धर्मशाला मे ठहरा दिया । धर्मिलको जब मालूम हुआ तो उसने मुनिको हाथ पकड़ कर बाहर निकाल दिया और वहाँ सन्यासीको लाकर ठहरा दिया । सच है, जो दुष्ट है, दुराचारी है, पापी है, उन्हे साधु-सन्त अच्छे नहीं लगते, जैसे उल्लूको सूर्य । धर्मिलने मुनिको निकाल दिया, उनका अपमान किया, पर मुनिने इसका कुछ बुरा न माना । वे जैसे शान्त थे वैसे ही रहे । धर्मशालासे निकल कर वे एक वृक्षके नीचे आकर ठहर गये । रात इन्होने वहीं पूरी की । डास, मच्छर वगैरहका इन्हें बहुत कष्ट सहना पड़ा । इन्होने सब सहा और बड़ी शान्तिसे सहा । सच है, जिनका शरीरसे रत्तीभर मोह नहीं उनके लिए तो कष्ट कोई चीज ही नहीं । सबेरे जब देविल मुनिके दर्शन करनेको आया और उनहें धर्मशालामें न देखकर एक वृक्षके नीचे बैठे देखा तो उसे धर्मिलकी इस दुष्टता पर बड़ा क्रोध आया । धर्मिलका सामना होनेपर उसनेउससे फटकारा ।

देविलकी फटकार धर्मिल न सह सका और बातें बहुत बढ़ गई । यहाँतक कि परस्परमें मारामारी हो गई । दोनो ही परस्परमें लड़कर मर मिटे । क्रूर भावोंसे मरकर ये दोनों क्रमसे सुअर और व्याघ्र हुए । देविलका जीव सुअर विंध्य पर्वतकी गुफामें रहता था । एक दिन कर्मयोगसे गुप्त और त्रिगुप्ति नामके दो मुनिराज अपने विहारसे पृथिवीको पवित्र करते इसी गुफामें आकर ठहरे । उन्हें देखकर इस सूअर को जातिस्मरण हो गया । इसने उपदेश करते हुए मुनिराज द्वारा धर्मका उपदेश सुन कुछ व्रत ग्रहण किये । व्रत ग्रहण कर यह बहुत सन्तुष्ट हुआ ।

इसी समय मनुष्योंकी गन्ध पाकर धूर्मिलका जीव व्याघ्र मुनियोंको खानेके लिए झपटा हुआ आया । सूअर उसे दूर हीसे देखकर गुफाके द्वार पर आकर डट गया । इसलिए कि वह भीतर बैठे हुए मुनियोंकी रक्षा कर सके । व्याघ्रने गुफाके भीतर घुसनेके लिए सूअर पर बड़ा जोरका आक्रमण किया । सूअर पहलेसे ही तैयार बैठा था । दोनोंके भावोंमें बड़ा अन्तर था । एकके भाव थे मुनिरक्षा करनेके ओर दूसरेके उनको खा जाने के । इसलिए देविलका जीव सूअर तो मुनिरक्षा रूप पवित्र भावोंसे मर कर सौधर्म स्वर्गमें अनेक ऋद्धियोंका धारी देव हुआ । जिसके शरीरको चमकती हुई कान्ति गाढ़ेसे गाढे अन्धकारको नाश करनेवाली है, जिसकी रूप-सुन्दरता लोगोंके मनको देखने मात्रसे मोह लेती है, जो स्वर्गीय दिव्य वस्त्रों और मुकुट, कुण्डल, हार आदि बहुमूल्य भूषणोंको पहरता है, अपनी स्वभाव-सुन्दरतासे जो कल्पवृक्षोंको नीचा दिखाता है, जो अणिमादि ऋद्धि-सिद्धियोंका धारक है, अवधिज्ञानी है, पुण्यके उदयसे जिसे सब दिव्य सुख प्राप्त हैं, अनेक सुन्दर-सुन्दर देव-कन्याएँ और देवगण जिसकी सेवामें सदा उपस्थित रहते हैं, जो महा वैभवशाली हैं, महा सुखी हैं स्वर्गोंके देवों द्वारा जिनके चरण पूजे जाते हैं ऐसे जिन भगवानकी, जिन प्रतिमाओंकी और कृत्रिम तथा अकृत्रिम जिन मन्दिरोंकी जो सदा भक्ति और प्रेमसे पूजा करता है, दुर्गतिके दु खोंको नाश करनेवाले तीर्थोंकी यात्रा करता है, महामुनियोंकी भक्ति करता है और धर्मात्माओंके साथ वात्सल्यभाव रखता है । ऐसी उसकी सुखमय स्थिति है । जिस प्रकार यह सूअर धर्मके प्रभावसे उक्त प्रकार सुखका भोगनेवाला हुआ उसी प्रकार जो

और भव्यजन इस पवित्र धर्मका पालन करेंगे वे भी उसके प्रभावसे सब सुख-सम्पत्ति लाभ करेंगे । समझिए, संसारमें जो-जो धनप्राप्त होती है, स्त्री, पुत्र, सुख, ऐश्वर्य आदि अच्छी-अच्छी आनन्द भोगकी वस्तुएँ प्राप्त होती है, उनका कारण एक मात्र धर्म है । इसलिए सुखकी चाह करनेवाले भव्यजनोंका जिन-पूजा, पात्र-दान, व्रत, उपवास, शील, संयम आदि धर्मका निरन्तर पवित्र भावोंसे सेवन करना चाहिए ।

देविल तो पुण्यके प्रभावसे स्वर्ग गया और धर्मिलने मुनियोंको खा जाना चाहा था, इसलिए वह पापके फलसे मरकर नर्क गया । इस प्रकार पुण्य और पापका फल जानकार भव्यजनोंको उचित है कि वे पुण्यके कारण पवित्र जैनधर्ममें अपनी बुद्धि दृढ़ करें ।

इस प्रकार परम सुख-मोक्षके कारण, पापोंका नाश करनेवाले और पात्र-भेदसे विशेष योग्य इस पवित्र अभयदानकी कथा अन्य जैन शास्त्रोंके अनुसार संक्षेपमें यहाँ लिखी गई । यह सत्यकथा संसारमें प्रसिद्ध होकर सबका हित करे ।

------

११३. करकण्डु राजाकी कथा

संसार द्वारा पूजे जानेवाले जिन भगवानको नमस्कार कर करकण्डु राजाका सुखमय पवित्र चरित लिखा जाता है।

जिसने पहले केवल एक कमलसे जिन भगवानकी पूजा कर जो महान् फल प्राप्त किया, उसका चरित जैसा और ग्रन्थोंमें पुराने ऋषियोंने लिखा है उसे देखकर या उनकी कृपासे उसका थोड़ेमें मैं सार लिखता हूँ।

मीला और महानील तेरपुर राजा थे। तेरपुर कुन्तल देशकी राजधानी थी। यहाँ वसुमित्र नामका एक जिनभक्त सेठ रहता था। सेठानी वसुमती उसकी स्त्री थी। धर्मसे उसे बड़ा प्रेम था। इन सेठ-सेठानीके यहाँ धनदत्त नामका एक ग्वाल नौकर था। वह एक दिन गोएँ चरानेको जंगलमें गया हुआ था। एक तालाबमें इसने कोई हजार पखुड़ियों वाला एक बहुत सुन्दर कमल देखा। उस पर यह मुग्ध हो गया। तब तालाबमें कूद कर इसने उस कमलको तोड़ लिया। उस समय नागकुमारीने इससे कहा—धनदत्त, तूने मेरा कमल तोड़ा तो है, पर इतना तू ध्यानमें रखना कि यह उस महापुरुषको भेंट किया जाय, जो संसारमें सबसे श्रेष्ठ हो। नागकुमारीका कहा मानकर धनदत्त कमल लिये अपने सेठके पास गया और उनसे सब हाल इसने कहा। वसुमित्रने तब राजाके पास जाकर उनसे यह सब हाल कहा। सबसे श्रेष्ठ कौन है और यह कमल किसकी भेंट चढ़ाया जाय, यह किसीकी समझमें न आया। तब सब विचार कर चले कि इसका हाल मुनिराजसे कहें। संसारमें सबसे श्रेष्ठ कौन है, इस बातका पता वे अपनेको देंगे। यह निश्चय कर राजा, सेठ, ग्वाल तथा और भी बहुतसे लोक सहस्रकूट नामके जिन मन्दिरोंमें गये। वहाँ सुगुप्ति मुनिराज ठहरे हुए थे। उनसे राजाने पूछा—हे करुणाके समुद्र,, हे पवित्र धर्मके रहस्यको समझनेवाले, कृपा बतलाइए कि संसारमें सबसे श्रेष्ठ कौन है, जिन्हें यह पवित्र कमल भेंट किया जाय। उत्तरमें मुनिराजने कहा—राजन्, सारे संसारके स्वामी, राग-द्वेषादि दोषोंसे रहित जिन भगवान सर्वोत्कृष्ट हैं, क्योंकि संसार उन्हींकी पूजा करता है। सुनकर सबको बड़ा सन्तोष हुआ जिसे वे चाहते थे वह अनायास मिल गया। उसी समय वे सब भगवानके सामने

आये । धनदत्त ग्वालने तब भगवान्‌को नमस्कार कर कहा—हे संसारमें सबसे श्रेष्ठ गिने जाने वाले, आपको यह कमल मैं आपको भेंट करता हूँ । इसे आप स्वीकार कर मेरी आशाको पूरी करें । यह कहकर वह ग्वाल उस कमलको भगवानके पाँवों पर चढ़ाकर चला गया । इसमें कोई सन्देह नहीं कि पवित्र कर्म मूर्ख लोगोंको भी सुख देनेवाला होता है । इस कथासे सम्बन्ध रखनेवाली एक दूसरी कथा यहाँ लिखी जाती है उसे सुनिए—

श्रावस्तीके रहनेवाले सागरदत्त सेठकी स्त्री नागदत्ता बड़ी पापिनी थी । उसका चाल-चलन अच्छा न था । एक सोमशर्मा ब्राह्मणके साथ उसका अनुचित बरताव था । सच है, कोई-कोई स्त्रियाँ तो बड़ी दुष्ट और कुल-कलंकिनी हुआ करती है । उन्हें अपने कुलकी मान-मर्यादाकी कुछ लाज-शरम नहीं रहती । अपने उज्जवल कुलरूपी मन्दिरको मलिन करनेके लिए वे काले धुएंके समान होती है । बेचारा सेठ सरल था और धर्मात्मा था । इसलिए अपनी स्त्री का ऐसा दुराचार देखकर उसे बड़ा वैराग्य हुआ । उसने फिर संसारका भ्रमण मिटानेवाली जिनदीक्षा ग्रहण कर ली । यह बहुत ही कटाल गया था । सागरदत्त तपस्या कर स्वर्ग गया । स्वर्गायु पूरी कर वह अगदेशकी राजधानी चम्पा नगरी में वसुपाल राजाकी रानी वसुमती दन्तिवाहन नामका राजकुमार हुआ । वसुपाल सुखसे राज करते रहे ।

इधर वह सोमशर्मा मर कर पापके फलसे पहले तो बहुत समय तक दुर्गतियों में घूमा किया । एकसे एक दु सह कष्ट उसे सहना पड़ा । अन्तमें वह कलिंग देशके जंगलमें नर्मदातिलक नामका हाथी हुआ । और ठीक ही है पापसे जीवोंको दुर्गतियोंके दु ख भोगने ही पड़ते है । कर्मसे इस हाथी को किसीने पकड़ लाकर वसुपालको भेंट किया ।

उधर इस हाथीके पूर्वभवके जीव सोमशर्माकी स्त्री नागदत्ताने भी पापके उदयसे दुर्गतियोंमें अनेक कष्ट सहे । अन्तमें वह ताम्रलिप्तनगरमें भी वसुदत्त सेठकी स्त्री नागदत्ता हुई । उस समय इसके धनवती और धनश्री नामकी दो लड़कियाँ हुई । ये दोनों ही बहिनें बड़ी सुन्दर थीं । स्वर्ग कुमारियाँ इनका रूप देखकर मन ही मन बड़ी कुढ़ा करती थीं । इनमें धनवतीका व्याह नागानन्द पुरके रहनेवाले वनपाल नामके सेठ पुत्रके साथ हुआ और छोटी

बद्दिन धनश्री कोशाम्बीके वसुमित्रकी स्त्री हुई । वसुमित्र जैनी था । इसलिए उसके सम्बनधसे धनश्रीको कई बार जैनधर्मके उपदेश सुननेका मौका मिला । वह उपदेश उसे बहुत रुचि कर हुआ और फिर वह भी श्राविका हो गई । लड़कीके प्रेमसे नागदत्ता एक बार धनश्रीके यहाँ गई । धनश्रीने अपनी माँ का खूब आदर-सत्कार किया और उसे कई दिनों तक अच्छी तरह अपने यहीं रक्खा । नागदत्ता धनश्रीके यहाँ कई दिनों तक रही, पर वह न तो कभी मन्दिर गई ओर न कभी उसने धर्मकी कुछ चर्चा की । धनश्री अपनी माँको धर्मसे विमुख देखकर एक दिन उसे मुनिराजके पास ले गई और समझा कर उसे मुनिराज द्वारा पाँच अणुव्रत दिलवा दिये । एक बार इसी तरह नागदत्ताको अपनी बड़ी लड़की धनवतीके यहाँ जाना पड़ा । धनवती बुद्धधर्मको मानती थी । सो उसने इसे बुद्धधर्मकी अनुयायिनी बना लिया । इस तरह नागदत्ताने कोई तीन बार जैनधर्मको छोड़ा । अन्तमें उसने फिर जैनधर्म ग्रहण किया ओर अबकीबार वह उस पर रही भी बहुत दृढ़ । जन्म भर फिर उसने जैनधर्मको निर्बाहा । आयुके अन्तमें मरकर वह कौशाम्बीके राजा वसुपालकी रानी वसुमतीके लड़की हुई । पर भाग्य से जिस दिन वह पैदा हुई, वह दिन बहुत खराब था । इसलिए राजाने उसे एक सन्दूक में रखकर और उसके नामकीएक अँगूठी उसकी उँगलीमें पहराकर उस सन्दूक को यमुना में छुड़वा दिया । सन्दूक बहती हुई कुसुमपुरके एक पद्‌महृद नामके तालाबमें पहुँच गई । इस तालाबमें गंगा-यमुना के प्रवाहका एक छोटा-सा, नाला बहकर आता था । उसी नालेमें पड़कर यह सन्दुक तालाबमें आ गई । इसे किसी कुसुमदत्त नामके मालीने देखा । वह निकाल कर उसे अपने घर लिवा लाया । संदूकको खोलकर उसने देखा तोउसमें से यह लड़की निकली । कुसुमदत्तके कोई संतान न थी । इसलिये वह इसे पाकर बहुत खुश हुआ । अपनी स्त्रीको बुलाकर उसने इसे उसकी गोदमें रख दिया और कहा—प्रिये, भाग्यसे अपनेको यह लड़की अनायास मिल गई । इससे अपनेको बड़ी खुशी मनानी चाहिये । मुझे विश्वास है कि तुम भी इस अमूल्य संधिसे बहुत प्रसन्न होगी । प्रिये, यह मुझे पद्‌महृदमें मिली है । हम इसका नाम भी पद्‌मावती ही क्यों न रक्खें ? क्यों, नाम तो बड़ा ही सुन्दर है । मालिन जिन्दगी भरसे अपनी खाली गोदको आज एकाएक भरी पा बहुत

आनन्दित हुई । वह आनन्द इतना था कि उसके हृदयमें भी न समा सका । यही कारण था कि उसका रोम-रोम पुलकित हो रहा था । उसने बड़े प्रेमसे इसे छाती से लगाया ।

पद्मावती इस समय कोई तेरह चौदह वर्षकी है । उसके सुकोमल, सुगन्धित और सुन्दर यौवनरूपी फूलकी कलियाँ कुछ-कुछ खिलने लगी हैं । ब्रह्माने उसके शरीरको लावण्य सुधा-धारासे सींचना शुरू कर दिया है । वह अब थोड़े ही दिनोंमें स्वर्गकी देव कुमारियोंसे भी अधिक सुन्दरता लाभ कर ब्रह्माको अपनी सृष्टिका अभिमानी बनावेगी । लोग स्वर्गीय सुन्दरताकी बड़ी प्रशंसा करते हैं । ब्रह्माको उनकी इस थोथी तारीफसे बड़ी डाह है । इसलिये कि इससे उसकी रचना सुन्दरतामें कमी आती है और उस कमीसे इसे नीचा देखना पड़ता है । ब्रह्माने सर्व साधारणके इस भ्रमको मिटानेके लिए कि जो कुछ सुन्दरता है वह स्वर्ग ही में है, मानो पद्मावतीको उत्पन्न किया है । इसके सिवा इन लोगोंकी झूठी प्रशंसासे जो अमरांगनाएँ अभिमानके ऊँचे पर्वत पर चढ़कर सारे संसारको अपनी सुन्दरता की तुलनामें ना-कुछ चीज समझ बैठी हैं, उनके इस गर्वको चूर-चूर करना है । इन्हीं सब अभिमान, ईर्षा, मत्सर आदिके वश हो ब्रह्मा पद्मावतीको त्रिभुवन-सुन्दर बनानेमें विशेष यत्नशील है। । इसमें तो कोई सन्देह नहीं कि पद्मावती कुछ दिनों बाद तो ब्रह्माकी सब तरह आशा पूरी करेगी ही । पर इस समय भी इसका रूप-सौंदर्य इतना मनोमधुर है कि उसे देखते ही रहनेकी इच्छा होती है । प्रयत्न करने पर भी आँखें उस ओरसे हटना पसन्द नहीं करती है । अस्तु ।

पद्मावतीकी इस अनिंद्य सुन्दरताका समाचार किसीने चम्पाके राजा दन्तिवाहनको कह दिया । दन्तिवाहन इसकी सुन्दरता की तारीफ सुनकर कुसुमपुर आये । पद्मावतीको—एक मालीकी लड़कीको इतनी सुन्दरी, इतनी तेजस्विनी देखकर उसके विषयमें उन्हें कुछ सन्देह हुआ । उन्होने तब उस मालीको बुलाकर पूछा—सच कह यह लड़की तेरी ही है क्या ? और यदि तेरी नहीं तो इसे कहाँसे और कैसे लाया ? माली डर गया । उसने राजाके वालोंका कुछ उत्तर देते न बना । सिर्फ उसने इतना ही किया कि जिस सन्दूक में पद्मावती निकली थी, उसे राजाके सामने ला रख दिया और कह दिया कि

महाराज, मुझे अधिक तो कुछ मालूम नहीं, पर यह लड़की इस सन्दूकमेंसे निकली थी। मेरे कोई लड़काबाला न होनेसे इसे मैंने अपने यहाँ रख लिया। राजाने सन्दूक खोलकर देखा तो उसमें एक अगूँठी निकली। उस पर कुछ इबारत खुदी हुई थी। उसे पढकर राजाको पद्मावतीके सम्बन्धमें कोई सन्देह करने की जगह न रह गई। जैसे वे राजपुत्र हैं वैसे ही पद्मावती भी एक राजघरानेकी राजकन्या है। दन्तिवाहन तब उसके साथ ब्याह कर उसे चम्पामें ले आये और सुखमें अपना समय बिताने लगे।

दन्तिवाहनके पिता वसुपालने कुछ वर्षोतक और राज्य किया। एक दिन उन्हें अपने सिर पर यमदूत सफेद केश देख पडा। उसे देखकर इन्हें ससार, शरीर, विषय-भोगादिसे बड़ा वैराग्य हुआ। वे अपने राज्यका सब भार दन्तिवसाहनको सौंप कर जिनमन्दिर गये। वहाँ उन्होंने भगवानका अभिषेक किया, पूजन की, दान किया, गरीबों को सहायता दी। उस समय उन्हें जो उचित कार्य जान पडा उसे उन्होंने खुले हाथो किया बाद वे वहीं एक मुनिराज द्वारा दीक्षा ले योगी हो गये। उन्होंने योगदशामें खूब तपस्या की। अन्त में समाधिसे शरीर छोड़कर वे स्वर्ग गये।

दन्तिवाहन अब राजा हुए प्रजाका शासन ये भी अपने पिताकी भाँति प्रेमके साथ करते थे। धर्म पर इनकी भी पूरी श्रद्धा थी। पद्मावती सी त्रिलोक-सुन्दरीको पा ये अपनेको कृतार्थ मानते थे। दोनों दम्पत्ति सदा बड़े हँस-मुख और प्रसन्न रहते थे। सुखकी इन्हें चाह न थी, पर सुख ही इनका गुलाम बन रहा था।

एक दिन सती पद्मावतीने स्वप्न सिंह हाथी और सूरज को देखा। सबेरे उठकर उसने अपने प्राणनाथसे इस स्वप्न का हाल कहा। दन्तिवाहन ने उसके फलके सम्बन्धमें कहा—प्रिये, स्वप्न तुमने बड़ा ही सुन्दर देखा है। तुम्हें एक पुत्ररत्नकी प्राप्ति होगी। सिंहका देखना जनाता है, कि वह बड़ा ही प्रतापी होगा और सूरज यह कहता है कि वह प्रजारूपी कमल-वनका प्रफुल्लित करनेवाला होगा,उसके शासनसे प्रजा बड़ी सन्तुष्ट रहेगी। अपने स्वामी द्वारा स्वप्न फल सुनकर पद्मावतीको अत्यन्त प्रसन्नता हुई। और सच है, पुत्र प्राप्ति किसे प्रसन्नता नहीं होती।

पाठकोंको तेरपुरके रहनेवाले धनदत्त ग्वालाका स्मरण होगा, जिसने कि एक हजार पँखुरियोंका कमल भगवान्‌को चढ़ाकर बड़ा पुण्यबन्ध किया था। उसीकी कथा फिर लिखी जाती है। धनदत्तको तैरनेका बड़ा शौक था। वह रोज-रोज जाकर एक तालाबमें तैरा करता था। एक दिन वह तैरनेको गया हुआ था। कुछ होनहार ही ऐसा था जो वह तैरता-तैरता एक बार घनी काईमें बिंध गया। बहुत यत्न किया पर उससे निकलते न बना। आखिर बेचारा मर ही गया। मरकर वह जिनपूजाके पुण्यसे इसी सती पद्मावतीके गर्भमें आया।

उधर वसुमित्र सेठको जब इसके मरनेका हाल ज्ञान हुआ तो उसे बडा दु ख हुआ। सेठ उसी समय तालाब पर आया और धनदत्तकी लाशको निकलवा कर उसका अग्नि-सस्कार किया। ससारकी यह क्षणभगुर दशा देखकर वसुमित्रको बड़ा वैराग्य हुआ। वह सुगुप्ति मुनिराज द्वारा योगव्रत लेकर मुनि हो गया। अन्तमें वह तपस्या कर पुण्यके उदयसे स्वर्ग गया।

पद्मावतीके गर्भमें धनदत्तके आने पर उसे दोहला उत्पन्न हुआ। उसकी इच्छा हुई कि मेघ बरसने लगे और बिजलियाँ चमकने लगे। ऐसे समय पुरुष-वेषमें हाथमें अकुश लिये मैं स्वयं हाथी पर सवार होऊँ और मेरे साथ स्वामी भी बैठें। फिर हम दोनो घूमनेके लिये शहर बाहर निकले। पद्मावतीने अपनी यह इच्छा दन्तिवाहनसे जाहिर की। दन्तिवाहनने उसकी इच्छाके अनुसार अपने मित्र वायुवेग विद्याधर द्वारा मायामयी कृत्रिम मेघकी काली-काली घटाओं द्वारा आकाश आच्छादित करवाया। कृत्रिम बिजलियाँ भी उन मेघोमें चमकने लगी। राजा-रानी इस समय उस नर्मदातिलक नामके हाथी पर, जो सोमशर्माका जीव था और जिसे किसीने वसुवानको भेंट किया था, चढ़कर बड़े ठाटबाटसे नौकर-चाकरको साथ लिये शहर बाहर हुए। पद्मावतीका यह दोहला सचमुच ही बडा ही आश्चर्यजनक था। जो हो, जब ये शहर बाहर होकर थोड़ी ही दूर गये होगे कि कर्मयोगसे हाथी उन्मत्त हो गया। अकुश वगैरहकी वह कुछ परवाह न कर आगे चलनेवाले लोगोंकी भीड़को चीरता हुआ भाग निकला। रास्तेमें एक घने वृक्षोंकी वनीमें होकर वह भागा जा रहा था। सो दन्तिवाहनको उस समय कुछ ऐसी बुद्धि सूझ गई, कि जिससे वे एक वृक्षकी डालीको पकड़ कर लटक गये। हाथी आगे भागा ही

चला गया । सच है, पुण्य कष्ट समयमें जीवकों बचा लेता हैं । बेचारे दन्तिवाहन उदास मुँह और रोते-रोते अपनी राजाधानीमें आये । उन्हे इस बातका अत्यन्त दु:ख हुआ कि गर्भिणी प्रियाकी न जाने क्या दशा हुई होगी । दन्तिवाहनकी यह दशा देखकर समझदार लोगोंने समझा-बुझाकर उन्हें शान्त किया । इसमें कोई सन्देह नहीं कि सत्पुरुषोंके वचन चन्दनसे कहीं बढ़कर शीतल होते है। और उनके द्वारा दुखियोंके हृदयका दु ख सन्ताप बहुत जल्दी ठण्डा पड़ जाता है ।

उधर हाथी पद्मावतीको लिये भागा ही चला गया । अनेक जंगलों और गॉवोंको लॉघकर वह एक तालाब पर पहुँचा । वह बहुत थक गया था । इसलिये थकावट मिटानेको वह सीधा उस तालाबमें घुस गया । पद्मावती सहित तालाबमे उसे घुसता देख जलदेवीने झटसे पद्मावतीको हाथी परसे उतार कर तालाबके किनारे पर रख दिया । आफतकी मारी बेचारी पद्मावती किनारे पर बैठी-बैठी रोने लगी । वह क्या करे, कहॉं जाय, इस विषयमें उसका चित्त बिलकुल धीर न धरता था । सिवा रोनेके उसे कुछ न सूझता था । इसी समय एक माली इस ओर होकर अपने घर जा रहा था । उसने इसे रोते हुए देखा । इसके वेष-भूषा ओर चेहरेके रग-ढगसे इसे किसी उच्च घरानेकी समझ उसे इस पर बड़ी दया आई । उसने इसके पास आकर कहा—बहिन, जान पड़ता है तुम पर कोई भारी दु:ख आकर पड़ा है । यदि तुम कोई हर्ज न समझो तो मेरे घर चलो । तुम्हें वहॉं कोई कष्ट न होगा । मेरा घर यहॉंसे थोड़ी ही दूर पर हस्तिनापुरमें है और मैं जातिका माली हूँ । पद्मावती उसे दयावान् देख उसके साथ होली । इसके सिवा उसके लिये दूसरी गति भी न थी । उस मालीने पद्मावतीको अपने घर ले जाकर बड़े आदर-सत्कारके साथ रक्खा । वह उसे अपनी बहिनके बराबर समझता था । इसका स्वभाव बहुत अच्छा था । ठीक है, कोई-कोई साधारण पुरुष भी बड़े सज्जन होते हैं । इसे सरल और सज्जन होने पर भी इसकी स्त्री बडी कर्कशा थी । उसे दूसरे आदमीका अपने घर रहना अच्छा ही न लगता था । कोई अपने घरमें पाहुना आया कि उस पर सदा मुँह चढ़ाये रहना, उससे बोलना-चालना इसका यही बर्ताव रहा । एक दिन भाग्यसे वह माली किसी कामके लिये दूसरे गॉंव चला

गया । पीछेसे इसकी स्त्रीकी बन बड़ी । उसने पद्मावतीको गाली-गलौज देकर और बुरा भला कह घरसे निकाल दिया । वह एक घोर मसानमें पहुँची । प्रसूतिके दिन आ लगे थे । उस पर चिन्ता और दुःखके मारे इसे चैन नहीं था । इसने यहीं पर एक पुण्यवान पुत्र जना । उसके हाथ, पाँव, ललाट वगैरहमें ऐसे सब चिन्ह थे, जो बड़ेसे बड़े पुरुषके होने चाहिये । जो हो, इस समय तो उसकी दशा एक भिखारीसे भी बढ़कर थी । पर भाग्य कहीं छुपा नहीं रहता । पुण्यवान् महात्मा पुरुष कहीं हो, कैसी अवस्थामें हो, पुण्य वहीं पहुँच कर उसकी सेवा करता है । पर होना चाहिये पासमें पुण्य । पुण्य बिना संसारमें जन्म निस्सार है । जिस समय पद्मावतीने पुत्र जना उसी समय पुत्रके पुण्यका भेजा हुआ एक मनुष्य चाण्डालके वेषमें मसानमें पद्मावतीके पास आया और उसे विनयसे सिर झुकाकर बोला—माँ, अब चिन्ता न करो । तुम्हारे लड़केका दास आ गया है । वह इसकी सब तरह जी-जानसे रक्षा करेगा । किसी तरहका कोई कष्ट इसे न होने देगा । जहाँ इस बच्चेका पसीना गिरेगा वहाँ यह अपना खून गिरावेगा । आप मेरी मालकिन हैं । सब भार मुझ पर छोड़ आप निश्चिन्त होइये । पद्मावतीने ऐसे कष्टके समय पुत्रकी रक्षा करनेवालेको पाकर अपने भाग्यको सराहा, पर फिर भी अपना सब सन्देह दूर हो, इसलिये उससे कहा—भाई, तुमने ऐसे निराधार समयमें आकर मेरा जो उपकार करना विचारा है, तुम्हारे इस ऋणसे मैं कभी मुक्त नहीं हो सकती । मुझे तुमसे दयावानोंका अत्यन्त उपकार मानना चाहिये । अस्तु, इस समय सिवा इसके मैं और क्या अधिक कह सकती हूँ कि जैसा तुमने मेरा भला किया, वैसा भगवान् तुम्हारा भी भला करे । भाई, मेरी इच्छा तुम्हारा विशेष परिचय पाने की है । इसलिये कि तुम्हारा पहरावा और तुम्हारे चेहरे परकी तेजस्विता देखकर मुझे बड़ा ही सन्देह हो रहा है । अतएव यदि तुम मुझसे अपना परिचय देनेमें कोई हानि न समझो तो कृपा कर कहो । वह आगत पुरुष पद्मावतीसे बोला—माँ, मुझ आभागेकी कथा तुम सुनोगी । अच्छा तो सुनो, मैं सुनाता हूँ । विजयार्द्ध पर्वतकी दक्षिण श्रेणीमें विद्युत्प्रभ नामका एक शहर है । उसके राजाका नाम भी विद्युत्प्रभ है । विद्युत्प्रभकी रानीका नाम विद्युल्लेखा है । ये दोनों राजा-रानी ही मुझ अभागेके माता-पिता हैं । मेरा नाम बालदेव

है। एक दिन मैं अपनी प्रिया कनकमालाके साथ विमानमें बैठा हुआ दक्षिणकी ओर जा रहा था।

रास्तेमें मुझे रामगिरी पर्वत पड़ा। उस पर मेरा विमान अटक गया। मैंने नीचे नजर डालकर देखा तो मुझे एक मुनि देख पड़े। उन पर मुझे बड़ा गुस्सा आया। मैंने तब कुछ आगा-पीछा न सोचकर उन मुनिको बहुत कष्ट दिया, उन पर घोर उपसर्ग किया। उनके तपके प्रभावसे जिनभक्त पद्मावती देवीका आसन हिला और वह उसी समय वहाँ आई। उसने मुनिका उपसर्ग दूर किया। सच है, साधुओं पर किये उपद्रवको सम्यग्दृष्टि कभी नहीं सह सकते। माँ, उस समय देवीने गुस्सा होकर मेरी सब विद्याएँ नष्ट कर दीं। मेरा सब अभिमान चूर हुआ। मैं एक मद रहित हाथीकी तरह नि सत्व,-तेज रहित हो गया। मैं अपनी इस दशा पर बहुत पछताया। मैं रोकर देवीसे बोला—प्यारी माँ, मैं आपका अज्ञानी बालक हूँ। मैंने जो कुछ यह बुरा काम किया वह सब मूर्खता और अज्ञानसे न समझ कर ही किया है। आप मुझे इसके लिए क्षमा करें और मेरी पीछी विद्याएँ मुझे लौटा दे। इसमें कोई सन्देह नहीं कि मेरी यह दीनता भरी पुकार व्यर्थ न गई देवीने शान्त होकर मुझे क्षमा किया और वह बोली—"हस्तिनापुरके मसानमें एक विपत्तिकी मारी स्त्रीके गर्भसे एक पुण्यवान् और तेजस्वी पुत्ररत्न जन्म लेगा। उस समय पहुँचकर तू उसकी सावधानीसे रक्षा करना और अपने घर लाकर पालना-पोसना। उसके राज्य समय तुझे सब विद्याएँ सिद्ध होंगी।" माँ उसकी आज्ञासे मैं तभीसे यहाँ इस वेषमें रहता हूँ। इसलिए कि मुझे कोई पहिचान न सके। माँ, यही मुझ अभागेकी कथा है। आज मैं आपकी दयासे कृतार्थ हुआ। पद्मावती विद्याधरका हाल सुनकर दुःखी जरूर हुई, पर उसे अपने पुत्रका रक्षक मिल गया, इससे कुछ सन्तोष भी हुआ। उसने तब अपने प्रिय बच्चेको विद्याधरके हाथमें रखकर कहा—भाई, इसकी सावधानीसे रक्षा करना। अब इसके तुम ही सब प्रकार कर्त्ताधर्त्ता हो। मुझे विश्वास है कि तुम इसे अपना ही प्यारा बच्चा समझोगे। उसने फिर पुत्रके प्रकाशमान चेहरे पर प्रेमभरी दृष्टि डालकर पुनः विरागसे भर आये हृदयसे कहा—मेरे लाल, तुम पुण्यवान् होकर भी उस अभागिनी माँके पुत्र हुए हो, जो जन्मते ही तुम्हें छोडकर बिछुड़ना

चाहती है । लाल, मैं तो अभागिनी थी ही, पर तुम भी ऐसे अभागे हुए जो अपनी माँके प्रेममय हृदयका कुछ भी पता न पा सके और न पाओगे ही । मुझे इस बातका बड़ा खेद रहेगा कि जिस पुत्रने अपनी प्रेम-प्रतिमा माँके पवित्र हृदय द्वारा प्रेमका पाठ न सीखा वह दूसरोंके साथ किस तरह प्रेम करेगा ? कैसे दूसरोके साथ प्रेमका बरताव कर उनका प्रेमपात्र बनेगा । जो हो, तब भी मुझे इस बातकी खुशी है कि तुम एक दूसरी माँकेपास जाते हो, और वह भी आखिर है तो माँ ही । जाओ लाल जाओ, सुखसे रहना, परमात्मा तुम्हारा मगल करे । इस प्रकार प्रेममय पवित्र आशिष देकर पद्मावती कड़ा हृदय कर चल दी । बालदेवने उस सुन्दर और तेजपुज बच्चेको अपने घर ले आकर अपनी प्रिया-कनकमालाकी गोदमें रख दिया और कहा—प्रिये, भाग्यसे मिले इस निधिको लो । कनकमाला उस बाल-चन्द्रमासे अपनी गोदको भरी देखकर फूली न समाई । वह उसे जितना ही देखने लगी उसका प्रेम होना सभर न था, उतना इस नये बालक पर उसका प्रेम हो गया, सचमुच यह आश्चर्य है । अथवा नई वस्तु स्वभाव हीसे प्रिय होती है और फिर यदि वह अपनी हो जाय तब तो उस पर होनेवाले प्रेमके सम्बन्धमे कहना ही क्या । और वह प्रेम, कि जिसकी प्राप्तिके लिए आत्मा सदा तडफा ही करता है और वह पुत्र जैसी परम प्रिय वस्तु । तब पढनेवाले कनकमालाके प्रेममय हृदयका एक बार अवगाहन करके देखे कि एक नई माँ जिस बच्चे पर इतना प्रेम करती है तब जिसने उसे जन्म दिया उसके प्रेमका क्या कुछ अन्त है—सीमा है । नहीं । माँका अपने बच्चे पर जो प्रेम होता है उसकी तुलना किसी दृष्टात या उदाहरण द्वारा नहीं की जा सकती और जो करते हैं वे माँके अनन्त प्रेमको कम करनेका यत्न करते हैं । कनकमाला उसे पाकर बहुत प्रसन्न हुई । उसने उसका नाम करकण्डु रक्खा । इसलिए कि उस बच्चेके हाथमें उसे खुजली देख पडी थी । कनकमालाने उसका लालन-पालन करनेमें अपने खास बच्चेसे कोई कमी न की । सच है, पुण्यके उदयसे कष्ट समयमें भी जीवोको सुख सम्पत्ति प्राप्त हो जाती है । इसलिए भव्यजनोंको जिन पूजा, पात्र-दान, व्रत, उपवास, शील, संयम आदि पुण्य-कर्मों द्वारा सदा शुभ कर्म करते रहना चाहिए ।

पद्मावती तब करकण्डुसे जुदा होकर गान्धारी नामकी क्षुल्लकिनीके

पास आई । उसे उसने भक्तिसे प्रणाम किया और आज्ञा पा उसीके पास वह बैठ गई । थोड़ी देर बाद पद्मावतीने उस क्षुल्लकिनीसे अपना सब हाल कहा और जिनदीक्षा लेनेकी इच्छा प्रगट की । क्षुल्लकिनी उसे तब समाधिगुप्त मुनिके पास लिवा गई । पद्मावतीने मुनिराजको नमस्कार कर उनसे भी अपनी इच्छा कह सुनाई । उत्तरमें मुनिने कहा—बहिन, तू साध्वी होना चाहती है, तेरा यह विचार बहुत अच्छा है पर यह समय तेरी दीक्षाके लिए उपयुक्त नहीं है । कारण तूने पहले जन्ममे नागदत्ताकी पर्यायमें जिनव्रतको तीन बार ग्रहण कर तीनों बार ही छोड दिया था और फिर चौथी बार ग्रहण कर तू उसके फलसे राजकुमारी हुई । तूने तीन बार व्रत छोड़ा उससे तुझे तीनों बार ही दु ख उठाना पड़ा । तीसरी बारका कर्म कुछ और बचा है । वह जब शान्त हो जाय और इस बीचमें तेरे पुत्रको भी राज्य मिल जाय तब कुछ दिनों तक राज्य सुख भोग कर फिर पुत्रके साथ-साथ ही तू भी साध्वी होना । मुनि द्वारा अपना भविष्य सुनकर पद्मावती उन्हे नमस्कार कर उस क्षुल्लकिनीके साथ-साथ चली गई । अबसे वह पद्मावती उसीके पास रहने लगी ।

इधर करकण्डु बालदेवके यहाँ दिनों-दिन बढ़ने लगा । जब उसकी पढनेकी उमर हुई तब बालदेवने अच्छे-अच्छे विद्वान् अध्यापकोंको रखकर उसे पढाया । करकण्डु पुण्यके उदयसे थोड़े ही वर्षोंमें पढ़-लिखकर अच्छा होशियार हो गया । कई विषयमें उसकी अरोक गति हो गई । एक दिन बालदेव और करकण्डु हवा-खोरी करते-करते शहर बाहर मसानमें आ निकले । ये दोनो एक अच्छी जगह बैठकर मसान भूमिकी लीला देखने लगे । इतनेमें जयभद्र मुनिराज अपने सघको लिये इसी मसानमें आकर ठहरे । यहाँ एक नर-कपाल पडा हुआ था । उसके मुँह और आँखोंके तीन छेदोंमें तीन बाँस उग रहे थे । उसे देखकर एक मुनिने विनोदसे अपने गुरुसे पूछा—भगवान्, यह क्या कौतुक है, जो इस नर-कपालमें तीन बाँस उगे हुए हैं ? तपस्वी मुनिने उसके उत्तरमे कहा—इस हस्तिनापुरका जो नया राजा होगा, इन बाँसोंके उसके लिए अकुश, छत्र, दण्ड वगैरह बनेंगे । जयभद्राचार्य द्वारा कहे गये इस भविष्यको किसी एक ब्राह्मणने सुन लिया । अत वह धनकी आशासे इन बाँसोंको उखाड लाया । उसके हाथसे इन्हें करकण्डुने खरीद लिया । सच है,

मुनि लोग जिसके सम्बन्धमें जो बात कह देते हैं वह फिर होकर ही रहती है।

उस समय हस्तिनापुरका राजा बलवाहन था। इसके कोई संतान न थी। उसकी मृत्यु हो गई। अब राजा किसको बनाया जाय, इस विषयको चर्चा चली। आखिर यह निश्चय पाया कि महाराज का खास हाथी जलभरा सुवर्ण-कलश देकर छोड़ा जाय। वह जिसका अभिषेक कर राजसिंहासन पर ला बैठा दे वही इस राज्यका मालिक हो। ऐसा ही किया गया। हाथी राजाको ढूँढ़ने निकला। चलता-चलता वह करण्डुके पास पहुँचा। वही इसे अधिक पुण्यवान् देख पड़ा। उसी समय उसने करकण्डुका अभिषेक कर उसे अपने ऊपर चढ़ा लिया और राज्यसिंहासन पर ला रख दिया। सारी प्रजाने उस तेजस्वी करकण्डुको अपना मालिक हुआ देख खूब जय-जयकार मनाया और खूब आनन्द उत्सव किया। करकण्डुके भाग्यका सितारा चमका। वह राजा हुआ। सच है, जिन भगवान्‌की पूजाके फलसे क्या-क्या प्राप्त नहीं होता। करकण्डुको राजा होते ही बालदेवको उसकी नष्ट हुई विद्याएँ फिर सिद्ध हो गई। उसे उसकी सेवाका मनचाहा फल मिल गया। इसके बाद ही बालदेव विद्याकी सहायतासे करकण्डुकी खास माँ पद्मावती जहाँ थी, वहाँ गया और उसे करकण्डुके पास लाकर उसने दोनो माता-पुत्रोंका मिलाप करवाया। पद्मावती आज कृतार्थ हुई। उसकी वर्षोंकी तपस्या समाप्त हुई। पश्चात् बालदेव इन दोनोंको बडी नम्रतासे प्रणाम कर अपनी राजधानीमे चला गया।

करकण्डुके राजा होने पर कुछ राजे लोग उससे विरुद्ध होकर लडनेको तैयार हुए। पर करकण्डुने अपनी बुद्धिमानी और राजनीतिकी चतुरतासे सबको अपना मित्र बनाकर देशभरमें शत्रुका नाम भी न रहने दिया। वह फिर सुखसे राज्य करने लगा। करकण्डुके दिनों-दिन बढ़ते हुए प्रतापकी खबर चारों ओर फैलती-फैलती दन्तिवाहनके पास पहुँची। दन्तिवाहन करकण्डुके पिता हैं। पर न तो दन्तिवाहनको यह ज्ञात था कि करकण्डु मेरा पुत्र है और न करकण्डुको इस बातका पता था कि दन्तिवाहन मेरे पिता होते हैं। यही कारण था कि दन्तिवाहनको इस नये राजाका प्रताप सहन नहीं हुआ। उन्होंने अपने एक दूतको करकण्डुके पास भेजा। दूतने आकर करकण्डुसे प्रार्थना की—"राजाधिराज दन्तिवाहन मेरे द्वारा आपको आज्ञा करते हैं कि यदि राज्य

आप सुखसे करना चाहते हैं तो उनकी आप आधीनता स्वीकार करें। ऐसे किये बिना किसी देशके किसी हिस्से पर आपकी सत्ता नहीं रह सकती।'' करकण्डु एक तेजस्वी राजा और उस पर एक दूसरेकी सत्ता, सचमुच करकण्डुके लिए यह आश्चर्यकी बात थी। उसे दन्तिवाहनकी इस धृष्टता पर बड़ा क्रोध आया। उसने तेज आँखें कर दूतकी ओर देखा और उससे कहा—यदि तुम्हें अपनी जान प्यारी है तो तुम यहाँसे जल्दी भाग जाओ। तुम दूसरेके नौकर हो, इसलिए मैं तुम पर दया करता हूँ। नहीं तो तुम्हारी इस धृष्टताका फल तुम्हें मैं अभी ही बता देता। जाओ, और अपने मालिकसे कह दो कि वह रणभूमिमें आकर तैयार रहे। मुझे जो कुछ करना होगा मैं वहीं करूँगा। दूतने जैसे ही करकण्डुकी आँखें चढी देखीं वह उसी समय डरकर राज्यदरबारसे रवाना हो गया।

इधर करकण्डु अपनी सेनामें युद्धघोषणा दिलवा कर आप दन्तिवाहन पर जा चढा और उनकी राजधानीको उसने सब ओरसे घेर लिया। दन्तिवाहन तो इसके लिए पहले ही से तैयार थे। वे भी सेना ले युद्धभूमिमें उतरे। दोनों ओरसे व्यूह रचना हुई। रणवाद्य बजनेवाला ही था कि पद्मावतीको यह ज्ञान हो कि यह युद्ध शत्रुओंका न होकर खास पिता-पुत्रका है। वह तब उसी समय अपने प्राणनाथके पास गई और सब हाल उसने उनसे कह सुनाया। दन्तिवाहनको इस समय अपनी प्रिया-पुत्रको प्राप्त कर जो आनन्द हुआ, उसका पता उन्हींके हृदयको है। दूसरा वह कुछ थोड़ा बहुत पा सकता है जिस पर ऐसा ही भयानक प्रसग आकर कभी पड़ा हो। सर्व साधारण उनके उस आनन्दका, उस सुखका थाह नहीं ले सकते। दन्तिवाहन तब उसी समय हाथीसे उतर कर अपने प्रिय-पुत्रके पास आये। करकण्डुको ज्ञात होते ही वह उनके सामने दौड़ा गया और जाकर उनके पाँवोंमें गिर पड़ा। दन्तिवाहनने झटसे उसे उठाकर अपनी छातीसे लगा लिया। पिता-पुत्रका पुण्य मिलाप हुआ। इसके बाद दन्तिवाहनने बड़े आनन्द और ठाठबाटसे पुत्रका शहरमें प्रवेश कराया। प्रजाने अपने युवराजका अपार आनन्दके साथ स्वागत किया। घर-घर आनन्दउत्सव मनाया गया। दान दिया गया। पूजा-प्रभावना की गई महा अभिषेक किया गया। गरीब लोग मनचाही सहायतासे खुश किये गये। इस प्रकार पुण्य-प्रसाद

करकण्डुने राज्यसम्पत्तिके सिवा कुटुम्ब-सुख भी प्राप्त किया। वह अब स्वर्गके देवोंकी तरह सुखसे रहने लगा।

कुछ दिनों बाद दन्तिवाहनने अपने पुत्रका विवाह समारंभ किया। उसमें उन्होंने खूब खर्च कर बड़े वैभवके साथ करकण्डुका कोई आठ हजार राजकुमारियोंके साथ ब्याह किया। ब्याहके बाद ही दन्तिवाहन राज्यका भार सब करकण्डुके जिम्मे कर आप अपनी प्रिया पद्मावतीके साथ सुखसे रहने लगे। सुख-चैनसे समय बिताना उन्होंने अब अपना प्रधान कार्य रक्खा।

इधर करकण्डु राज्यशासन करने लगा। प्रजाको उसके शासनकी जैसी आशा थी, करकण्डुने उससे कहीं बढ़कर धर्मज्ञता, नीति और प्रजा प्रेम बतलाया। प्रजाको सुखी बनानेमें उसने कोई बात उठा न रक्खी। इस प्रकार वह अपने पुण्यका फल भोगने लगा। एक दिन समय देख मंत्रियोंने करकण्डुसे निवेदन किया—महाराज, चेरम, पाण्डय और चोल आदि राजे चिर समयसे अपने आधीन हैं। पर जान पड़ता है उन्हें इस समय कुछ अभिमानने आ घेरा है। वे मानपर्वतका आश्रय पा अब स्वतन्त्रसे हो रहे हैं। राज-कर वगैरह भी अब वे नहीं देते। इसलिए उन पर चढ़ाई करना बहुत आवश्यक है। इस समय ढील कर देनेसे सम्भव है थोड़े ही दिनोंमें शत्रुओंका जोर अधिक बढ जाये। इसलिए इसके लिए प्रयत्न कीजिए कि वे ज्यादा सिर न चढा पावें, उसके पहले ही ठीक ठिकाने आ जाँय। मंत्रियोंकी सलाह सुन और उस पर विचार कर पहले करकण्डुने उन लोगोंके पास अपना दूत भेजा। दूत अपमानके साथ लौट आया। करकण्डुने जब सीधी तरह सफलता प्राप्त न होती देखी तब उसे युद्धके लिए तैयार होना पडा। वह सेना लिए युद्धभूमिमें जा डटा। शत्रु लोग भी चुपचाप न बैठकर उसके सामने हुए। दोनों ओरकी सेनाकी मुठभेड़ हो गई। घमासान युद्ध हुआ। दोनों ओरके हजारों वीर काम आये। अन्तमें करकण्डुकी सेनाके युद्धभूमिसे पाँव उखड़े। यह देख करकण्डु स्वयं युद्धभूमिमें उतरा। बड़ी वीरतासे वह शत्रुओंको दाँतों तले उँगली दबाना पड़ी। विजयश्रीने करकण्डुको ही बरा। जब शत्रुराजे आ-आकर इसके पाँव पड़ने लगे और इसकी नजर उनके मुकुटों पर पड़ी तो देखकर यह एक साथ हतप्रभ हो गया और बहुत-बहुत पश्चात्ताप करने लगा कि—हाय।

मुझ पापीने यह अनर्थ क्यों किया ? न जाने इस पापसे मेरी क्या गति होगी ? बात यह थी कि उन राजोंके मुकुटोंमें जिन भगवानकी प्रतिमाएँ खुदी हुई थीं। और वे सब राजे जैनी थे। अपने धर्मबन्धुओंको जो उसने कष्ट दिया और भगवान्का अविनय किया उसका उसे बेहद दु:ख हुआ। उसने उन लोगोंको बड़े आदरभावसे उठाकर पूछा—क्या सचमुच आप जैनधर्मी हैं ? उनकी ओरसे सन्तोषजनक उत्तर पाकर उसने बड़े कोमल शब्दोंमे उनसे कहा—महानुभावो, मैंने क्रोधसे अन्धे होकर जो आपको यह व्यर्थ कष्ट दिया, आप पर उपद्रव किया, इसका मुझे अत्यन्त दु ख है। मुझे इस अपराधके लिए आप लोग क्षमा करें। इस प्रकार उनसे क्षमा कराकर उनको साथ लिये वह अपने देशको रवाना हुआ। रास्तेमें तेरपुरके पास इनका पड़ाव पड़ा। इसी समय कुछ भीलोंने आकर नम्र मस्तकसे इनसे प्रार्थना की—राजाधिराज, हमारे तेरपुरसे दो—कोस दूरी पर एक पर्वत है। उस पर एक छोटासा धराशिव नामका गाँव बसा हुआ है। इस गाँवमें एक बहुत बड़ा ही सुन्दर और भव्य जिनमन्दिर बना हुआ है। उसमें विशेषता यह है कि उसमें कोई एक हजार खम्भे हैं। वह बड़ा सुन्दर है। उसे आप देखनेको चलें। इसके सिवा पर्वत पर एक यह आश्चर्यकी बात है कि वहाँ एक बाँवी है। एक हाथी रोज-रोज अपनी सूँडमें थोड़ासा पानी और एक कमलका फूल लिये वहाँ आता है और उस बाँवीकी परिक्रमा देकर वह पानी और फूल उस पर चढ़ा देता है। इसके बाद वह उसे अपना मस्तक नवाकर चला जाता है। उसका यह प्रतिदिनका नियम है। महाराज, नहीं जान पड़ता कि इसका क्या कारण है। करकण्डु भीलों द्वारा यह शुभ समाचार सुनकर बहुत प्रसन्न हुआ। इस समाचारको लानेवाले भीलोंको उचित इनाम देकर वह स्वयं सबको साथ लिये उस कौतुकमय स्थानको देखने गया। पहले उसने जिन मन्दिर जाकर भक्ति पूर्वक भगवान्की पूजा की, स्तुति की। सच है, धर्मात्मा पुरुष धर्मके कामोंमें कभी प्रमाद—आलस नहीं करते। बाद वह उस बाँवीकी जगह गया। उसने वहाँ भीलोंके कहे माफिक हाथीको उस बाँवीको पूजा करते पाया। देखकर उसे बड़ा अचम्भा हुआ। उसने सोचा कि इसका कुछ न कुछ कारण होना चाहिए। नहीं तो इस पशुमें ऐसा भक्तिभाव नहीं देखा जाता। यह विचार कर उसने

उस बाँवीको खुदवाया । उसमेंसे एक सन्दूक निकली । उसने उसे खोलकर देखा । सन्दूकमें एक रत्नमयी पार्श्वनाथ भगवानकी पवित्र प्रतिमा थी । उसे देखकर धर्मप्रेमी करकण्डुको अतिशय प्रसन्नता हुई । उसने तब वहाँ 'अग्गलदेव' नामका एक विशाल जिन मन्दिर बनवाकर उसमें बड़े उत्सवके साथ उस प्रतिमाको विराजमान किया । प्रतिमा पर एक गाँठ देखकर करकण्डुने शिल्पकारसे कहा—देखो, तो प्रतिमा पर यह गाँठ कैसी है ? प्रमिमाकी सब सुन्दरता इससे मारी गई । इसे सावधानीके साथ तोड़ दो । यह अच्छी नहीं देख पड़ती । शिल्पकारने कहा—महाराज, यह गाँठ ऐसी वैसी नहीं है जो तोड़ दी जाय । ऐसी रत्नमयी दिव्य प्रतिमा पर गाँठ होनेका कुछ न कुछ कारण जान पड़ता है । इसका बनानेवाला इतना कम बुद्धि न होगा कि प्रतिमा की सुन्दरता नष्ट होनेका ख्याल न कर इस गाँठको रहने देता । मुझे जहाँतक जान पड़ता है, इस गाँठका सम्बन्ध किसी भारी जल-प्रवाहसे होना चाहिए । और यह असंभव भी नहीं । सभवत इसकी रक्षाके लिए यह प्रयत्न किया गया हो । इसलिए मेरी समझमें इसका तुड़वाना उचित नहीं । करकण्डुने उसका कहा न माना । उसे उसकी बात पर विश्वास न हुआ । उसने तब शिल्पकारसे बहुत आग्रह कर आखिर उसे तुड़वाया ही । जैसे ही वहाँ गाँठ टूटी उसमेंसे एक बड़ा भारी जल-प्रवाह वह निकला । मन्दिरमें पानी इतना भर गया कि करकण्डु वगैरहको अपने जीवनके बचनेका भी सन्देह हो गया । तब वह जिनभक्त उस प्रवाहके रोकने के लिए संन्यास ले कुशासन पर बैठ कर परमात्माका स्मरण चिंतन करने लगा । उसके पुण्य-प्रभावसे नागकुमारने प्रत्यक्ष आकर उससे कहा—राजन्, काल अच्छा नहीं, इसलिए आप इस जलप्रवाहके रोकनेका आग्रह न करें । इस प्रकार करकण्डुको नागकुमारने समझा कर आसन परसे उठ जानेको कहा । करकण्डु नागकुमारके कहनेसे सन्यास छोड़ उठ गया । उठकर उसने नागकुमारसे पूछा—क्योंजी, ऐसा सुन्दर यह लक्षण यहाँ किसने बनाया और किसने इस बाँवीमें इस प्रतिमाको विराजमान किया ? नागकुमारने कहा—सुनिए, विजयार्द्ध पर्वतकी उत्तर श्रेणीमें खूब सम्पत्तिशाली नभस्तिलक नामका एक नगर था । उसमें अमितवेग ओर सुवेग नामके दो विद्याधर राजे हो चुके हैं । दोनों धर्मज्ञ और सच्चे जिनभक्त थे । एक दिन वे दोनों भाई आर्यखण्डके

जिनमन्दिरोंके दर्शन करनेके लिए आये । यहाँ घूमते हुए उन्होंने पार्श्वनाथ भगवान्‌की इस रत्नमयी प्रतिमाको देखा । इसके दर्शन कर उन्होंने इसे एक सन्दूकमे बन्द कर दिया और सन्दूकको एक गुप्त स्थान पर रखकर वे उस समय चले गये । कुछ समय बाद वे पीछे आकर उस सन्दूकको कहीं अन्यत्र ले जानेके लिए उठाने लगे पर सन्दूक अबकी बार उनसे न उठी । तब तेरपुर जाकर उन्होंने अवधिज्ञानी मुनिराजसे सब हाल कहकर सन्दूकके न उठनेका कारण पूछा । मुनिने कहा—"सुनिए, यह सुखकारिणी सन्दूक तो पहले लयण ऊपर दूसरा लयण होगी । मतलब यह कि यह सुवेग आर्तध्यानसे मरकर हाथी होगा । वह इस सन्दूक की पूजा किया करेगा । कुछ समय बाद करकण्डु राजा यहाँ आकर इस सन्दूकको निकालेगा और सुवेगका जीव हाथी तब सन्यास ग्रहण कर स्वर्ग गमन करेगा । इस प्रकार मुनि द्वारा इस प्रतिमाकी चिरकाल तक अवस्थिति जाकर उन्होंने मुनिसे फिर पूछा—नो प्रभो, इस लयणको किसने बनाया ? मुनिगज बोले—इसी विजयार्द्धकी दक्षिण श्रेणीमें बसे हुए रथनूपुरमें नील और महानील नामके दो राजे हो गये हैं । शत्रुओंके साथ युद्धमें उनकी विद्या, धन, राज्य वगैरह सब कुछ नष्ट हो गया । तब वे इस मलय पर्वत पर आकर बसे । यहाँ वे कई वर्षो तक आरामसे रहे । दोनों भाई बडे धर्मात्मा थे । उन्होंने यह लयण बनवाया । पुण्यसे उन्हें उनकी विद्याएँ फिर प्राप्त हो गई । तब वे पीछे अपनी जन्मभुमि रथनूपुर चले गये । इसके बाद कुछ दिनों तक वे दोनों और गृह-ससारमें रहे । फिर जिनदीक्षा लेकर भाई साधु हो गये । अन्तमें तपस्याके प्रभावसे वे स्वर्ग गये ।" इस प्रकार सब हाल सुनकर बड़ा भाई अमितवेग तो उसी समय दीक्षा लेकर मुनि हो गया । और अन्तमें समाधिसे मरकर ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें महर्द्धिक देव हुआ । और सुवेग—अमितवेगका छोटा भाई आर्त्तध्यानसे मरकर यह हाथी हुआ । सो ब्रह्मोत्तर स्वर्गके देखने पुर्व जन्मके भातृ-प्रेमके वश हो, आकर इसे धर्मोपदेश किया, समझाया । उससे इस हाथीको जातिस्मरण ज्ञान हो गया । इसने तब अणुव्रत ग्रहण किये । तब हीसे यह इस प्रकार शान्त रहता है और सदा इस बॉवीकी पूजन किया करता है । तुमने बाँवी तोड़ाकर उसमेंसे प्रतिमा निकाल ली तब हीसे हाथी संन्यास लिये यहीं रहता है । और राजन्, आप पूर्वजन्ममें

इसी तेरपुरमें ग्वाल थे । आपने तबएक कमलके फूल द्वारा जिनभगवानकी पूजा की थी । उसीके फलसे इस समय आप राजा हुए हैं । राजन्, यह जिनपूजा सब पुण्यकर्मोंमें उत्तम पुण्यकर्म है यही तो कारण है कि क्षणमात्रमे इसके द्वारा उत्तमसे उत्तम सुख प्राप्त हो सकता है । इस प्रकार करकण्डुको आदिसे इति पर्यन्त सब हाल कहकर और धर्म प्रेमसे उसे नमस्कार कर नागकुमार अपने स्थान चला गया । सच है यह पुण्य हीका प्रभाव है जो देव भी मित्र हो जाते हैं ।

हाथीको संन्यास लिये आज तीसरा दिन था । करकण्डुने उसके पास जाकर उसे धर्मका पवित्र उपदेश किया । हाथी अन्तमें सम्यक्त्व सहित मरकर सहस्रार स्वर्गमे महर्द्धिक देव हुआ । एक पशु धर्मका उपदेश सुन कर स्वर्गमें अनन्त सुखोंका भोगनेवाला देव हुआ, तब जो मनुष्य जन्म पाकर पवित्र भावोंसे धर्म पालन करें तो उन्हे क्या प्राप्त न हो ? बात यह है कि धर्मसे बढ़कर सुख देनेवाली ससारमें कोई वस्तु है ही नहीं । इसलिए धर्मप्राप्तिके लिए सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

करकण्डु इसके बाद इसी पर्वत पर अपने, अपनी मॉके तथा बालदेवके नामसे विशाल और सुन्दर तीन जिनमन्दिर बनवाये, बड़े वैभवके साथ उनकी प्रतिष्ठा करवाई । जब करकण्डुने देखा कि मेरा सासारिक कर्त्तव्य सब पूरा हो चुका तब राज्यका सब भार अपने पुत्र वसुपालको सौंप कर और ससार, शरीर, विषय-भोगादि से विरक्त होकर आप अपने माता-पिता तथा और भी कई राजोंके साथ जिनदीक्षा ले योगी हो गया । योगी होकर करकण्डु मुनिने खूब तप किया, जो कि निर्दोष और ससार-समुद्रसे पार करनेवाला है । अन्तमें परमात्म-स्मरणमें लील हो उसने भौतिक शरीर छोड़ा । तपके प्रभावसे उसे सहस्रार स्वर्गमें दिव्य देह मिली । पद्मावती दन्तिवाहन तथा अनरू राजे तो अपने पुण्यके अनुसार स्वर्गलोक गये ।

करकण्डुने ग्वालके जन्ममें केवल एक कमलके फूल द्वारा भगवानकी पूजा की थी । उसे उसका जो फल मिला उसे आप सुन चुके हैं । तब जो पवित्र भावपूर्वक आठ द्रव्योंसे भगवानकी पूजा करेंगे उनके सुखका तो फिर

पूछना ही क्या ? थोड़ेमें यों समझिए कि जो भव्यजन भक्तिसे भगवानकी प्रतिदिन पूजा किया करते हैं वे सर्वोत्तत-सुख मोक्ष भी प्राप्त कर लेते हैं, तब और सांसारिक सुखोंकी तो उनके सामने गिनती ही क्या है ?

एक बे-समझ ग्वालने जिन भगवानके पवित्र चरणोंकी एक कमलके फूलसे पूजा की थी, उसके फलसे वह करकण्डु राजा होकर देवों द्वारा पूज्य हुआ । इसलिए सुखकी चाह करनेवाले अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे वे जिन-पूजाकी ओर अपने ध्यानको आकर्षित करें । उससे उन्हें मनचाहा सुख मिलेगा । क्योंकि भावोंका पवित्र करनेका जिन-पूजा भी एक प्रधान कारण है ।

-----

११४. जिनपूजन-प्रभाव-कथा

ससार द्वारा पूजे जानेवाले जिनभगवानको, सर्वश्रेष्ठ गिनी जानेवाली जिनवाणीको और राग, द्वेष, मोह, माया आदि दोषोंसे रहित परम वीतरागी साधुओंको नमस्कार कर जिनपूजा द्वारा फल प्राप्त करनेवाले एक मेंढककी कथा लिखी जाती है ।

शास्त्रोंमें उल्लेख किये उदाहरणों द्वारा यह बात खुलासा देखनेमें आती है कि जिन भगवानकी पूजा पापोंकी नाश करनेवाली और स्वर्ग मोक्षके सुखोंकी देनेवाली है । इसलिए जो भव्यजन पवित्र भावों द्वारा धर्मवृद्धिके अर्थ जिनपूजा करते हैं वे ही सच्चे सम्यग्दृष्टि हैं और मोक्ष जानेके अधिकारी है । इसके विपरीत पूजा की जो निन्दा करते हैं वे पापी हैं और ससारमें निन्दाके पात्र हैं । ऐसे लोग सदा दु ख, दरिद्रता, रोग, शोक आदि कष्टोको भोगते है और अन्तमें दुर्गतिमें जाते हैं । अतएव भव्यजनोको उचित है कि वे जिन भगवानका अभिषेक, पूजन, स्तुति, ध्यान आदि सत्कर्मोको सदा किया करें । इसके सिवा तीर्थयात्रा, प्रतिष्ठा, जिन मन्दिरोंका जीर्णोद्धार आदि द्वारा जैनधर्मकी प्रभावना करना चाहिए । इन पूजा प्रभावना आदि कारणोंसे सम्यग्दर्शन प्राप्त होता है । जिन भगवानइद्र, धरणेन्द्र, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी महापुरुषों द्वारा पूज्य हैं । इसलिए उनकी पूजा तो करनी ही चाहिए । जिनपूजा द्वारा सभी उत्तम-उत्तम सुख मिलते हैं । जिनपूजा करना महापुण्यका कारण है, ऐसा शास्त्रोंमें जगह-जगह लिखा मिलता है । इसलिए जिनपूजा समान दूसरा पुण्यका कारण संसारमें न तो हुआ और न होगा । प्राचीन कालमें भरत जैसे अनेक बड़े-बड़े पुरुषोंने जिनपूजा द्वारा जो फल प्राप्त किया है, किसकी शक्ति है जो उसे लिख सके । गन्धपुष्पादि आठ द्रव्योंसे पूजा करनेवाले जिनपूजा द्वारा जो फल लाभ करते हैं, उनके सम्बन्धमें हम क्या लिखें, जब कि केवल ना-कुछ चीज फूलसे पूजाकर एक मेंढकने स्वर्ग सुख प्राप्त किया । समन्तभद्र स्वामीने भी इस विषयमें लिखा है—राजगृहमें हर्षसे उन्मत्त हुए एक मेंढकने सत्पुरुषोको यह स्पष्ट बतला दिया कि केवल एक फूल द्वारा भी जिन भगवानकी पूजा करनेसे उत्तम फल प्राप्त होता है, जैसा कि मैंने प्राप्त किया ।

अब मेंढककी कथा सुनिए—

यह भारतवर्ष जम्बुद्वीपके मेरुकी दक्षिण दिशामें है । इसमें अनेक तीर्थंकरोंका जन्म हुआ है । इसलिए यह महान् पवित्र है । मगध भारतवर्षमें एक प्रसिद्ध और धनशाली देश है । सारे संसारकी लक्ष्मी जैसे यहीं आकर इकट्ठी हो गई हो । यहाँके निवासी प्रायः धनी है, धर्मात्मा है, उदार हैं ओर परोपकारी है ।

जिस समयकी यह कथा है उस समय मगधकी राजधानी राजगृह एक बहुत सुन्दर शहर था । सब प्रकारकी उत्तमसे उत्तम भोगोपभोगकी वस्तुएँ वहाँ बडी सुलभतासे प्राप्त थीं । विद्वानोंका उसमें निवास था । वहाँके पुरुष देवोंसे और स्त्रियां देवबालाओंसे कहीं बढ़कर सुन्दर थीं । स्त्री-पुरुष प्राय· सब ही सम्यक्त्वरूपी भूषणसे अपनेको सिगारे हुए थे । और इसलिये राजगृह उस समय मध्यलोकका स्वर्ग कहा जाता था । वहाँ जैनधर्मका ही अधिक प्रचार था । उसे प्राप्त कर सब सुख-शान्ति लाभ करते थे ।

राजगृह के राजा तब श्रेणिक थे । श्रेणिक धर्मज्ञ थे । जैनधर्म और जैनतत्त्व पर उनका पूर्ण विश्वास था । भगवानकी भक्ति उन्हें उतनी ही प्रिय थी, जितनी कि भौंरेको कमलिनी । उनका प्रताप शत्रुओके लिये मानों धधकती आग थीं । सत्पुरुषोंके लिये वे शीतल चन्द्रमा थे । पिता अपनी सन्तानको जिस प्यारसे पालता है श्रेणिकका प्यार भी प्रजा पर वैसा ही था । श्रेणिककी कई रानियाँ थीं चेलिनी उन सबमे उन्हें अधिक प्रिय थी । सुन्दरतामें, गुणोंमें चतुरतामे चेलिनीका आसन सबसे ऊँचा था । उसे जैनधर्मसे, भगवानकी पूजा-प्रभावनासे बहुत ही प्रेम था । कृत्रिम भूषणों द्वारा सिंगार करनेका महत्त्व न देकर उसने अपने आत्माको अनमोल सम्यग्दर्शन रूप भूषणसे भूषित किया था । जिनवाणी सब प्रकारके ज्ञानविज्ञानसे परिपूर्ण है और अतएव वह सुन्दर है, चेलिनीमें भी किसी प्रकारके ज्ञान-विज्ञानकी कमी न थी । इसलिये उसकी रूपसुन्दरताने और अधिक सौन्दर्य प्राप्त कर लिया था । 'सोनेमें सुगन्ध' की उक्ति उस पर चरितार्थ थी ।

राजगृह हीमें एक नागदत्त नामका सेठ रहता था । यह जैनी न था

राजगृह हीमें एक नागदत्त नामका सेठ रहता था। यह जैनी न था इसकी स्त्रीका नाम भवदत्ता था। नागदत्त बड़ा मायाचारी था। सदा मायाके जालमें यह फँसा हुआ रहता था। इस मायाचारके पापसे मरकर यह अपने घरके आँगनकी बावडीमें मेंढक हुआ। नागदत्त यदि चाहता तो कर्मोंका नाश कर मोक्ष जाता, पर पाप कर वह मनुष्य पर्यायसे पशुजन्ममें आया, एक मेंढक हुआ। इसलिये भव्य-जनोंको उचित है कि वे संकट समय भी पाप न करें।

एक दिन भवदत्ता इस बावड़ी पर जल भरनेको आई। उसे देखकर मेंढकको जातिस्मरण ज्ञान हो गया। वह उछल कर भवदत्ताके वस्त्रों पर चढ़ने लगा। भवदत्ताने डरकर उसे कपड़ो परसे झिडक दिया। मेंढक फिर भी उछल-उछलकर उसके वस्त्रों पर चढ़ने लगा। उसे बार-बार अपने पास आता देखकर भवदत्ता बडी चकित हुई और डरी भी। पर इतना उसे भी विश्वास हो गया कि इस मेंढकका और मेरा पूर्वजन्मका कुछ न कुछ सम्बन्ध होना ही चाहिये। अन्यथा बार-बार मेरे झिड़क देने पर भी यह मेरे पास आनेका साहस न करता। जो हो, मौका पाकर कभी किसी साधु-सन्तसे इसका यथार्थ कारण पूछूँगी।

भाग्यसे एक दिन अवधिज्ञानी सुव्रत मुनिराज राजगृहमें आकर ठहरे। भवदत्ताको मेंढकका हाल जाननेकी बड़ी उत्कण्ठा थी। इसलिये वह तुरन्त उनके पास गई। उनसे प्रार्थना कर उसने मेंढकका हाल जाननेकी इच्छा प्रगट की। सुव्रत मुनिराजने तब उससे कहा—जिसका तू हाल पूछनेको आई है, वह दूसरा कोई न होकर तेरा पति नागदत्त है। वह बडा मायाचारी था, इसलिये मर कर मायाके पापसे यह मेंढक हुआ है। उन मुनिके संसार-पार करनेवाले वचनोंको सुनकर भवदत्ताको सन्तोष हुआ। वह मुनिको नमस्कार कर घर पर आ गई। उसने फिर मोहवश हो उस मेंढकको भी अपने यहाँ ला रक्खा। मेंढक वहाँ आकर बहुत प्रसन्न रहा।

इसी अवसरमें वैभार पर्वत पर महावीर भगवानका समवसरण आया। वनमालीने आकर श्रेणिकको खबर दी कि राजराजेश्वर, जिनके चरणोंको इन्द्र, नागेन्द्र, चक्रवर्ती, विद्याधर आदि प्रायः सभी महापुरुष पूजा-स्तुति करते हैं, वे

महावीर भगवान वैभार पर्वत पर पधारे हैं । भगवान्‌के आनेके आनन्द-समाचार सुनकर श्रेणिक बहुत प्रसन्न हुए । भक्तिवश हो सिंहासनसे उठकर उन्होंने भगवानको परोक्ष नमस्कार किया । इसके बाद इन शुभ समाचारोंकी सारे शहरमें सबको खबर हो जाय, इसके लिये उन्होंने आनन्द घोषणा दिलवा दी । बडे भारी लाव लश्कर और वैभवके साथ भव्यजनोका सग लिये वे भगवानके दर्शनोको गये । वे दूरसे उन ससारका हित करनेवाले भगवानके समवसरणको देखकर उतने ही खुश हुए जितने खुश मोर मेघोंको देखकर होते हैं और रासायनिक लोग अपना मन चाहा रस लाभ कर होते है । वैसे समवसरणमें पहुँचे । भगवानके उन्होंने दर्शन किये और उत्तमसे उत्तम द्रव्योंसे उनकी पूजा की । अन्तमे उन्होने भगवान्‌के गुणोंका गान किया ।

हे भगवन्, हे दयाके सागर, ऋषि-महात्मा आपको 'अग्नि' कहते हैं, इसलिये कि आप कर्मरूपी ईंधनको जला कर खाक देनेवाले हैं । आप हीको वे 'मेघ' भी कहते हैं, इसलिये कि आप प्राणियोंको जलानेवाली दु:ख, शोक, चिन्ता, क्रोध, मान, माया, लोभ, राग द्वेष आदि दावाग्निको क्षणभरमें अपने उपदेश रूपी जलसे बुझा डालते हैं । आप 'सूरज' भी हैं, इसलिये कि अपने उपदेशरूपी किरणोंसे भव्यजनरूपी कमलोंको प्रफुल्लित कर लोक और अलोकके प्रकाशक है । नाथ, आप एक सर्वोत्तम वैद्य हैं, इसलिये कि धन्वन्तरीसे वैद्योंकी दवा दारूसे भी नष्ट न होनेवाली ऐसी जन्म, जरा, मरण रूपी महान् व्याधियोको जड मूलसे खो देते हैं । प्रभो, आप उत्तमोत्तम गुणरूपी जवाहरातके उत्पन्न करनेवाले पर्वत हो, ससारके पालक हो, तीनों लोकके अनमोल भूषण हो, प्राणी मात्रके नि:स्वार्थ बन्धु हो, दु:खोंके नाश करनेवाले हो और सब प्रकारके सुखोंके देनेवाले हो । जगदीश ! जो सुख आपके पवित्र चरणोंकी सेवासे प्राप्त हो सकता है वह अनेक प्रकारके कठिनसे कठिन परिश्रम द्वारा भी प्राप्त नहीं होता । इसलिये हे दयासागर, मुझ गरीबको अपने चरणोंको पवित्र और मुक्तिका सुख देनेवाली भक्ति प्रदान कीजिये । जबतक कि मैं संसारसे पार न हो जाऊँ । इस प्रकार बड़ी देर तक श्रेणिक भगवानका पवित्र भावोंसे गुणानुवाद किया । बाद वे गौतम गणधर आदि महर्षियोंको भक्तिसे नमस्कार कर अपने योग्य स्थान पर बैठ गये ।

भगवानके दर्शनोंके लिये भवदत्ता सेठानी भी गई । आकाशमें देवोंका जय-जयकार ओर दुन्दुभी बाजोंकी मधुर-मनोहर आवाज सुनकर उस मेंढकको जाति स्मरण हो गया । वह भी तब बावड़ीमे एक कमलकी कलीको अपने मुँहमे दबाये बड़े आनन्द और उल्लासके साथ भगवान की पूजाके लिये चला । रास्तेमे आता हुआ वह हाथीके पैर नीचे कुचला जाकर मर गया । पर उसके परिणाम त्रिलोक्य पूज्य महावीर भगवानको पूजामें लगे हुए थे, इसलिये वह उस पूजाके प्रेमसे उत्पन्न होनवाले पुण्यसे सौधर्म स्वर्गमे महर्द्धिक देव हुआ । देखिये, कहाँ तो वह मेंढक और कहाँ अब स्वर्गका देव । पर इसमें आश्चर्यकी कोई बात नहीं । कारण जिनभगवान की पूजासे सब कुछ प्राप्त हो सकता है ।

एक अन्तर्मुहुर्त्तमें वह मेंढकका जीव आँखोसे चकाचौंध लानेवाला तेजस्वी और सुन्दर युवा देव बन गया । नाना तरहके दिव्य रत्नमयी अलकारोंकी कान्तिसे उसका शरीर ढक रहा था, बड़ी सुन्दर शोभा थी । वह ऐसा जान पडता था, मानों रत्नोकी एक बहुत वड़ी राशि रक्खी हो या रत्नोंका पर्वत बनाया गया हो । उसके बहुमूल्य वस्त्रोकी शोभा देखते ही बनती थी । गलेमें उसके स्वर्गीय कल्पवृक्षोके फूलोंकी सुन्दरता मालाएँ शोभा दे रही थीं । उनकी सुन्दर सुगन्धने सब दिशाओंको सुगन्धित बना दिया था । उसे अविधिज्ञानसे जान पड़ा कि मुझे जो यह सब सम्पत्ति मिली है और मैं देव हुआ हूँ, यह सब भगवानकी पूजाकी पवित्र भावनाका फल है । इसलिये सबसे पहले मुझे जाकर पतित-पावन भगवानकी पूजा करनी चाहिये । इस विचारके साथ ही वह अपने मुकुट पर मेंढकका चिह्न बनाकर महावीर भगवानके समवसरणमें आया । भगवानकी पूजन करते हुए इस देवके मुकुट पर मेंढकके चिह्नको देखकर श्रेणिकको बड़ा आश्चर्य हुआ । उन्होंने गौतम भगवानको हाथ जोड़ कर पूछा—हे सदेहरूपी अँधेरेको नाश करनेवाले सूरज, कृपाकर कहिए कि इस देवके मुकुट पर मेंढकका चिह्न क्यो है ? मैने तो आज तक देवके मुकुट पर ऐसा चिह्न नहीं देखा । ज्ञानकी प्रकाशमान ज्योतिरूप गौतम भगवानने तब श्रेणिकको नागदत्तके भवसे लेकर जब तककी सब कथा कह सुनाई । उसे सुनकर श्रेणिकको तथा अन्य भव्यजनोंको बडा ही आनन्द हुआ । भगवानकी पूजा

करनेमें उनकी बडी श्रद्धा हो गई । जिनपूजनका इस प्रकार उत्कृष्ट फल जानकर अन्य भव्यजनोंको भी उचित है कि वे सुख देनेवाली इस जिन पूजनको सदा करते रहें । जिन पूजाके फलसे भव्यजन धन-दौलत, रूप-सौभाग्य, राज्य-वैभव, बाल-बच्चे और उत्तम कुछ जाति आदि सभी श्रेष्ठ सुख-चैन की मनचाही सामग्री लाभ करते हैं, वे चिरकाल तक जीते है, दुर्गतिमें नहीं जाते और उनके जन्म-जन्मके पाप नष्ट हो जाते हैं । जिनपूजा सम्यग्दर्शन और मोक्षका बीज है, ससारका भ्रमण मिटानेवाली है और सदाचार, सद्विद्या तथा स्वर्ग-मोक्षके सुखकी कारण है । इसलिये आत्महितके चाहनेवाले सत्पुरुषोंको चाहिये कि वे आलस छोडकर निरन्तर जिनपूजा किया करें । इससे उन्हें मनचाहा सुख मिलेगा ।

यही जिन-पूजा सम्यग्दर्शनरूपी वृक्षके सींचनेको वर्षा सरीखी है, भव्यजनोंको ज्ञान देनेवाली मानो सरस्वती है, स्वर्गकी सम्पदा प्राप्त करानेवाली दूती है, मोक्षरूपी अत्यन्त ऊँचे मन्दिर तक पहुँचानेको मानो सीढ़ियोंकी श्रेणी है और समस्त सुखोकी देनेवाली है । यह आप भव्यजनोकी पाप कर्मोंसे सदा रक्षा करे ।

जिनके जन्मोत्सवके समय स्वर्गके इन्द्रोने जिन्हे स्नान कराया, जिनके स्नानका स्थान सुमेरु पर्वत नियम किया गया, और समुद्र जिनके स्नानजलके लिये बावडी नियत की गई, देवता लोगोंने बडे आदरके साथ जिनकी सेवा बजाई, देवागनाएँ जिनके इस मगलमय समयमें नाची और गन्धर्व देवोंने जिनके गुणोको गाया, जिनका यश बखान किया, ऐसे जिन भगवान आप भव्य-जनोंको और मुझे शान्ति प्रदान करे ।

वह भगवानकी पवित्र वाणी जय लाभ करे, ससारमे चिर समय तक रहकर प्राणियोको ज्ञानके पवित्र मार्ग पर लगाये, जो अपने सुन्दर वाहन मोर पर बैठी हुई अपूर्व शोभाको धारण किये है, मिथ्यात्वरूपी गाढ़े अँधेरेको नष्ट करनेके लिये जो सूरजके समान तेजस्विनी है, भव्यजनरूपी कमलोके वनको विकसित कर आनन्दकी बढानेवाली है, जो सच्चे मार्गकी दिखानेवाली है और स्वर्गके देव, विद्याधर, चक्रवर्ती आदि सभी महापुरुष जिसे बहुत मान देते हैं ।

मूलसघके सबसे प्रधान सारस्वत नामके गच्छमे कुन्दकुन्दाचार्यकी

परम्परामें प्रभाचन्द्र एक प्रसिद्ध आचार्य हुए है । वे जैनागमरूपी समुद्रके बढ़ानेके लिये चन्द्रमाकी शोभा को धारण किए थे । बड़े-बडे विद्वान् उनका आदर सत्कार करते थे । वे गुणोंके मानों जैसे खजाने थे, बड़े गुणी थे ।

इसी गच्छमें कुछ समय बाद मल्लिभूषण भट्टारक हुए । वे मेरे गुरु थे । वे जिनभगवान्के चरण-कमलोंके मानों जैसे भौंरे थे—सदा भगवान्की पवित्र भक्तिमें लगे रहते थे । मूलसंघमें इनके समयमें यही प्रधान आचार्य गिने जाते थे । स्मयग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान ओर सम्यक्चारित्र रूप रत्नत्रयके ये धारक थे । विद्यानन्दी गुरुके पट्टरूपी कमलको प्रफुल्लित करने को ये जैसे सूर्य थे । इनसे उनके पट्टकी बडी शोभा थी । ये आप सत्पुरुषोंको सुखी करें ।

वे सिहनन्दी गुरु भी आपको सुखी करें, जो जिन भगवान्की निर्दोष भक्तिमें सदा लगे रहते थे । अपने पवित्र उपदेशसे भव्यजनोंको सदा हितमार्ग दिखाते रहते थे । जो कामरूपी निर्दयी हाथीका दुर्मद नष्ट करनको सिह सरीखे थे, कामको जिन्होंने वश कर लिया था । वे बडे ज्ञानी ध्यानी थे, रत्नत्रयके धारक थे और उनकी बडी प्रसिद्धि थी ।

वे प्रभाचन्द्राचार्य विजय लाभ करे, जो ज्ञानके समुद्र है । देखिये, समुद्रमें रत्न होते हैं, आचार्य महाराज सम्यग्दर्शनरूपी श्रेष्ठ रत्नको धारण किये हैं । समुद्रमें तरंगें होती है, ये भी सप्तभगी रूपी तरगोंसे युक्त हैं—स्याद्वादविद्याके बडे ही विद्वान् हैं । समुद्रकी तरगे जैसे कूडे-करकटको निकाल बाहर फैंक देती हैं, उसी तरह ये अपनी सप्तभगी वाणी द्वारा एकान्त मिथ्यात्वरूपी कूड़े-करकटको हटा दूर करते थे, अन्य मतके बड़े-बड़े विद्वानोंको शास्त्रार्थमें पराजित कर विजय लाभ करते थे । समुद्रमें मगरमच्छ, घड़ियाल आदि अनेक भयानक जीव होते हैं, पर प्रभाचन्द्ररूपी समुद्रमें उससे यह विशेषता थी, अपूर्वता थी कि उसमें क्रोध, मान, माया, लोभ, राग, द्वेष रूपी भयानक मगरमच्छ न थे । समुद्रमें अमृत रहता है और इनमें जिन भगवानका वचनमयी अमृत समाया हुआ था । और समुद्रमें अनेक बिकने योग्य वस्तुएँ रहती है, ये भी व्रतों द्वारा उत्पन्न होनेवाली पुण्यरूपी विक्रेय वस्तुको धारण किये थे । अतएव वे समुद्रकी उपमा दिये गये ।

इन्हींके पवित्र चरणकमलोंकी कृपासे जैनशास्त्रोंके अनुसार मुझ नेमिदत्त ब्रह्मचारीने सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र और सम्यक्तपके प्राप्त करनेवालोंको इन पवित्र पुण्यमय कथाओंको लिखा है। कल्याणकी करनेवाली ये कथाएँ भव्यजनोंकी धन-दौलत, सुख-चैन, शान्ति-सुयश और आमोद-प्रमोद आदि सभी सुख सामग्री प्राप्त करानेमें सहायक हों। यह मेरी पवित्र कामना है।

———

कुंकुम-व्रत कथा

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्र एक सुरमय देशमें हस्तिनापुर नामकी राजधानी थी। वहाँ भूपाल नामका राजा राज्य करता था। उसके मनोहरा नामकी रानी थी। उनके राज्यमें सभी प्रजा सुखी थी, राज्य भरमें शान्ति व अमन चैन था। सभी अपने धर्म व कर्त्तव्योंका पालन करते थे।

उसी नगरीमें धनपाल नामका एक सेठ रहता था। उसकी स्त्रीका नाम धनवती था। सभी प्रकारकी सुख सम्पदाओंसे युक्त होनेसे उनका समय बडा आनन्द पूर्वक व्यतीत हो रहा था, परन्तु उनके कोई पुत्र नहीं था, इस एक ही चिन्तासे खिन्न और चिंतित रहा करते थे।

एक दिन श्री देशभूषण मुनि (अवधिज्ञानी) अनेक देश व प्रान्तों व नगरोंमें विहार करते हुए इसी नगरसे सहस्रकूट चैत्यालयमे पधारे। मुनिराजका आगमन जानकर सभी नगरके निवासी अपने शक्ति प्रमाण पूजा-द्रव्य लेकर गुरु दर्शनार्थ उनके निकट चैत्यालयमे गईं, धनवती सेठानी भी नहा धोकर भक्ति-भावसे, चैत्यालय गई वहाँ पर जिनप्रतिमाका अभिषेक करके, अष्ट द्रव्योंसे प्रभुकी पूजन की, फिर गुरु महाराजका दर्शनके करके, हाथ जोड कर विनम्र शब्दोंसे मुनिराजसे बोली—हे मुनिवर, पुत्रके अभावमे मेरा यह मनुष्य जन्म व्यर्थ एवं निस्सार है, यद्यपि मुझे सर्व प्रकारकी भोग उपभोगकी सामग्री यथेष्ठ मिली है, फिर भी यह अटूट सम्पत्ति एक पुत्रके नहीं होने से, मुझे व मेरे मनकी पूर्ण शान्ति प्रदान नहीं कर सकती, हमेशा, कुल परम्पराको चलानेवाले पुत्रके अभावसे मनमें महान् आताप बना रहता है, प्रभो कौनसे ऐसे पापकर्मका उदय है, जिसके कारण सभी सुख सामग्रीके होते हुए भी, मैं पुत्रवती नहीं हुई।

करुणासागर मुनिराज उसकी इस प्रकार विनम्रवाणीको सुनकर दया होकर बोले—पुत्री, मनुष्य जैसे अच्छे व बुरे कार्य करता है, उसी का प्रतिफल ही उसे सुख, दुःख रूपमें मिलता है। तूने भी पूर्व भव में, एक बार, जब मुनिराज चर्या कर निकले थे, तब उनका आदर नहीं किया था, तूं गर्वमे गर्वित होकर उनके प्रति उदासीन रही ओर यह उसी पापका फल है, कि इस जन्ममे

अटूट सम्पत्ति प्राप्त होने पर भी, तू पुत्रवती नहीं हुई, जिसके कारणसे तुम्हारे हृदयमें बैचेनी है और हमेशा अशान्तता बनी रहती है ।

विनम्र वचनोंसे मधुर वाणीमें धनवती सेठानीने अपने किये हुए पापोंके प्रायश्चितके लिये तत्परता दिखाते हुए मुनिराजसे प्रार्थना की, प्रभो अनेक बडे-बड़े अपराध गुरुओंके दर्शन मात्रसे शान्त हो जाते हैं मुझे भी आप कोई ऐसा व्रत बताइये जिससे मेरे किये हुए अपराध दूर होवें और मुझे पुत्र रत्नकी प्राप्ति हो, और मैं अपने जीवनको सफल बना सकूँ ।

मुनिराज बोले, धर्म ही मनुष्यको सुखमें पहुँचाता है, आत्मिक सुखोंकी वृद्धि भी उसी से है ऐसी कोई भी अप्राप्य वस्तु नहीं जो मनुष्यको धर्म सेवनसे न प्राप्त हो । सांसारिक सुखों की तो बात ही क्या अत्यन्त दुर्लभ मोक्ष सुख भी इसी धर्मकी देन है, पुत्री तुम भी, धर्मसे दृढ़ करनेवाले "सौभाग्यव्रत" को विधि युक्त पालन करो, जिसकी विधि इस प्रकार है ।

अषाढ शुक्ला अष्टमीके दिन स्नानादिसे पवित्र होकर, जिनमन्दिर जाकर, जिनेन्द्र भगवानकी स्तुति करके, वन्दना करके, इस व्रतको ग्रहण करो, बादमें पाँच पान लेकर उनमे पाँच-पाँच अक्षतपुष्प रखकर, एक-एक सुपारी भी रखो व श्री जिनेन्द्र भगवानको वन्दना करते समय यह मन्त्र पढो—

"आत्मज्योति, आचार्यज्योति, बन्धुज्योति, बलगज्योति, पुण्यज्योति, पुत्रज्योति, श्री पार्श्वनाथ ज्योति बैलगु रत्नज्योति ।"

इस प्रकार प्रतिदिन पाँच-पाँच सौभाग्यवती स्त्रियोंके कुकुम लगावे, तथा कुकुम, हल्दी, रोली, तदुल तथा राई के पाँच-पाँच ढेर लगाकर प्रत्येक अष्टमी, चतुदर्शीके दिन, यह भक्ति करे । इस प्रकार यह विधि कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा पर्यन्त करे । पूर्णिमाके दिन महाभिषेक कर (एक कलशसे लेकर १०८ तक) पाँच भक्ष्य, दूधके बनाकर, २५ नैवेद्य बनाकर, उसमेंसे शास्त्रके ४, गुरुओके ३, नैवेद्य चढ़ाकर पूजा करें । शास्त्र वस्त्र चढ़ावे । गुड़की भेली सहित चार स्त्रियो को ४ फल देवे, एक आप लेवे । मुनि-आर्यिकाओंको शास्त्र व वस्त्रादि देवे । चार प्रकार के संघको यथाशक्ति आहारादि दान देवे ।

व्रतकी विधिको, अत्यन्त आनन्दित हृदयसे, पूर्ण मनन कर, व्रत ग्रहण करनेका संकल्प करके धनवती सेठानी घर आ गई और उसने विधिके अनुसार इस व्रतका पालन किया, उद्यापनके उपरान्त उसको पुत्र रत्नकी प्राप्ति हुई । उसका नाम देवकुमार रखा ।

पुत्र व पति सहित सुखसे काल व्यतीत करते हुए अन्तमें दीक्षा लेकर सेठानी स्वर्ग गई ।

सच है, यह कुंकुमव्रतकी प्रभावना है । महान् पुण्यका उपार्जन इन व्रतोंका ही प्रभाव है व परम्परा मोक्ष सुख भी इनसे प्राप्त होता है । भव्य जीवोंको व्रत अनुष्ठान भक्ति व पूर्ण श्रद्धाके साथ करना चाहिए, जिससे धनवतीकी तरह सुखी होकर मनुष्य जन्मको सार्थक बना सके ।

जम्बूस्वामीकी विनती

राजगिरी नगरी का ओ वासी,
घर में रिद्धि अभिलासी ।

सेठ अरदास जी रा कँवर जम्बूजी,
धारण करल्यो ये माता तुम ही परिवारी ॥

चार सगाई आई जी कँवर की,
सुन्दर रूप रिसाला, हाथ काम सब लिया जी ।
कँवर का शुद्ध मुहरत सावो कीनो तुमही परिवारी ॥१॥

मथुरा जी में शोर उड़े है, नारी तो मंगल गावे ।
स्वामि सुदर्शन राजगिरी पधारा,

लोग जु वन्दना आवे ॥
बारी वो जम्बु जी वैरागी तुम ही परिवारी ॥२॥

हाथ जोड कर केवे जी,
जम्बु जी सुण लीज्यों मोरी माता ।

रण मत करज्यो
ढील न कीज्यो खीणी जावे ॥
तुम्हीं परिवारी ॥ बारी वो० ॥३॥

बात अपूरब की सुनीजी,
कँवर की सुण माता मुरझाई ।

दिक्षा अबारा मत धारो रे जाया,
बहु ये परण धर लावो ॥
तुम ही परिवारी ॥ बारी वो० जम्बूजी ॥४॥

हाथ जोड़कर केवेजी,
जम्बूजी सुण लीज्यो ये मोरी माता ।

मन, तन में तो शील रची है,
परणा कर काँई होस्यो राजी ॥

तुम ही परिवारी ॥ बारी वो जम्बूजी ॥५॥

माता का वचना परण्या जम्बूजी,
बहु घर आय पांय लागी

आज्ञा लेकर महल पधारी, ।
जम्बू जी कहते तुम आगी ॥ तुम ही परिवारी० ॥६॥

कोड़ निन्यानवे सैनया घरमें,
कोड़ छियाण्वें मेह लाया ।

महल मनोरमा रतना सु जड़िया,
फूल डारी सेज बिछाई ॥ तुम ही परिवारी ॥७॥

चन्द्र बदन. मृग लोचन वाला, केर गर्व मुख लाया ।
केर गर्व सु आपी,सूपी, के, हर्ष घणी वो मुँह बोली
तुम ही परिवारी ॥८॥

इन्द्र धनुष ज्यों जीवन बन कर,
नेणा में काजल रण के,

मोर पतिजी थे हंस कर बोलो, गाठ हिये की खोली ।
तुम ही परिवारी ॥९॥ बारी वो जम्बू जी ॥

किण रे पीवरियो,
किण रे सासरियो पिया बिना कौन अधार ।

लोग हंसे म्हारो जीवन छीजे, ससारी में कुण बोले ।
तुम ही परिवारी ॥ १०॥ बारी वो जम्बूजी ।

चार कथा तो कामिनी कहिये, चार जम्बू जो कँवारा
शील रतन में परख लीयो है,

काच ने कहो कुण झेले । ससारी में कुण राचै ।
तुम ही सपरिवारी ॥ बारी वो जम्बुजी ॥११॥

काम भोग महा दुखदाई, कड़वा, विष सु कुण खावे,
मेवा मिश्री भोजन, तजकर निंबोलो आ कुण चावै ॥

तुम ही परिवारी ॥ बारी वो० जम्बूजी ॥१२॥

संग जोड़े जम्बु दिक्षा लीनी, परभात हो धन जु चोरे ।
पाँव न उठे जाय, जम्बू जी ने पूछे ॥

तुम ही परिवारी । बारी वो जम्बूजी ॥१३॥

एक विद्या तम याने देवा ओ जम्बूजी,
दोय विद्यामान दीज्यो, जम्बूजी कहवे म्हांनो क्यां की,

विद्या संसारी मं कुण राचै ॥
तुम ही परिवारी ॥ बारी वो जम्बूजी ॥१४॥

आज न परणी चार लुगाई कौंई रे तज्यो निरधारी,
कोमल काया घर में माया, कौंई रे तजो भोला भाई ।

तुम ही परिवारी ॥ बारी वो जम्बूजी ॥१५॥

आयु तो अंजुली को पानी काया कांच की शीसी,
बिन मांगी जम्बू दिक्षा लीनी, त्याग दियो रे संसारी ।

तुम ही परिवारी ॥ बारी वो जम्बू जी ॥१६॥

पांच सत्ताइस जम्बु दिक्षा लीनी, शिवपुर डेरा डराया
चरम केवली भया हो जम्बुजी, पहुँचा रे मुकति रे मांहि ॥

तुम ही परिवारी ॥
बारी वो जम्बूजी वैरागी तुम ही परिवारी ॥१७॥

●